यू जी सी अनुमोदित पत्रिका
ISSN 0523-1418

अंक 308 वर्ष 62

भाषा

मई–जून 2023

आज़ादी का अमृत महोत्सव

G20 भारत 2023 INDIA
वसुधैव कुटुम्बकम्
ONE EARTH • ONE FAMILY • ONE FUTURE

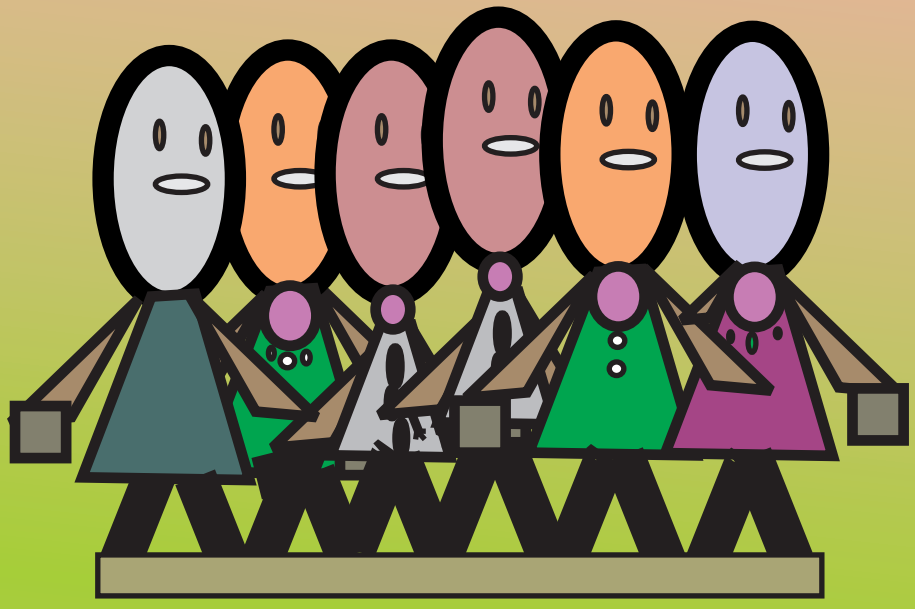

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

भाषा
मई–जून 2023

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ टंकित रूप में (यूनिकोड में) भेजी जाएँ। भेजी जानी वाली सामग्री के साथ रचनाकार कृपया अपनी पासपोर्ट आकार की फोटो, पूरा पता और अपना संक्षिप्त परिचय भी अवश्य भेजें।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथअंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

9. द्वैमासिक पत्रिका भाषा का ई–संस्करण केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वेबसाइट (www.chdpublication.education.gov.in) पर देखा जा सकता है।

10. भाषा पत्रिका में प्रकाशित अंकों से संबंधित लेखकों/पाठकों की टिप्पणियों/सुझावों का स्वागत है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं पर पाठकों की टिप्पणियों को 'आपने लिखा' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया जाएगा।

संपादकीय कार्यालय

संपादक, भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

सत्यमेव जयते

भाषा

मई–जून 2023

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी 'देशगव्हाणकर'

परामर्श मंडल
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित
सुश्री ममता कालिया
प्रो. सत्यकाम
प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय
प्रो. पूरनचंद टंडन
प्रो. शैलेंद्र शर्मा
डॉ. एम. गोविंदराजन
डॉ. जे.एल.रेड्डी
श्री रविशंकर 'रवि'

संपादक
डॉ. अनिता डगोरे

सह–संपादक
डॉ. किरण झा
मीनाक्षी जंगपांगी

सहायक संपादक
श्री प्रदीप कुमार ठाकुर

कार्यालयीन व्यवस्था
सेवा सिंह
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **62 अंक : 3 (308)**
मई–जून 2023

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ई–मेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011-26105211/12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : acop-dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग,
दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ई–मेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211/12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफॉर्मा भरकर भेजें।
3. भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :			
1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	(डाक खर्च सहित)
4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5. बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

संपादकीय

आलेख

1.	ब्रज का यात्रा साहित्य : एक दृष्टि–निक्षेप	डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'	09
2.	हिंदी वर्तनी की समस्याएँ	डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश'	15
3.	बुंदेली भाषा में अर्थात बुंदेलखंड के लोकजीवन में समयबोध	डॉ. के.बी.एल पाण्डेय	36
4.	मराठी लोकगीतों में रिश्तेदारों का वर्णन	डॉ. बबन चौरे	47
5.	ध्वनि सिद्धांत : विवेचन एवं प्रासंगिकता	डॉ.कमलेश सिंह	59
6.	गोंड जनजाति : परिचय	डॉ. गजानन सुरेश वानखेड़े सतिश शामराव मिराशे	67
7.	भाषाई समस्या से जूझते प्रवासी भारतीय (अमरीकी हिंदी कहानियों के संदर्भ में)	प्रकाश चंद बैरवा	74
8.	राष्ट्रीय चेतना के कवि : बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	राजेंद्र परदेसी	81
9.	नरेश मेहता कृत 'शबरी' खंडकाव्य का विश्लेषण (वाल्मीकि रामायण के संदर्भ में)	डॉ.दीपशिखा	86
10.	दलित आत्मकथाओं में 'स्व' का बदलता चरित्र और प्रतिनिधित्व का सवाल	दिनेश कुमार वर्मा	99
11.	समतुल्यता और सममूल्यता की अवधारणा	डॉ.श्रीराम हनुंमत वैद्य	109

हिंदी कहानी

12. मृगतृष्णा	राजनारायण बोहरे	118
13. मृत पिता की चिट्ठी	डॉ. अनामिका अनु	129
14. दरियादिल	डॉ. गौरीशंकर रैणा	132

हिंदी कविता

15. वो जिंदा है	डॉ. किश्वर सुल्ताना	135
16. अम्मा का बटुवा	डॉ. रंजना जायसवाल	137

अनूदित खंड (कहानी)

17. पालटा बाघ (ओडिया/हिंदी)	डॉ. दाशरथि भूयाँ अनुवाद– डॉ. भगवान त्रिपाठी	138
18. यही कहानी लिखूँगा (नेपाली/हिंदी)	वीरभद्र कार्कीढोली	143

अनूदित खंड (कविता)

19. सरबंध/संबंध (डोगरी/हिंदी)	पद्मश्री पद्मा सचदेव अनुवाद– कृष्ण शर्मा	152 153
20. काले ट्रंक विचों मिली चिट्ठी/ काले ट्रंक में से मिली चिट्ठी (पंजाबी/हिंदी)	जसबीर भुल्लर अनुवाद– प्रो. फूलचंद मानव	154 158
21. हाथ देखार कबिता / हाथ देखने की कविता (बांग्ला/हिंदी)	नबारूण भट्टाचार्य अनुवाद– आशुतोष सिंह	162 164

साक्षात्कार

22. प्रवासी साहित्यकार श्रीमती सुनीता नारायण से डॉ. विमलेश कांति वर्मा की बातचीत	डॉ. विमलेश कांति वर्मा	166

परख

23 अंतर्मन की पुकार–समकाल की आवाज/डॉ. कैलाश नीहारिका	डॉ. ज्योति गुप्ता	174
24. नर्म फाहे/भावना सक्सैना	सुरेखा जैन	180
संपर्क सूत्र		185
सदस्यता फॉर्म		189

निदेशक की कलम से

ऋतुओं का अपना विशेष महत्व है। ग्रीष्म और वर्षा जब अपनी धुन में राग–विराग की सृष्टि करते हैं तो संपूर्ण संसार झूम उठता है। धरती के गर्भ में पल रहे सौंदर्य के प्रस्फुटन के पार्श्व में गहन ताप और संघर्ष की कथा बुनी गई होती है। ऊपर–ऊपर दिखने वाला स्वरूप मात्र ही वास्तव नहीं होता। कुछ अच्छा और नवीनता का आग्रह ही संघर्ष की जननी होती है। मनुष्य ने अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए कठिन से कठिन परिश्रम किया। गिर–गिर, फिर–फिर उठा और खुली आँखों से सपने सँजोने लगा और फिर प्रारंभ हुआ सपनों को पूरा करने के हौसले में उड़ान भरने की। मानव इतिहास ने कितनी ही क्रांति का उद्घोष होते हुए देखा और उसका साक्षी बना। ज्ञान और विज्ञान की ऊँचाई तक पहुँचने के सफल और लंबी दूरी को बुलंद इरादों से लाँघा। कभी कहा गया जीवन में श्रम और सौंदर्य का संतुलन बना रहे तभी जीवन स्वाभाविक लगता है। आस्था और विश्वास भी साथ–साथ उस संतुलन को बनाए रखने में दृढ़ता से सन्नद्ध हों, यह अपेक्षा होती है। इस आपाधापी के दौर में जीवन निस्सार सा प्रतीत होने लगता है तब कलकल सरिता सी मधुर तान बिखेरता संगीत और कला जीवन में सजीव हो उठती है। यहाँ मनुष्यता ठहराव पाती है। श्रांत, क्लांत जीवन में मधुरता का संचार ठीक वैसे ही आवश्यक है जैसे सूखी, बंजर भूमि पर वर्षा की बूँदों की बौछार।

वाणी को किसी आलंबन की आवश्यकता नहीं होती। वह अपना मार्ग स्वयं तलाश लेती है। अपनी बोली और भाषा में पूरा संसार बसा हुआ दिखता है। उसे संस्कारित होने की आवश्यकता नहीं होती। सहजता और अपनत्व ही उसकी शक्ति है। व्यक्ति अपनी बोली, वाणी और भाषा में अपने भावों को अभिव्यक्त कर असीम आनंद की अनुभूति करता है। कवि कहते हैं–इसमें भरा है, पास–पड़ोस और दूरदराज की इतनी आवाजों का बूँद–बूँद अर्क, कि मैं जब भी इसे बोलता हूँ, तो कहीं गहरे अरबी, तुर्की, बांग्ला, तेलुगु, यहाँ तक कि एक पत्ती के हिलने की आवाज भी, सब बोलता हूँ ज़रा–ज़रा, जब बोलता हूँ हिंदी।

भारतवर्ष की विभिन्न बोलियों और भाषाओं के सौंदर्य और मिठास से परिपूर्ण आलेखों को इस अंक में स्थान दिया गया है। आशा है सुधी पाठकों के लिए यह अंक अन्य अंकों की ही भाँति मनोनुकूल और ज्ञानवर्धक होगा।

जय हिंद!

(प्रो.सुनील बाबुराव कुलकर्णी 'देशगव्हाणकर')

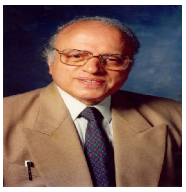

एम.एस.स्वामीनाथन

कृषि के क्षेत्र में भारत को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाने वाले महान वैज्ञानिक एम.एस. स्वामीनाथन को हरित क्रांति के जनक के रूप में जाना जाता है। उन्होंने किसानों और सरकारी नीतियों के साथ–साथ अन्य वैज्ञानिकों की मदद से देश का अनाज संकट दूर करने का अभूतपूर्व कार्य किया। 'भाषा' के संपादन–मंडल की ओर से उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि।

संपादकीय

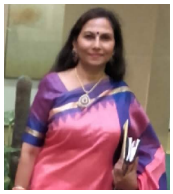

'भाषा' एक साहित्यिक पत्रिका है, जिसमें रचनाकारों के सर्जनात्मक और वैचारिक लेखन का नियमित रूप से प्रकाशन किया जाता है। इसी क्रम में 'भाषा' का मई–जून अंक एक सामान्य अंक है, जिसमें लेख, कहानी, दलित चिंतन, कविता एवं समीक्षा के साथ–साथ अहिंदीभाषी अनूदित कविता का भी पाठकगण आनंद ले सकेंगे।

मनुष्य अपने विचारों, चिंतन एवं हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से करता है। विचारों के आदान–प्रदान की यह प्रक्रिया भाषा कहलाती है। इसी परिप्रेक्ष्य में हिंदी एक ऐसी भाषा है जो पूरे भारतवर्ष को एक संपर्क सूत्र में बाँधती है। जैसा कि हम जानते हैं कि संस्कृत, पाली प्राकृत, शौरसेनी एवं अपभ्रंश के क्रमिक विकास के पश्चात हिंदी भाषा का स्वरूप सामने आया है। भारत एक ऐसा देश है जहाँ समय–समय पर द्रविण, आर्य, शाक्य, पल्लव, चोल, चालुक्य, सातवाहन, हुण, पठान, मुगलों एवं अंग्रेजों ने लंबे समय तक राज्य किया और अपनी संस्कृति; सभ्यता एवं भाषा की छाप भारत पर छोड़ी। जिसके कारण समय के साथ–साथ भाषा का स्वरूप भी बदलता गया। कालातंर में 'हिंदी' ने इन सभी भाषाओं को गले लगाकर भाषारूपी हार के मध्य अपने आपको 'मणि' के रूप में स्थापित किया।

विश्व में प्रत्येक देश की अपनी एक भाषा होती है ताकि वहाँ का नागरिक अपने विचारों व भावनाओं का आदान–प्रदान आसानी से कर सके। भारत एक ऐसा भौगोलिक देश है जहाँ के विभिन्न प्रांतों में अलग–अलग बोलियाँ बोली जाती हैं। ऐसे में राष्ट्र को एक सूत्र में जोड़ने के लिए किसी एक भाषा का चयन करना आश्वयक था। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अफ्रीका से लौटने के बाद महात्मा गांधी जी जब भारत जोड़ो आंदोलन यात्रा पर निकले। उस दौरान विभिन्न प्रांतों में रहने वाले भारतीयों से भाषाई अर्थ संप्रेषण में काफी कठिनाई महसूस हुई। इसी कारण सन् 1918 में इंदौर में संपन्न साहित्य सम्मेलन में गांधीजी ने हिंदी को देश की राष्ट्रभाषा कहा, जो भारत के सभी नागरिकों के बीच संपर्क की भाषा बन सके। आज हिंदी ने भारत में ही नहीं अपितु विश्व में भी अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया है। आज हम कह सकते हैं कि भारतीय भाषाएँ यदि नदियाँ हैं तो हिंदी महानदी है।

अनिता

(डॉ. अनिता डगोरे)

मछलियाँ

मछलियों को लगता था
कि जैसे वे तड़पती हैं पानी के लिए
पानी भी उनके लिए तड़पता होगा
लेकिन जब खींचा जाता है जाल
तो पानी मछलियों को छोड़कर
जाल से निकल भागता है
पानी मछलियों का देश है
लेकिन मछलियाँ
अपने देश के बारे में कुछ नहीं जानतीं...

—नरेश सक्सेना

ब्रज का यात्रा साहित्य : एक दृष्टि–निक्षेप

रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर'

कई नवगीत, मुक्तक, दोहा एवं कवित्त–सवैया संग्रह प्रकाशित। अनेक कृतियों में शोधपरक लेख प्रकाशित। साहित्य भूषण (उत्तर–प्रदेश हिंदी संस्थान) सम्मान से सम्मानित। संप्रति–स्वतंत्र लेखन।

भारतीय संस्कृति में यात्राओं का विशेष महत्व है। यात्राओं को धर्म से जोड़कर जीवन का अनिवार्य अंग बना दिया गया है। भारतीयों में बद्धमूल धारणा है कि गंगोत्री से गंगाजल लेकर बद्रीनाथ एवं केदारनाथ दर्शन करने के बाद यदि रामेश्वरम का अभिषेक किया जाए तो व्यक्ति को मुक्ति मिल जाती है। देश की चारों दिशाओं में स्थित–उत्तर में बद्रीनाथ एवं केदारनाथ, दक्षिण में रामेश्वरम, पूर्व में जगन्नाथपुरी और पश्चिम में द्वारकाधीश के दर्शन करने वाले व्यक्ति के लिए मोक्ष के द्वार खुल जाते हैं। कुछ विशिष्ट तीर्थों की परिक्रमाएँ करने का भी विधान है। ब्रज के चौरासी कोस की परिक्रमा प्रसिद्ध है। अयोध्या और काशी की परिक्रमा का भी विधान है। छोटी–छोटी स्थानीय यात्राएँ तो अनंत हैं यथा उत्तर–प्रदेश के लोग राजस्थान में स्थापित करौली माता, जाहरपीर (लोक देवता), खाटूश्याम और बालाजी की यात्रा को जाते हैं और राजस्थान से लोग वृंदावन की यात्रा को आते हैं। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक ऐसी असंख्य यात्राओं का विधान लोकजीवन को समृद्ध करता है। लोकहित को ध्यान में रखकर भी प्राचीन काल में यात्राएँ की जाती थीं। 'स्कंदपुराण' में भारत की नदियों और तीर्थों का बहुत मार्मिक वर्णन है। कार्तिकेय भगवान शिव से पूछते हैं कि वे कौन–कौन से तीर्थ हैं जिनमें भगवान मधुसूदन निवास करते हैं। भगवान शिव उत्तर देते हैं–

बहूनि सन्ति तीर्थानि क्षेत्राणि च षडानन
हरिवास निवासैकपराणि परमार्थिनाम्
काम्यानि कानि चिन्तर्मुन्ति कामिं चिन्मुक्तिदान्यमि।
इहाङ·मुत्रार्थ दान्येव बहु पुण्यप्रद निवे
गंगा, गोदावरी, रेवा, तापती यमुना सरित।
क्षिप्रा, सरस्वती पुण्या गौतमी, कौशिकी तथा
कावेरी, ताम्रपर्णी व चन्द्रभागा महेन्द्रजा।

चि गोत्पला, वेत्रवती सरयूः पुण्यवाहिनी।
चर्मण्यवती शतद्रुश्य पद चिन्य सम्भवा।
चण्डिका वाहुदा सर्वाः पुण्या सिन्धु सरस्वती।
भुक्ति, मुक्ति प्रदाश्चैतः से कमला मुहुर्मुहः।
अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरावन्तिका तथा
कुरूक्षेत्र रामतीर्थ काँची च पुरूषोत्तम्
पुष्करं दर्दुक्षेत्रं वाराहं विधि विमन्तम्
बदमार्टक महापुण्य क्षेत्रं सर्वार्थ साधनम्।।[1]

(हे षडानन परमार्थियों के लिए श्रीहरि के वास–निवास परायण बहुत से तीर्थ और क्षेत्र विद्यमान हैं। उनमें से कुछ तो कामनाओं को ही पूर्ण कर देने वाले हैं। कुछ मानवों को जन्म–मरण के बंधन से मुक्ति दिलाने वाले तथा अत्यधिक पुण्यों के देने वाले हैं। सर्वप्रथम उन पुण्यमयी सरिताओं के नाम मैं बताता हूँ– गंगा, गोदावरी, ताप्ती, यमुना, क्षिप्रा, सरस्वती, पुष्पा, गौतमी, कौशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चंद्रभागा, महेंद्रजा, चित्रोत्पला, वेत्रवती, सरयू, पुण्यवाहिनी, चर्मण्यवती, शतद्रु, पयस्विनी, अतिसंभवा, गंडिका, बाहुदा, सिंधु, सरस्वती– ये सब सरिताएँ परम पुण्यमयी हैं।) और ये भुक्ति (सांसारिक सुखों का उपभोग) और मुक्ति दोनों को प्रदान करने वाली हैं। अतः इन नदियों का पुनः पुनः सेवन किया जाए। अब कतिपय पुण्यमय क्षेत्रों को बतलाता हूँ। अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, अवंतिका (उज्जैन), कुरूक्षेत्र, रामतीर्थ, कांची, पुरूषोत्तम, पुष्कर, दर्दुरक्षेत्र, वाराह, विधिनिमित्त बदरीनाथ, महानपुण्यक्षेत्र हैं, जो सभी अर्थों का साधन करने वाले हैं।''

इन तीर्थों को भुक्ति और मुक्ति का साधन, पुण्य प्रदाता तथा इहलोक व परलोक के सुख का साधन बताकर उनकी यात्रा को प्रोत्साहित किया जाता है। नदियों की परिक्रमा का भी विधान है। उनके उद्गम स्थल से लेकर उनके अंतिम बिंदु तक जाया जाता है। कई पर्वतों की (यथा गिरि गोवर्धन) की परिक्रमा का भी विधान है। तीर्थयात्राओं को सुगम बनाने के लिए मार्ग में वे जिस गाँव या शहर में रुके वहाँ के निवासियों द्वारा उनका आतिथ्य किया जाना भी पुण्यदायक बताया जाता है। कुल मिलाकार प्राचीनकाल से भारत में यात्राएँ राष्ट्रभक्ति, लोकसंस्कार और लोकमंगल का साधन रहीं हैं। इस दृष्टि से हम यात्राओं को निम्न वर्गों में बाँट सकते हैं–

1. धार्मिक यात्राएँ– तीर्थयात्रा, जात, परिक्रमा आदि।

2. लोकचेतस यात्राएँ– संतों व ऋषियों द्वारा लोक में अपने आध्यात्मिक उपदेशों के निमित्त की जाने वाली यात्राएँ–भारत के लगभग सभी संतों ने ऐसी लंबी–लंबी यात्राएँ की थीं।

3. ज्ञान–प्राप्ति के लिए की जाने वाली यात्राएँ– यथा धुमक्कड़राज नरेंद्र यश, भट्ट दिवाकर तथा राहुल सांकृत्यायन की यात्राएँ।

4. निरूदेश्य यात्रा–छठी–सातवीं शताब्दी के बाद वैष्णव भक्ति के प्रचार में तमिल के अलवार भक्तों ने महत्वपूर्ण योगदान किया। एक प्रकार से वे वैष्णव भक्ति के लोकोद्भावक थे। फिर शनैः शनैः श्रीकृष्ण का जन्मस्थल ब्रज कृष्ण–भक्ति का केंद्र बनने लगा। मथुरा के कटरा केशवदेव (कृष्ण जन्मभूमि) मंदिर को बार–बार उजाड़ा गया परंतु विधर्मियों के तमाम कुत्सित प्रयासों के बावजूद वृंदावन के भक्ति–केंद्र के प्रति हिंदुओं की आस्था को तोड़ा नहीं जा सका। सन् 1542 में जन्मे चैतन्य ने अपने शिष्यों के माध्यम से वृंदावन के लुप्त तीर्थों का उद्धार करवाया। अस्तु संपूर्ण भारत के कृष्णभक्तों के लिए वृंदावन, ब्रजभाषा और ब्रज आकर्षण का केंद्र बने रहे। इसी तरह वृंदावन के आचार्यों ने देश के अन्य भागों की यात्राएँ कीं और देश के सुदूर भागों से कृष्ण–भक्त वृंदावन आते रहे। अतः ब्रजभाषा में विपुल यात्रा साहित्य उपलब्ध होता गया। ब्रज संस्कृति शोध संस्थान, वृंदावन (मथुरा) ने ब्रजभाषा के यात्रा साहित्य से संबंधित ग्रंथों की सूची तैयार की है। उसके अनुसार–

1. विक्रमांकदेव चरित्र : बिल्हण कृत
2. विविध तीर्थकल्प : जिनप्रभासूरि कृत
3. ब्रज भक्तिबिलास : नारायण भट्ट कृत
4. ब्रजयात्रा : गोकुलनाथ
5. तुजुके – जहाँगीरी
6. चैतन्य चरितामृत : कृष्णदास कविराज कृत
7. श्री गुसाँई जी की वनयात्रा : जगतानंद कृत
8. ब्रजधाम वर्णन : जगतानंद कृत
9. इष्टपद वंदन वेली–चाचाहित वृंदावनदास कृत (अप्रकाशित पांडुलिपि)
10. वृंदावन प्रकाशमाला : चंद्रलाल गोस्वामी कृत (अप्रकाशित पांडुलिपि)
11. तीर्थानंद : नागरीदास कृत
12. ब्रजभूमि प्रकाश : नवलसिंह प्रधान कृत
13. बीकानेर के माहेश्वरी यात्री का राजस्थानी गद्य में लिखा ब्रजयात्रा वृत्त (अप्रकाशित पांडुलिपि)
14. विजय ब्रजविलास : गदाधर भट्टकृत (अप्रकाशित पांडुलिपि)
15. लोकंद्र ब्रजोत्सव : लालकवि कृत (लीथो प्रति)
16. ब्रज तीर्थयात्रा : बेणीमाधव कृत (लीथो प्रति)
17. ब्रजयात्रा अष्टक : हितपरमानंददास कृत (अप्रकाशित पांडुलिपि)
18. वृंदावन पदक्षणा : श्यामादास कृत (अप्रकाशित पांडुलिपि)
19. ब्रजयात्रा : गोपालदास कृत (अप्रकाशित पांडुलिपि)
20. स्वजनानंद : नागरीदास कृत

21.बह्रूल–असरार : महमूदबल्खी कृत

22.भक्ति सागर : चरणदास कृत

23.गुरुभक्ति प्रकाश : रामरूप कृत

24.लीलासागर : ध्यानेश्वर जोगजीत कृत

25.सवाई जयसिंह चरित : कवि आत्माराम कृत

26.ब्रजप्रसाद बेली : चाचा हित वृंदावनदास कृत (अप्रकाशित पांडुलिपि)

27.जोधपुर की महारानी भटियाणी जी की तीर्थयात्रा वही (अप्रकाशित पांडुलिपि)

28.वनपरिक्रमा मथुरा–वृंदावनरी : माधवदास कृत (अप्रकाशित पांडुलिपि)

29.मथुरा : ए. डिस्टिक्ट मैनायर–ग्राउज कृत(विभिन्न विदेशी यात्रियों के यात्रा वर्णन)[2]

पुष्टिमार्ग प्रवर्तक गोस्वामी बल्लभाचार्य जी ने भारत की अनेक यात्राएँ कीं फलस्वरूप देश में 80 स्थानों पर उनकी बैठकें बनी हुई हैं। उनके उत्तराधिकारी बिट्ठलनाथ जी ने स्वयं छह यात्राएँ कीं। सन् 1600 से 1638 के मध्य ये छह यात्राएँ हुईं, जिनका विवरण इस प्रकार है–

1.) प्रथम यात्रा सं. 1600 में अड़ैल से प्रारंभ हुई थी

2.) द्वितीय यात्रा सं. 1613 में अड़ैल से ही आरंभ हुई थी

3.) तृतीय यात्रा सं. 1619 में गोंडवाना की राजधानी गढ़ा से आरंभ हुई थी

4.) चतुर्थ यात्रा सं. 1623 में मथुरा से आरंभ हुई थी। इस अवसर पर जब बिट्ठलनाथ जी गुजरात में थे, तब उनकी अनुपस्थिति में उनके ज्येष्ठ पुत्र गिरधर जी ने सं. 1623 की फाल्गुनी सप्तमी को श्रीनाथ जी का स्वरूप मथुरा में सतधरा में पधराया था।

5.) पंचम यात्रा सं. 1631 में गोकुल से आरंभ हुई थी। इस यात्रा में गोसाईं जी ने कुंभनदास को भी साथ चलने के लिए कहा था, किंतु वे श्रीनाथ जी को छोड़कर नहीं जा सके थे।[3]

6.) षष्ठ यात्रा सं. 1638 में गोकुल से प्रारंभ हुई थी उस समय श्री गिरधर जी भी गोसाईं जी के साथ गए थे।[4] वह गोसाईं जी की अंतिम बड़ी यात्रा थी।[5] वार्ता साहित्य में इन सब यात्राओं का वर्णन उपलब्ध है।

अलीगढ़ जनपद के सासनी निवासी सनाढ्य ब्राह्मण पंडित ब्रजबल्लभ मिश्र ने 'जयपुर बिहार' नामक छंदोबद्ध ग्रंथ की रचना की है। उन्होंने ग्रंथ– प्रयोजन स्पष्ट करते हुए लिखा है कि जो जयपुर नगर की यात्रा नहीं कर सकते वे इस ग्रंथ को पढ़कर जयपुर की मानसिक यात्रा कर सकते हैं। उन्होंने जयपुर के पुरद्वारों का वर्णन करते हुए लिखा है–

चाँदपोल सूरज पवल, अजमेरी आमेर।
घाटरू गंगापोल जहाँ, साँगानेर सहेर।।

सत द्वार दीरघ लसें, चौदह लघुतिहि ठोर।
वह जयपुर के द्वार में, राजत हैं चहुँ ओर।।
जयपुर के पुरद्वार में, लोहनि जड़े किवार।
तिन पर असर न कर सकें, गोलन हूं की मार।।
इंद्र–अश्व से अश्वबहू, ऐरावत गज जूह।
जयपुर के चहुँ फेर में, राजत चमू समूह।।
तोड़न कों सुलगाय कें, घोड़न के असवार।
जयपुर की रक्षा करें, द्वार–द्वार पुरद्वार।। [6]

अनुमानतः सं. 1790 से 1875 तक विद्यमान काल वाले संत श्री हितपरमानंद दास की वाणी का प्रकाशन हो गया है। उन्होंने सवैया छंद में 2 ब्रजभाषा अष्टक(प्रथम व द्वितीय) शीर्षक से 16 सवैया लिखे हैं। इसमें से कुछ सवैया प्रस्तुत हैं–

(1)

प्रथम अग्रवन, जमुना–दरसन, गऊघाट बलदेव वन है
पग–पग तीरथ सब ब्रजमंडल, श्री मथुरा वृंदावन है
मधुवन ताल कुदर वन, श्री संतान कुंड बहुलावन है
हित परमानंद जुगल रूप ब्रज देखे बिन घृक जीवन है

(2)

राधा कुंड जुगल तीरथ श्री कृष्ण कुंड कुसुमोवन है
आदि वद्रिका ग्वाल कुंड श्री अलकनंद गोवर्धन है
नैंन सरोवर इंद्र कूप श्री बरसानौ कामावन है
हित परमानंद जुगल रूप ब्रज देखे बिन घृक जीवन है

(3)

नंदग्राम अरू कियौ लठावन दीरघपुर सबकौ धन है
चीरघाट अरू नंदघाट तहाँ, देखि असंख्य कोटिवन है
भलौ शेरगढ़ पौढ़े ठाकुर, बड़ी शेषशायी तन है
हित परमानंद जुगल रूप ब्रज, देखे बिन धिक् जीवन है [7]

श्रीहित परमानंददास जी के इन ब्रजयात्रा अष्टक के 16 सवैयों में ब्रज के सभी मंदिरों, कुंडों, मुख्य वनों, उपवनों और प्रमुख स्थलों और आस–पास के ग्रामों का वर्णन किया गया है। इससे ब्रजयात्रा की सार्थकता सिद्ध हो सकती है।

गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी की ब्रजयात्राओं का भी वर्णन उपलब्ध हैः–

''गोसाईं बिट्ठलनाथ जी ने अनेक बार ब्रजयात्राएँ की थीं। वे यात्राएँ ब्रज चौरासी कोस की होती थीं जिन्हें यात्रा की अपेक्षा परिक्रमा कहना उचित होगा और वे पैदल ही की जाती थीं। गोसांई जी की वे परिक्रमाएँ सं. 1600 से 1628 तक के काल में कई बार की गईं। कवि जगतानंद ने सं. 1624 की परिक्रमा का पद्यबद्ध वृतांत लिखा है जो ''श्री गोसाईं जी की 'वनयात्रा' के नाम से उपलब्ध है। सं. 1628 की परिक्रमा का उल्लेख 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' के अंतर्गत पीतांबरदास की वार्ता

में मिलता है। ब्रज की परिक्रमा ब्रजमंडल के पुराण प्रसिद्ध 12 वनों और 24 उपवनों की होती थी।'' [8]

एक अन्य संत स्वामी चरणदास जी ने भी ब्रजयात्रा के महत्व का वर्णन किया है। उन्होंने ब्रजचरित्र वर्णन दोहा–चौपाई शैली में लिखा है। उन्होंने ब्रजस्थलों के महत्व, ब्रजकुंड, मंदिर, वनों, उपवनों आदि सबका वर्णन करते हुए यह भी बताया है कि किस स्थान पर कृष्ण ने कौन सी लीला की थी। वे कहते हैं–

''जामें बारह वन बड़भागी, बारह उपवन है अनुरागी
जिन माहीं हरि वेणु बजावैं मधुर–मधुर बाँके सुर गावें'' [9]

हिंदी की प्रथम पद्यात्मक आत्मकथा बनारसीदास जैन कृत 'अर्धकथानक' है। इसमें भी उन्होंने यात्राओं का वर्णन किया है। उन्होंने अपनी वटेश्वर यात्रा के संबंध में फीरोजाबाद का भी उल्लेख किया है। ''भाड़ौ कियो फिरोजाबाद'' वस्तुतः ब्रजभाषा के सुमधुर और ललित भाषा होने के कारण उसका कलापक्ष अत्यंत सशक्त रहा। इसलिए जितना यात्रा साहित्य उसमें मिलता है वह पद्यात्मक ही है। ये यात्राएँ दो प्रकार की हैं। एक ब्रज के संतों–महंतों, संतों, विद्वानों और भागवतकारों की ब्रज से बाहर के स्थानों के तीर्थों की यात्राएँ तथा संपूर्ण देश के कृष्णभक्त एवं जिज्ञासुओं की ब्रज की ओर यात्रा। असम में सामाजिक और धार्मिक क्रांति के सूत्रधार श्रीमंत शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव ने भी ब्रज की यात्रा की थी। इससे संबंधित पांडुलिपियाँ गद्य और पद्य दोनों में उपलब्ध हैं, उनके प्रकाशनोपरांत संभव है कुछ और तथ्य सामने आएँ।

संदर्भ सूची

1. स्कंदपुराण 29/17–23
2. अप्रकाशित ग्रंथ सूची
3. वार्ता प्रसंग–71 लीला भावना वाली चौरासी वैष्णव की वार्ता, पृष्ठ–804
4. अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय–डॉ. दीनदयाल गुप्ता (द्वितीय भाग), पृष्ठ–566, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग–द्वितीय संस्करण–197
5. कृष्णभक्ति साहित्य–डा. रामकृष्ण शर्मा, पृष्ठ–76–77, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली 2008
6. जयपुर बिहार–पं. ब्रजबल्लभ मिश्र (बल्लभ कवि), पृष्ठ–11, अप्रैल 1902
7. श्रीहित परमानंददास की वाणी–संपादक श्याम बिहारी लाल खण्डेलवाल, ब्रजयात्रा अष्टक (प्रथम) पृष्ठ 116
8. कृष्ण भक्ति साहित्य : तात्विक विवेचन– डॉ. रामकृष्ण शर्मा, पृष्ठ–71
9. श्री स्वीमा चरणदास का ग्रंथ– ब्रजचरित्र वर्णन, पृष्ठ–3–4

संपर्क

86, तिलकनगर, बाईपास रोड़, फिरोजाबाद, उ.प्र.–283203
फोन– 9412316779, ई मेल– dryayavar@gmail.com

❑❑❑

हिंदी वर्तनी की समस्याएँ

दिनेश चमोला 'शैलेश'

विभिन्न विधाओं में छिहत्तर पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पत्रिकाओ के विशेषांक का अतिथि संपादन। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास (शिक्षा मंत्रालय) की हिंदी सलाहकार समिति के सम्मानित सदस्य। साहित्य अकादमी (बाल साहित्य) पुरस्कार सहित राष्ट्रीय स्तर पर पचास से अधिक पुरस्कार/सम्मान प्राप्त। संप्रति–डीन, आधुनिक ज्ञान विज्ञान संकाय एवं अध्यक्ष, भाषा एवं ज्ञान विज्ञान विभाग, उत्तराखंड संस्कृत विश्वविद्यालय।

यद्यपि भाषाई अनुप्रयोग में वर्तनी व व्याकरण का उपयोग पूर्व से ही किया जाता रहा है किंतु भारतीय संदर्भ में हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकृति मिलने के उपरांत अनुप्रयोग व व्यवहार के धरातल पर उपस्थित प्रयोगगत समस्याओं व वैविध्य के कारण इसके मानक स्वरूप का निर्धारण अत्यंत अनिवार्य हो गया। मौखिक व व्यावहारिक धरातल पर भाषा के ऐसे मानक रूप के निर्धारण की आवश्यकता हुई कि जो प्रयोग के साथ–साथ इलैक्ट्रॉनिक उपकरणों अर्थात् कंप्यूटर, टाइपराइटर आदि माध्यमों के लिए भी व्यवहार्य, सहज व सुगम रूप में उपयोग में आने वाला हो। भाषाई अनुप्रयोग व व्यवहार में जब अत्यधिक स्वातंत्र्य प्राप्त होता है तो भाषिक अभिव्यक्ति व अनुप्रयोग में अर्थ संप्रेषण के वैविध्य के साथ–साथ भाषा, शब्दावली वर्तनी के स्तर पर अराजकता की पर्याप्त संभावनाएँ बढ़ने लग जाती हैं। शासकीय स्तर पर भाषा की मानकता सुनिश्चित करने की दृष्टि से केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (अब शिक्षा मंत्रालय), नई दिल्ली ने सन् 1967 में 'हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' नामक पुस्तिका का प्रकाशन किया, जिसमें वर्तनी के मानक स्वरूप पर भी चर्चा की गई।

भाषा की मानकता से पूर्व वर्तनी की मानकता अत्यंत आवश्यक है। जब वर्तनी के प्रयोग में एकरूपता होगी तभी वृहद् स्तर पर भाषाई प्रचार–प्रसार का मुख्य उद्देश्य सार्थकता के गंतव्य तक पहुँचेगा। भाषा का जन्म व्याकरण से पूर्व होता है तथा समय के साथ–साथ व्याकरण भाषा का अनुसरण व अनुकरण कर जीवन विकास की सीढ़ियाँ चढ़ता है। भाषाई आदान–प्रदान व अर्थ संप्रेषण के साथ–साथ भाषा को प्राणज्ञान बनाने में वर्तनी, शब्द व वाक्यविन्यास की भूमिका असंदिग्ध है। अतः बहुत आवश्यक है वर्तनी के तात्पर्य से परिचित होना।

वर्तनी से तात्पर्य

'वर्तनी' भाषा विकास के भवन की वह ऊर्जावान आधारशिला है जिससे अभिव्यक्ति व भाव–संप्रेषण की संकल्पना प्राणवान होती है। बिना वर्तनी अक्षरविन्यास,

वर्णविन्यास अथवा हिज्जे की गौरवपूर्ण उपस्थिति के भाषाई सौंदर्य में निखार व अभिव्यक्ति संप्रेषण को जीवनी शक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। 'वर्तनी' शब्द मूलतः संस्कृत में 'वर्त्मनि' तथा 'वर्त्मनी' 'वर्त्गनी' रूप में मिलता है जिसका अर्थ 'सड़क', 'मार्ग', 'पथ', 'रास्ता' व 'सरणि' आदि है। अतः वर्तनी भाषा के भवन तक पहुँचने का एक वह वर्णमालारूपी सफलतम 'मार्ग' 'रास्ता' व 'सरण' है, जिससे वर्ण के अस्तित्व व स्वरूप का मूलभूत दिग्दर्शन होता है।

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने 'वर्तनी' को परिभाषित करते हुए कहा हैः—

'किसी भाषा का कोई शब्द किसी वर्णमाला में जिस रूप में लिखा जाता है वही उसकी वर्तनी होती है'[1]

ज्ञानमंडल, वाराणसी के 'वृहद् हिंदी कोश' में 'वर्तनी' को व्यापक रूप में परिभाषित करते हुए लिखा गया हैः—

'भाषा—साम्राज्य के अंतर्गत भी शब्दों की सीमा में अक्षरों की जो आचार—संहिता अथवा अनुशासनगत संविधान है उसे ही हम वर्तनी की संज्ञा दे सकते हैं। वर्तनी भाषा का वर्तमान है। वर्तनी भाषा का अनुशासित आवर्तन है, वर्तनी शब्दों का संस्कारित पदविन्यास है, वर्तनी अतीत और भविष्य के मध्य का सेतु सूत्र है। यह अक्षर—संस्थान और वर्णक्रम विन्यास है।'[2]

अतः कहा जा सकता है कि 'वर्तनी' किसी भी वर्णमाला के हिस्से का वह नैतिक स्वरूप है जो अनुशासनबद्धता के गुण का निर्वहन करते हुए ऊर्ध्वमुखी भाषा—यात्रा में प्रयोगधर्म की अभिस्वीकृति प्राप्त कर भाषाई विकास में निरंतर सहायक व उत्प्रेरक सिद्ध होती है। वर्तनी की प्रामाणिकता तथा सामाजिक स्वीकृति ही दूसरे अर्थों में भाषाई विकास को गति प्रदान करता है। अर्थवत्ता तथा भावसंप्रेषण की दृष्टि से जिस भाषा की वर्तनी में जितनी सार्थकता होगी, वह भाषा उतनी ही व्यावहारिक दृष्टि से समृद्ध व लोकप्रिय होगी।

हिंदी वर्तनी का मानकीकरण

किसी भी भाषा के विकास अथवा प्रचार—प्रसार में जिन दो तत्वों की प्रमुख विशेषता अथवा महत्व होता है, वे हैंः— i) व्याकरण तथा ii) लिपि। हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी है। वर्णमाला के रूप में अभिज्ञात इसके लिपिचिह्नों का प्रथम पक्ष है सामान्य व विशिष्ट स्वनों के अलग प्रतीक—वर्णों की समृद्धि तथा दूसरा पक्ष है, वर्तनी। विविध वर्णों द्वारा एक स्वन को जब अलग—अलग रूप में लिखा अथवा प्रस्तुत किया जाता है तो स्वन की वैविध्यपूर्ण अभिव्यक्ति प्रयोक्ताओं के लिए सहजता के बजाय एक समस्या के रूप में सामने आती है। हिंदी एक अत्यंत वैज्ञानिक भाषा है इसमें जो बोला जाता है वही देवनागरी (लिपि) में लिखा जाता है। वर्तनी की इस वर्ण विन्यास अवस्था पर श्रीशरण के ये विचार समीचीन लगते हैंः—

''वर्तनी से हमारा तात्पर्य है– सार्थक भाषा इकाइयों का वर्ण–विन्यास। भाषा की सार्थक इकाई के रूप में शब्द हमारे मन में रहता है। इसकी अमूर्त संकल्पना को अभिव्यक्त करने के दो माध्यम हैं– ध्वनि और लेखन। वर्तनी का संबंध लेखन से रहता है तथा सामान्य रूप से शब्द जैसी सार्थक भाषिक इकाई के वर्ण–विन्यास के रूप में उसे परिभाषित किया जाता है।''[3]

इन्हीं दो बातों अथवा तत्वों के समर्थन में डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखते हैं:–

"वर्तनी में मुख्यतः दो बातें आती हैं–

अ) शब्द विशेष के लेखन में किन अक्षरों (लेटर्स) का प्रयोग किया जाए।

आ) लेखन में उन अक्षरों का क्या क्रम हो।''[4]

अनुप्रयोग तथा व्यवहार की दृष्टि से वर्तनी शब्द व भाषा के परिष्करण व मानकीकरण समय व समाज की माँग हो जाती है। यद्यपि शासकीय स्तर पर शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार ने 1961 में आठ सदस्यीय हिंदी वर्तनी समिति गठित की, जिसने 19 अप्रैल 1961 को आयोजित अपनी अंतिम बैठक में हिंदी वर्तनी संबंधी नियमावली का निर्धारण किया जो पर्याप्त विचार–विमर्श के उपरांत 1967 में 'हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' नामक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुई, तथापि हिंदी वर्तनी के मानकीकरण के प्रयास सन् 1884 में छत्रधारी सिंह के विविध वर्तनी संग्रह 'लेख नियम' नामक प्रकाशित पुस्तक से मिलने प्रारंभ हो गए थे, काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 1902 में हिंदी वर्तनी तथा व्याकरण विषयक पुस्तक, विभिन्न हिंदी सेवी साहित्यकार अखिल भारतीय प्रकाशक संघ (1960), भारतीय हिंदी परिषद (1961) आदि द्वारा सरकारी व गैर सरकारी स्तर पर इस क्षेत्र में पर्याप्त कार्य किया गया।

हिंदी वर्तन के मानकीकरण के संदर्भ में डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया के ये विचार द्रष्टव्य हैं:–

'हिंदी संघ और कुछ राज्यों की राजभाषा स्वीकृत हो जाने के फलस्वरूप देश के भीतर और बाहर हिंदी सीखने वालों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि हो जाने के कारण हिंदी वर्तनी की मानक पद्धति निर्धारित करना बहुत आवश्यक और कालोचित जान पड़ा ताकि हिंदी शब्दों की वर्तनियों में अधिकाधिक एकरूपता लाई जा सके।'[5]

<u>हिंदी वर्तनी की समस्याएँ:–</u>

वर्तनी का मानकीकरण जहाँ प्रयोक्ताओं के लिए सहजता व सरलता का माध्यम सिद्ध हुआ वहीं प्रयोग के धरातल पर शब्द, अर्थ, वर्तनी व अर्थ–संप्रेषण की दृष्टि से इसके बहुविध प्रयोग ने उच्चारण से लेकर लेखन तक अराजकता की स्थिति पैदा कर अभिव्यक्ति से लेखन व प्रकाशन तक कई–कई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न भी कर दीं। वर्तनी की समस्या से अभिव्यक्ति की सार्थकता तो खंडित हुई ही, वाक्य–विन्यास से लेकर भाव–संप्रेषण तक विचित्र व संदेह की स्थिति भी उत्पन्न हो गई कि प्रयुक्त इन

विभिन्न वर्तनी रूपों में से मानकीकृत प्रामाणित व सर्वस्वीकृत रूप आखिर कौन सा है।

अतः दैनंदिन कार्य–व्यवहार में आने वाली कुछ वर्तनी संबंधी समस्याओं को निम्नलिखित रूप में रेखांकित किया जा सकता हैः–

(1) **स्वर तथा मात्रा संबंधी समस्याएँ**:–

उच्चारण का सही होना सही व उत्तम लेखन के लिए अत्यंत अनिवार्य है। प्रायः दीर्घ व ह्रस्व स्वरों तथा मात्राओं का उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त अनुप्रयोग सुनिश्चित न होने के कारण जहाँ अभिव्यक्ति प्रवाहहीन व निष्प्रभावी हो जाती है, वहीं वाक्य व भाषा की सार्थकता अमर्यादित होकर अर्थ का अनर्थ करने के लिए बाध्य हो जाती है। यह समस्या प्रादेशिक बोली भाषाओं अथवा दूसरी भाषाओं का उपयोग करने वाले वक्ताओं के संपर्क में आने से भी संभव हो जाती है। कई बार 'अ' के स्थान पर 'आ' तथा 'आ' के स्थान पर 'अ' का प्रयोग हो जाने से अर्थभेद हो जाता हैः–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
अकार	आकार	इस कमरे का अकार क्या है?
अहार	आहार	बच्चों के लिए पौष्टिक अहार आवश्यक है।
मरना	मारना	तीर निशाने (लक्ष्य) पर मरना चाहिए।
अकांक्षा	आकांक्षा	उसकी अकांक्षा है कि वह डी.एम. बने।
अजीवन	आजीवन	इस परमार्थ के लिए मैं आपका अजीवन ऋणी रहूँगा।
नराज	नाराज	आप छोटी सी बात पर नराज हो गए।
संसारिक	सांसारिक	संसारिक विषय कष्ट ही देते हैं।
भवार्थ	भावार्थ	मुझे इसका भवार्थ समझाइए।
व्यवहारिक	व्यावाहारिक	इसके व्यवहारिक लाभ क्या–क्या हैं?
सप्ताहिक	साप्ताहिक	मेरा सप्ताहिक अखबार निकालने का मन है।
अधार	आधार	इस सत्य का अधार क्या है?
बरात	बारात	आप बरात के लिए आमंत्रित हैं।

इसी प्रकार कई शब्दों में 'अ' के स्थान पर 'आ' (ा) की मात्रा के कारण अर्थ का अनर्थ हो जाता है जैसे–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
हस्ताक्षेप	हस्तक्षेप	इस कार्य में आप अनावश्यक हस्ताक्षेप न करें।
आधीन	अधीन	संपूर्ण विभाग मेरे पिताजी के आधीन है।

लागान	लगान	लागान की समय से वसूली जरूरी है।
लागाम	लगाम	घोड़े की लागाम कस दो।
बांगला	बंगला	यह बांगला बहुत सुंदर है।
अनाधिकार	अनधिकार	इसके लिए अनाधिकार चेष्ठा न करें।
हाथिनी	हथिनी	राजाजी पार्क की हाथिनी हिंसक हो गई।
अत्याधिक	अत्यधिक	अत्याधिक गरमी से फसलें नष्ट हो गईं।
आधमरा	अधमरा	बाघ ने गाय को आधामरा छोड़ दिया।
लाखपति	लखपति	उसका पूरा परिवार लाखपति है।

कई शब्दों में 'इ' (ि) की मात्रा की जगह 'ई' (ी) का प्रयोग होने पर अर्थसंप्रेषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है यथा–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
पीता	पिता	उसके पीता का स्वास्थ्य ठीक नहीं है।
आदी	आदि	वह झूठ बोलने का आदी है।
प्रतीज्ञा	प्रतिज्ञा	उसने झूठ न बोलने की प्रतीज्ञा की है।
साड़ीयाँ	साड़ियाँ	सुंदर साड़ीयाँ सबको पसंद आती हैं।
क्योंकी	क्योंकि	वह पार्टी में इसलिए नहीं पहुँचा क्योंकी वह अस्वस्थ था।
नीरिक्षण	निरीक्षण	परसों से मंत्रालय नीरिक्षण करेगी।
कालीदास	कालिदास	कालीदास की जन्मभूमि उत्तराखंड है।
अभीनेता	अभिनेता	अभीनेता बनना नेता बनने से कठिन है।
अभीनय	अभिनय	मुझे अभीनय का बचपन से शौक है।
अभीमान	अभिमान	इनसान को अभीमान नहीं करना चाहिए।
अवधी	अवधि	इस फीस की अवधी क्या है?
नीराशा	निराशा	नीराशा से जीवन नहीं चलता।

इसी प्रकार कुछ शब्दों में 'ई' (ी) की मात्रा के स्थान पर 'इ' (ि) का प्रयोग होने पर अर्थवत्ता नष्ट हो जाती है:–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
परिक्षण	परीक्षण	नौकरी के लिए शारीरिक परिक्षण अनिवार्य है।
परिक्षा	परीक्षा	उसने अच्छे से परिक्षा उत्तीर्ण की।
दिपावली	दीपावली	दिपावली दीयों का त्योहार है।

श्रीमति	श्रीमती	उसकी श्रीमति उससे कई दिनों से नाराज है।
बिमारी	बीमारी	बिमारी का इलाज जरूरी है।
महाबलि	महाबली	महाबलि खली पर हमें गर्व है।
मिनार	मीनार	कुतुब मिनार देख वह फूला न समाया।
समिक्षा	समीक्षा	पुस्तक समिक्षा पर लेखक नाराज हो गए।
प्रतिक्षा	प्रतीक्षा	उसे अपने मित्र के आने की प्रतिक्षा है।
बेइमान	बेईमान	बेईमान लोगों का साथ अच्छा नहीं होता।
पत्नि	पत्नी	उसकी पत्नि उससे उम्र में चार वर्ष बड़ी है।
प्रतिक्षा	प्रतीक्षा	उसे अपने मित्र के आने की प्रतिक्षा है।
बेइमान	बेईमान	बेइमान लोगों का साथ अच्छा नहीं होता।
पत्नि	पत्नी	उसकी पत्नि उससे उम्र में चार वर्ष बड़ी है।

कई शब्दों में 'अ' की मात्रा के स्थान पर 'इ' (ि) की मात्रा लगने से अर्थ संप्रेषण में असुविधा होती है, यथा–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
फजूलखर्ची	फिजूलखर्ची	फजूलखर्ची अच्छी आदत नहीं है।
साहिब	साहब	उसके साहिब बड़े दयालू हैं।
अहल्या	अहिल्या	भगवान राम ने अहल्या का उद्धार कर दिया।
बहिन	बहन	उसकी बहिन बहुत होशियार है।
छिपकिली	छिपकली	छिपकिलियों ने घर में आतंक मचा रखा है।
साइकल	साइकिल	साइकल की सवारी उसे अच्छी लगती है।
पहिला	पहला	उसका पहिला काव्यसंग्रह सन् 80 में छपा था।
बाहिर	बाहर	बाहिर मौसम गरम है।
प्रदर्शिनी	प्रदर्शनी	प्रदर्शिनी देखकर वह बहुत खुश हुआ।
तिरिस्कार	तिरस्कार	बुजुर्गों का तिरिस्कार अच्छी बात नहीं है।
साहिबजादा	साहबजादा	उन्हें अपने साहिबजादे पर नाज़ है।

बहुत शब्दों में 'इ' (ि) के स्थान पर 'अ' की मात्रा लग जाने से अर्थ के अनर्थ हो जाने की समस्या बनी रहती है। यथा–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
महला	महिला	गाँव में महला पंचायत का गठन हो गया।
माचस	माचिस	एक माचस की तीली विनाश के लिए काफी है।
नायका	नायिका	उस फिल्म की नायका बहुत सुंदर थी।
मैथली	मैथिली	मुझे मैथली लोकगीत अच्छे लगते हैं।
गृहणी	गृहिणी	घर की शोभा गृहणी से होती है।
रोहणी	रोहिणी	रोहन का घर रोहणी में है।
युधिष्ठर	युधिष्ठिर	उसने युधिष्ठर का किरदार निभाया।
अध्यात्मक	अध्यात्मिक	अध्यात्मक ज्ञान जीवन की उन्नति हेतु आवश्यक है।
समाजक	सामाजिक	उसके पिता समाजक कार्यकर्ता हैं।
रचयता	रचयिता	'रामचरितमानस' के रचयता कौन थे?
प्रफुल्लत	प्रफुल्लित	अपने मित्र को देख वह प्रफुल्लत हो उठा।
कवयत्री	कवयित्री	महादेवी वर्मा श्रेष्ठ कवयत्री थी।
गायका	गायिका	उसकी बुआ चर्चित गायका हैं।
गृहस्वामनी	गृहस्वामिनी	शिष्टाचार गृहस्वामनी का आभूषण है।
ग्वालन	ग्वालिन	जंगल जाना ग्वालन का दैनिक कार्य है।

हिंदी वर्तनी की समस्याओं के क्रम में 'ऊ' (ू) की मात्रा के स्थान पर 'उ' (ु) लग जाने से अर्थ की दृष्टि से समस्या उत्पन्न हो जाती है, यथा–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
तुफान	तूफान	तुफान से सारे नए फल टूट गए।
अनुदित	अनूदित	उसकी अनुदित पुस्तक प्रकाशित हो गई।
सुरज	सूरज	सुरज निकलते ही चिड़ियाँ चहक पड़ीं।
आपुर्ति	आपूर्ति	आजकल विद्युत आपुर्ति बहुत बाधित है।
स्कुल	स्कूल	छुट्टियों के बाद सारे स्कुल खुल गए।
जादुगर	जादूगर	जादुगर में भी गजब की कला होती है।
युनिफॉर्म	यूनिफॉर्म	युनिफॉर्म स्कूल से ही लेनी पड़ी।
सुचना	सूचना	मित्र के देहांत की सुचना ने उसे हिला दिया।
स्फुर्ति	स्फूर्ति	अच्छे कार्य के लिए अच्छी स्फुर्ति जरूरी है।
दुसरा	दूसरा	उसका दुसरा भाई निठल्ला है।
बधु	वधू	बधु के पहुँचते ही बरातियों का स्वागत हुआ।
सुआ	सूआ	कपड़ा फट गया, सुआ लाओ।

इसके विपरीत 'उ' (ु) के स्थान पर 'ऊ' (ू) की मात्रा लग जाने के कारण भी वर्तनी की समस्या व अर्थ के अनर्थ हो जाने का संकट बढ़ जाता हैः–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
धूआँ	धुआँ	जंगल में आग लगने से धूआँ ही धूआँ हो गया।
अनूज	अनुज	राम मोहन का अनूज है।
आयू	आयु	उसकी आयू अठारह साल है।
वायू	वायु	दिल्ली की वायू अच्छी नहीं है।
जलवायू	जलवायु	शहरों की जलवायू प्रदूषित है।
ऊत्थान	उत्थान	मेहनत से ही ऊत्थान संभव है।
शंभू	शंभु	शंभू चाचा बहुत ईर्ष्यालु हैं।
रेणूका	रेणुका	रेणूका झील में इस बार पानी कम है।
अनूचित	अनुचित	हमें अनूचित कार्य नहीं करने चाहिए।
अनूत्तरित	अनुत्तरित	वहाँ सारे प्रश्न अनूत्तरित रह गए।
साधू–संत	साधु–संत	नदी–किनारे बहुत साधू–संत रहते हैं।

इसी तरह 'ऋ' के गलत प्रयोग के कारण भी शब्द की अर्थवत्ता नष्ट हो जाती है जिससे वर्तनी की समस्या उत्पन्न होती हैः–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
मात्रभाषा	मातृभाषा	हमें अपनी मात्रभाषा पर गर्व होना चाहिए
मात्रभूमि	मातृभूमि	मात्रभूमि की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है
रिषि कुमार	ऋषि कुमार	रिषि कुमार यज्ञ कर रहे हैं।
बृजभाषा	ब्रजभाषा	बृजभाषा में बहुत साहित्य है।
क्रिपण	कृपण	क्रिपण व्यक्ति अच्छा नहीं होता
निष्कृय	निष्क्रिय	निष्कृय बैठना औदूंपन है।
श्रृंगार	शृंगार	वह श्रृंगार की कविता करता है।
अनुग्रहीत	अनुगृहीत	आपने मुझे अनुग्रहीत कर दिया
दृशक	दर्शक	वहाँ दृशकों की भीड़ थी।
द्रश्य	दृश्य	नाटक के द्रश्य मार्मिक थे।
सृजक	सर्जक	सृजक होना ईश्वरीय कृपा है।
समादरित	समाद्रत	श्रेष्ठ व्यक्ति ही समादरित होता है।

कई बार शब्दों में 'ए' (े) के स्थान पर 'ऐ' (ै) तथा 'ऐ' के स्थान पर 'ए' (े) लग जाने से भी वर्तनी की समस्या उत्पन्न हो जाती हैः–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
एनक	ऐनक	दादीजी की एनक मेज पर पड़ी है।
एच्छिक	ऐच्छिक	मैंने एच्छिक विषय के रूप में संस्कृत पढ़ी।
सेनिक	सैनिक	भारतीय सेनिक अपनी बहादुरी के लिए जाने जाते हैं।
एतवार	ऐतवार	माँ ने राजन पर एतवार ही कब किया?
एसा	ऐसा	एसा उदाहरण देखने को नहीं मिलेगा।
एतिहासिक	ऐतिहासिक	वह घटना सचमुच एतिहासिक थी।
चाहिऐ	चाहिए	उन्हें बड़ों का आदर करना चाहिऐ।
आइऐ	आइए	आइऐ आपका स्वागत है।
जाइऐ	जाइए	शिक्षार्थ आइऐ, सेवार्थ जाइऐ।
राजनीतक	राजनीतिक	यह मामला राजनीतक है।
ऐकता	एकता	ऐकता में बड़ा बल है।
भाषाऐं	भाषाएँ	कई भाषाऐं सीखनी चाहिए।
लिऐ	लिए	यह कलम राम के लिऐ है।
स्वेच्छिक	स्वैच्छिक	स्वेच्छिक सेवा का अपना आनंद है।
वैश्या	वेश्या	वह वैश्या है।

शब्दों में 'यी' के स्थान पर 'ई' तथा 'ई' के स्थान पर 'यी' लग जाने से भी वर्तनी की समस्या उत्पन्न होती हैं–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
लड़ायी	लड़ाई	हमने बैलों की लड़ायी देखी।
पढ़ायी	पढ़ाई	हम पढ़ायी के लिए विद्यालय जाते हैं।
सख्तायी	सख्ती	अधिक सख्तायी भी ठीक नहीं है।
सिलायी	सिलाई	वह आजकल सिलायी सीख रही है।
बुनायी	बुनाई	रानी बुनायी में दक्ष है।
कढ़ायी	कढ़ाई	वह अच्छी कढ़ायी करती है।
मिठायी	मिठाई	मिठायी किसको अच्छी नहीं लगती।
स्थाई	स्थायी	उसका स्थाई घर पहाड़ में है।

भाषायी	भाषाई	भाषायी ज्ञान भी बहुत आवश्यक है।
विजई	विजयी	आखिर वही चुनाव में विजई हुआ।
विषई	विषयी	विषई आसक्ति दुख देती है।
दवायी	दवाई	दवायी का अधिक सेवान हानिकारक है।
कठिनायी	कठिनाई	वह कठिनायी से परिवार का पालन–पोषण करता है।
न्याई	न्यायी	विक्रमादित्य न्याई राजा थे।
मितव्यई	मितव्ययी	मितव्यई होना अच्छी बात है।
उत्तरदाई	उत्तरदायी	हमें अपने काम के प्रति उत्तरदाई होना
दुखदाई	दुखदायी	उनकी आकस्मिक मृत्यु दुखदाई है।

इसी तरह 'ओ' (ो) की मात्रा के स्थान पर 'औ' (ौ) तथा विलोमतः प्रयुक्त होने पर भी वर्तनी की समस्या उत्पन्न होती हैः–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
अलोकिक	अलौकिक	पहाड़ का सौंदर्य अलोकिक था।
ओद्योगिक	औद्योगिक	गुड़गाँव ओद्योगिक केंद्र है।
भूगोलिक	भौगोलिक	हमें भूगोलिक ज्ञान होना भी आवश्यक है।
सोष्ठव	सौष्ठव	सूर का काव्य सोष्ठव गजब है।
गोरव	गौरव	राम अपने कुल का गोरव है।
आत्मगोरव	आत्मगौरव	प्रत्येक को आत्मगोरव होना चाहिए।
सोरभ	सौरभ	उसका नाम सोरभ है।
कसोटी	कसौटी	वह कसोटी पर बिलकुल खरा उतरा।
त्यौहार	त्योहार	दीपावली दीपों का त्यौहार है।
कौमल	कोमल	उसका ह्रदय कौमल है।
ओद्यौगिक	औद्योगिक	फरीदाबाद एक ओद्योगिक नगर है।
भूगौलिक	भौगोलिक	यहाँ की भूगौलिक स्थितियाँ भिन्न हैं।
गोतम	गौतम	यह गोतम ऋषि की कर्मस्थली है।
गोचर	गौचर	गोचर उत्तराखंड़ का सुंदर कस्बा है।
उपन्यासिक	औपन्यासिक	प्रेमचंद का उपन्यासिक अवदान अप्रतिम है।
ओपचारिक	औपचारिक	यह ओपचारिक रूप से आवश्यक है।
प्रोढ़ शिक्षा	प्रौढ़ शिक्षा	प्रोढ़ शिक्षा निदेशालय कुछ ही दूरी पर है।

प्रोढ़ा	प्रौढ़ा	उस प्रोढ़ा के सौंदर्य ने सबका मन मोह लिया।
छौकरी	छोकरी	उस छौकरी की उम्र लगभग सोलह साल है।
टौकरी	टोकरी	उसने सिर पर टौकरी उठाई।
नोकरी	नौकरी	नोकरी के लिए वह दर–दर भटक रहा है।
होसला	हौसला	उसके होसले ने सबको अचंभित कर दिया।
कोशल	कौशल	राम के बुद्धि कौशल का सब लोहा मानते हैं।
दौना	दोना	वह दौना भर खीर भर लाया।
टौना	टोना (जादू)	जादू–टौना करना उनकी पुश्तैनी आदत है।

अनुस्वार एवं अनुनासिक के गलत प्रयोग से भी वर्तनी को समस्याओं को प्रसार मिलता है–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
महिंमा	महिमा	ईश्वर की महिंमा अनंत है।
जांति	जाति	उनकी जांति ब्राह्मण है।
जांति–पांति	जाति–पाति	वह जांति–पांति के भेदभाव को नहीं मानते।
पूंछना	पूछना	वह प्रश्न का उत्तर पूंछना चाहता था
सोंचकर	सोचकर	यह सोंचकर वह बहुत दुखी हुआ।
डांकू	डाकू	वह चंबल का कुख्यात डांकू था।
डांकिया	डाकिया	डांकिया रोज डॉक लाता है।
दुनियांदारी	दुनियादारी	दुनियांदारी उसके बूते की बात नहीं।
हांथ	हाथ	उसके हांथ बहुत लंबे हैं।
हांथ–पांव	हाथ–पांव	लड़ाई में उसके हांथ–पांव जख्मी हो गए।
गाँधी	गांधी	2 अक्तूबर, गाँधी जी की जन्मतिथि है।
हंसमुख	हँसमुख	वह बहुत हंसमुख है।
गंवार	गँवार	रमन गंवार किस्म का लड़का है।
पंवार	पँवार	वह स्वयं को पंवारवंशी मानता है।
रँगसाज़/रेज़	रँगसाज़/रेज़	करीमबक्स अच्छा रँगसाज़ है।
मै	मैं	मै कल ही मुंबई से लौटा।
नें	ने	यह करतूत उसीनें की है।
अंगूठी	अँगूठी	उसने विवाह की अगूंठी खरीदी।

चांद	चाँद	आज चांद पूरा दिखाई दिया।
ऊंट	ऊँट	ऊंट रेगिस्तान का जहाज है।
आंगन	आँगन	वह आगंन रोग बुहारती है।

स्वर संयोग के कारण भी कई बार शब्दों में वर्तनी दोष की संभावनाएँ बढ़ती रहती हैं, यथा–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
डाकूओं	डाकुओं	डाकूओं से सभी भयभीत रहते हैं।
जायिये	जाइए	सेवार्थ जायिये शिक्षार्थ जाइए।
खायिए	खाइए	आइए फल खायिये
लायिये	लाइए	अपना प्रवेशपत्र सत्यापन हेतु लायिये
लिये	लिए	यह चाय मेरे लिये है।
पिओ	पियो	बेटा दूध पिओ।
खावो	खाओ	अपना खाना खावो।

विसर्ग (:) का प्रयोग संस्कृत में बहुतायत में होता है जबकि हिंदी में विसर्ग (:) नहीं है। विसर्ग की ध्वनि अघोष (ह) के समान है, विसर्ग का प्रयोग संस्कृत के तत्सम शब्दों में अनिवार्य रूप से होता है। विसर्ग के सही प्रयोग न होने के कारण भी वर्तनी में समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, यथाः–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
प्रायह	प्रायः	प्रायह वह रोता ही रहता है।
प्रातह	प्रातः	वहाँ प्रातह सुंदर थी।
अंतहकरण	अंतःकरण	हमें अपना अंतहकरण निर्मल रखना चाहिए।
अक्षरशह	अक्षरशः	वह बात अक्षरशह सत्य थी।
शब्दशह	शब्दशः	मैं इस बात का शब्दशह पालन करूँगा।
मुख्यतह	मुख्यतः	मुख्यतह दोष उसी का था।
प्रमुखतह	प्रमुखतः	प्रमुखतह वे इसी कोटि में आते हैं।
सारतह	सारतः	सारतह प्रस्तुत किया जाए।
सामान्यतह	सामान्यतः	सामान्यतह ऐसा होता नहीं।
क्रमशह	क्रमशः	क्रमशह विवरण इस प्रकार है।
दुखह	दुःख	दुखह (दुहख) का कोई पारावार नहीं।
अंतहकथा	अंतःकथा	अंतहकथा इसमें कुछ और थी।
अधह	अधः	अधहलिखित विवरण देखिए।

(2) **व्यंजन संबंधी समस्याएँ**:–

बहुत बार उच्चारण की अशुद्धता के कारण वर्तनी दोष में वृद्धि हो जाती है किंतु कई बार एक वर्ण के स्थान पर दूसरे वर्ण के प्रयोग से इस समस्या का संवर्धन होता है। 'ट' के स्थान पर 'ठ' तथा 'ठ' के स्थान पर 'ट' के प्रयोग से वर्तनी की बढ़ रही समस्या के कुछ ज्वलंत प्रमाण इस प्रकार हैं:–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
परिशिष्ठ	परिशिष्ट	परिशिष्ठ 'क' देखिए।
द्रष्ठा	द्रष्टा	वह महान स्वप्नद्रष्ठा थे।
स्पष्ठ	स्पष्ट	विवरण स्पष्ठ है।
सृष्ठि	सृष्टि	सृष्ठि का व्यवहार अनूठा है।
हृष्ठ–पुष्ठ	हृष्ट–पुष्ट	उनके बैल हृष्ठ–पुष्ठ हैं।
समाविष्ठ	समाविष्ट	इसे भी उसमें समाविष्ठ किया जए।
स्पष्ठीकरण	स्पष्टीकरण	स्पष्ठीकरण तत्काल अपेक्षित है।
कष्ठ	कष्ट	कष्ठ के लिए खेद है।
नष्ठ	नष्ट	इस दस्तावेज को नष्ठ किया जाए।
भ्रष्ठ	भ्रष्ट	राजनीति भ्रष्ठ हो गई है।
दृष्ठांत	दृष्टांत	उन्होंने कई दृष्ठांत देकर समझाया।
वरिष्ट	वरिष्ठ	वह वरिष्ट अधिकारी हैं।
कनिष्ट	कनिष्ठ	उनका कनिष्ट पुत्र बहुत घमंडी है।
श्रेष्ट	श्रेष्ठ	इसमें श्रेष्ट निबंध संकलित हैं।
सत्यनिष्ट	सत्यनिष्ठ	वह सत्यनिष्ट अधिवक्ता हैं।
पृष्ट	पृष्ठ	मेरा समाचार पृष्ट पाँच पर छपा है।
लब्धप्रतिष्ट	लब्धप्रतिष्ठ	वह नगर के लब्ध प्रतिष्ट व्यक्ति हैं।
ओष्ट	ओष्ठ	ओ में ओष्ट गोलाकार होते हैं।
प्रकोष्ट	प्रकोष्ठ	यह विज्ञापन प्रकोष्ट है।
गरिष्ट	गरिष्ठ	गरिष्ट भोजन पचता ही नहीं।
ज्येष्ट	ज्येष्ठ	राम माता–पिता की ज्येष्ट संतान है।
चेष्ठा	चेष्टा	उसकी चेष्ठा ठीक नहीं है।
दृष्ठि	दृष्टि	हमें दूर दृष्ठि रखनी चाहिए।

कहीं पर 'ट' के स्थान पर 'ठ' तथा वही 'ट' के स्थान पर 'ठ' के प्रयोग से भी समस्या उत्पन्न हो सकती है:

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
खट्ठा	खट्टा	उनके साथ का अनुभव खट्ठा रहा।
गट्टा	गट्ठा	वह लकड़ी का गट्टा उठाकर चल दिया।
पट्टा	पट्ठा	श्याम बिलकुल पट्टा लग रहा था।
पट्ठा	पट्टा	कुत्ते के गले का पट्ठा खुल गया।
लट्टा	लट्ठा	वह लट्टा उठाकर चल दिया।
हट्ठा–कट्ठा	हट्टा–कट्टा	राम हट्ठा–कट्ठा युवक है।
भुट्ठा	भुट्टा	बंदर भुट्ठा उठाकर पेड़ पर चढ़ गया।
ठट्टा	ठट्ठा	उसे ठट्टा करने का बहुत शौक है।
बट्ठा	बट्टा	बट्ठा काटकर उसने शेष राशि लौटा दी।
रट्ठा	रट्टा	वह रट्ठा लगाकर ही उत्तीर्ण हुआ।
सट्ठा	सट्टा	सट्ठा खेलना उनका पुश्तैनी शौक है।
मट्टा	मट्ठा	शुद्ध मट्टा पीकर वह गदगद हो गया।
इकट्टा	इकट्ठा	धन इकट्टा करना भी जोखिमपूर्ण है।
कट्ठा	कट्टा	वह भैंस का कट्ठा स्वस्थ है।
मुट्टी	मुट्ठी	मुट्टी भर दाने खाकर श्याम सो गया।
चिट्टी	चिट्ठी	वह चिट्टी लिखना ही भूल गया।
मिट्ठी	मिट्टी	रामगढ़ की मिट्ठी उपजाऊ है।

किन्हीं शब्दों में स्थानीय प्रांतीय बोली–भाषाओं के प्रभाव के कारण 'न' के स्थान पर 'ण' तथा 'ण' के स्थान पर 'न' का प्रयोग हो जाने से वर्तनी दोष की समस्या उत्पन्न हो जाती है, यथा–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
दाणा	दाना	सीता चिड़ियों को दाणा खिला रही है।
पाणी	पानी	गंगा का पाणी सचमुच अमृत है।
दाणापाणी	दानापानी	उसका दाणापाणी उतना ही था।
शगुण	शगुन	उसने विवाह में शगुण दिया।
दर्पन	दर्पण	व्यवहार चरित्र का दर्पन है।
कृष्न	कृष्ण	वह कृष्न जैसा आकर्षक था।
स्रावन	श्रावण	स्रावन में धरती हरी हो गई।

रावन	रावण	रावन क्रूर शासक था।
कंकन	कंकण	कंकन पहनना उसे प्रिय है।
आभूषन	आभूषण	स्वर्ण आभूषन अत्यंत मँहगे हैं
आकर्षन	आकर्षण	गुण के समक्ष सब आकर्षन फीके हैं।
किरन	किरण	आशा की कोई किरन नजर नहीं आ रही
हिरण	हिरन	हिरण कुलाचे भर रहे थे।
शिरोमनि	शिरोमणि	वह साहित्य शिरोमनि हैं।
हीरामनि	हीरामणि	हीरामनि बहादुर सिपाही था।
वानी	वाणी	उसकी वानी में अमृत है।
कल्यानी	कल्याणी	धरती माँ कल्यानी हैं।
भाषन	भाषण	उसका भाषन विचारोत्तेजक था।
भूषन	भूषण	भूषन महान हिंदी कवि थे।
चूरण	चूरन	चूरन से पेट दर्द दूर हो गया।

'ड' के स्थान पर 'ढ़', 'ड़' के स्थान पर 'ढ़' 'ढ़ के स्थान पर 'ड' तथा 'ढ' के स्थान पर 'ड़' का प्रयोग हो जाने पर वर्तनी की समस्या उत्पन्न हो जाती है, यथा–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
हड्ठी	हड्डी	उसकी दुर्घटना में पैर की हड्ढी टूट गई।
गड्डा	गड्ढा	सड़क पर का गड्डा गहरा था।
बुड्डा	बुढ़ा	बुड्डा शरीर दौड़–दौड़ कर थक गया।
फिसड्ढी	फिसड्डी	वह बिलकुल फिसड्ढी है।
रोड़	रोड	यह रोड़ शहर को जाती है।
पीडा	पीड़ा	उसे दुखी देख बहुत पीड़ा हुई।
सीढी	सीढ़ी	वहाँ छत पर जाने की सीढी नहीं थी।
बीडा	बीड़ा	मंदिर निर्माण का बीडा उसी ने उठाया।
लुड़कन	लुढ़कन	लुड़कन से वह असमर्थ लग रहा था।
पड़ाई	पढ़ाई	श्याम पड़ाई में बहुत कमजोर है।
चढ़ाई	चड़ाई	दुश्मनों ने किले पर चढ़ाई कर दी।
चड़ाई	चढ़ाई	पहाड़ की सीधी चड़ाई कठिन है।
रोढ़ा	रोड़ा	उसके मार्ग का वही सबसे बड़ा रोढ़ा था।
कूढ़ा	कूड़ा	कूढ़ा यूँ ही फेंकना बुरी आदत है।

जूढ़ा	जूड़ा	यामकली का जूढ़ा देखते ही बनता था।
झाड़ू	झाड़ू	घर के लिए झाड़ू आवश्यक चीज है।
बड़ई	बढ़ई	बड़ई का कार्य उसे ठीक नहीं लगता।

'ब' के स्थान पर 'व' तथा 'व' के स्थान पर 'ब' के प्रयोग से वर्तनी की अर्थवत्ता में दोष उत्पन्न हो जाते हैं, यथा–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
बिद्यार्थी	विद्यार्थी	बिद्यार्थी को स्वाध्यायी होना चाहिए।
ब्यापार	व्यापार	उनका ब्यापार अच्छा चला।
बाल्मीकि	वाल्मीकि	बाल्मीकि बहुत प्रभावी कवि थे।
बिद्वान	विद्वान	बिद्वान होना तप पर निर्भर करता है।
बधू	वधू	वह नगर बधू थी।
ब्यावसायिक	व्यावसायिक	ब्यावसायिक दृष्टि से यह ठीक नहीं है।
बिकराल	विकराल	हिडिंबा का रूप बिकराल था।
बिजयी	विजयी	बिजयी होना पराक्रम का परिचय है।
बिभीषण	विभीषण	वह साक्षात बिभीषण ही था।
ब्यक्ति	व्यक्ति	वह ब्यक्ति चोर है।
बिकल्प	विकल्प	इसका कोई अब बिकल्प ही नहीं है।
बिश्वास	विश्वास	हमें अपने देवों पर बिश्वास करना चाहिए।
बियोग	वियोग	सीता का बियोग राम को भारी पड़ा।
ब्याकरण	व्याकरण	ब्याकरण का ज्ञान भाषा हेतु आवश्यक है।
बन	वन	बन संरक्षण आज की प्रमुख जरूरत है।
वरात	बारात	ऐसी वरात बार–बार नहीं आती।
वादाम	बादाम	वादाम शक्तिवर्धक मेवा है।
बसंत	वसंत	बसंत ऋतु सबको अच्छी लगती है।
वर्बाद	बर्बाद	इसे वर्बाद होने से बचाना चाहिए।
वरदाश्त	बरदाश्त	यह मेरी वरदाश्त से बाहर है।
वीमार	बीमार	प्रायः वह बीमार ही रहता है।
व्राह्मण	ब्राह्मण	व्राहमण और कर्म परस्पर पूरक हैं।
वकायदा	बकायदा	वह वकायदा वायुयान से घर आया।
वढ़ोतरी	बढ़ोतरी	वेतन बढ़ोतरी से वह झूम उठा।
वजाय	बजाय	यहाँ (10) के वजाय 20 बच्चे बैठे हैं।

इसी प्रकार 'श' 'ष' तथा 'स' के स्थान पर 'स', 'ष' तथा 'श' का प्रयोग होने पर वर्तनी संबंधी अशुद्धियाँ हो जाने की समस्या रहती है, यथा–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
ससि	शशि	ससि चंद्रमा का पर्यायवाची है।
स्याम	श्याम	स्याम होने को आई।
स्यामपट्ट	श्यामपट्ट	स्यामपट्ट पर लिखने का अभ्यास नहीं रहा।
सेखर	शेखर	सेखर सुमन अच्छे कलाकार हैं।
स्यामल	श्यामल	वह स्यामल देहधारी हैं।
प्रशाद	प्रसाद	यह सब ईश्वर का ही प्रशाद है।
सीसा	शीशा	सीसा शरीर की वास्तविकता दिखाता है।
तपश्या	तपस्या	राक्षस तपश्या में विघ्न डालते थे।
कश्ट	कष्ट	उसकी हीन दशा देख कश्ट हुआ।
रूश्ट	रूष्ट	पिता के व्यवहार से पत्नी रूश्ट है।
नश्ट	नष्ट	बाढ़ ने सब कुछ नश्ट कर दिया।
भ्रस्ट	भ्रष्ट	आज भ्रस्ट समाज बढ़ रहा है।
भाशा	भाषा	भाशा का ज्ञान हर एक के लिए आवश्यक है।
भाशण	भाषण	नेताजी के भाशण ने सभी को उबा दिया।
दुश्कर	दुष्कर	वह वास्तव में दुश्कर कार्य था।
पुश्कर	पुष्कर	उसका नाम पुश्कर है।
प्रकास	प्रकाश	प्रकास अंधकार को भगा देता है।
प्रशाशन	प्रशासन	प्रशाशन चलाना टेढ़ी खीर है।
दुःशाशन	दुःशासन	दुःशाशन बहुत क्रूर था।
अमावश्या	अमावस्या	माँ ने अमावश्या का व्रत रखा।
गोपेष्वर	गोपेश्वर	गोपेष्वर रमणीक स्थान है।
ईष्वर	ईश्वर	ईष्वर की कृपा बिना कुछ भी संभव नहीं।

कई शब्दों में अंत में हल–चिह्न (्) के प्रयोग से भी वर्तनी अशुद्ध हो जाती है, यथा–

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग
बृहदतम्	वृहदतम	यह उसकी बृहदतम् सीमा थी।
सुंदरतम्	सुंदरतम	इससे सुंदरतम् और क्या हो सकता था।
प्रातीनतम्	प्राचीनतम	यह प्राचीनतम् मंदिर है।

अष्टम्	अष्टम	अष्टम् अनुसूची में 22 भाषाएँ हैं।
नवम्	नवम	आज अनुष्ठान का नवम दिवस है।
श्रीयुत्	श्रीयुत	श्रीयुत् पंडितजी नहीं पधारे।
प्रयोगगत्	प्रयोगगत	प्रयोगगत् गलतियों की सूची लंबी है।
भाषागत्	भाषागत	भाषागत् सौंदर्य कविता का परिधान है।
शत्शत्	शतशत	शहीदों को शत्शत् नमन।
शतकम्	शतकम	उन्हें इंदिरा शतकम् खूब भाया।

बहुत बार 'क्ष' के स्थान पर 'छ' के प्रयोग होने तथा 'छ' के स्थान पर 'क्ष' के प्रयोग से भी वर्तनी की समस्या सामने आती है, यथा–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
परीछा	परीक्षा	सीता परीछा की तैयारी में जुटी है।
शिच्छा	शिक्षा	शिच्छा जीवन बदल देती है।
रच्छा	रक्षा	देश की रच्छा करना हमारा कर्तव्य है।
कच्छा	कक्षा	कच्छा में मात्र दस ही छात्र थे।
छेत्र	क्षेत्र	यह कार्य उसके छेत्र से बाहर है।
क्षात्र	छात्र	क्षात्र जीवन का अपना अलग आनंद है।
अपेच्छित	अपेक्षित	उसे अपेच्छित सूचना मिल गई है।
उपेच्छित	उपेक्षित	सीता उपेच्छित जीवन जीने को विवश थी।
अंत्याछरी	अंत्याक्षरी	अंत्याछरी में उन्होंने ही बाजी मारी।
इक्षुक	इच्छुक	फौजी (सैनिक) देश के लिए लड़ने को इक्षुक है।

दो महाप्राण ध्वनियों के एक साथ आने पर दूसरी ध्वनि का महाप्राणत्व निर्बल अथवा कमजोर होने पर उसका उच्चारण सदृश कानों को सुनाई देता है, गलत सुनाई देने के कारण वर्तनी में भी गलत लिखा जाता है, अतः समस्या उत्पन्न हो जाती है, यथा–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
ठेटपन	ठेठपन	उनकी भाषा में ठेटपन का ठाठ है।
ठाट	ठाठ	वह ठाट से जीवन जी रहा है।
कनिष्ट	कनिष्ठ	कनिष्ट लिपिक के पद पर रोहन की नियुक्ति दुई है।
बलिष्ट	बलिष्ठ	बाली बहुत बलिष्ट था।
वरिष्ट	वरिष्ठ	अपनी समस्या उसने वरिष्ट अधिकारी को बताई
विशिष्ठ	विशिष्ट	पंडित शास्त्री विशिष्ठ व्यक्ति थे।

यधेष्ठ	यथेष्ट	जीवन काल में उन्हें यधेष्ठ सम्मान नहीं मिला।
अभीष्ठ	अभीष्ट	उनका यही अभीष्ठ था।
श्रेष्ट	श्रेष्ठ	श्रेष्ट कृतित्व ही शेष रहता है।
चेष्ठा	चेष्टा	बड़े बनने की वह नित्य चेष्ठा करता था।
गुढ़िया	गुड़िया	गुढ़िया रमा को खूब प्रिय लगती थी।
बुड़िया	बुढ़िया	दादी अब बुड़िया गई है।
पुढ़िया	पुड़िया	वह तो बस क्रोध की पुढ़िया है।
इष्ठदेव	इष्टदेव	वह नित्य अपने इष्ठदेव का स्मरण करता है।
सीक	सीख	हमें महापुरूषों के जीवन से सीक लेनी चाहिए।
भीक	भीख	भीक माँगना बुरा कार्य है।
पेटा	पेठा	वह आगरा से खूब पेटा लाई।

कभी–कभी शब्दों में 'ज्ञ' के स्थान पर 'ग्य' लिखे जाने से भी वर्तनी की समस्या मुख्य बाधा की तरह उपस्थित हो जाती है यथा–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
ग्यानी	ज्ञानी	उसके पिता बहुत ग्यानी व्यक्ति थे।
अग्यानी	अज्ञानी	अशिक्षित होना अग्यानी होने जैसा है।
विग्यानी	विज्ञानी	राम के पिता प्रख्यात विग्यानी थे।
वैग्यानिक	वैज्ञानिक	सी वी रमन विश्वविख्यात वैग्यानिक थे।
संग्यान	संज्ञान	यह मामला उनके संग्यान में काफी देर से आया।
ज्ञारह	ग्यारह	अनुष्ठान में ज्ञारह पंडित आमंत्रित थे।
विग्यापन	विज्ञापन	पदों का विग्यापन प्रकाशित हो गया है।
ग्यापन	ज्ञापन	ग्यापन मिलते ही वह बौखला गया।
ग्यानेंद्रियाँ	ज्ञानेंन्द्रियाँ	ग्यानेंद्रियाँ ही ज्ञान की आधारशिला हैं।
ग्यानकोश	ज्ञानकोश	वह स्वयं में ग्यानकोश की तरह हैं।
व्यंज्ञकार	व्यंग्यकार	परसाई जी चर्चित व्यंगकार थे।

'र' ध्वनि (रेफ़) के गलत प्रयोग से भी वर्तनी दोष की समस्या उत्पन्न होती है, यथा–

अशुद्ध	**शुद्ध**	**अशुद्ध शब्दों का वाक्यों में प्रयोग**
दरशन	दर्शन	आपके दरशन कर मैं धन्य हुआ।
करतव्य	कर्तव्य	सेवा करना प्रत्येक का करतव्य है।

परकाश	प्रकाश	परकाश अंधकार को भगा देता है।
अनुगृह	अनुग्रह	वह बार–बार दिल्ली जाने का अनुगृह करते हैं।
राश्ट्रीय	राष्ट्रीय	यह राष्ट्ररीय संस्थान है।
परिशरम	परिश्रम	परिशरम ही सफलता की कुँजी है।
कार्यकर्म	कार्यक्रम	वह कार्यकर्म बहुत सुंदर था।
पुण्यक्रम	पुण्यकर्म	सफलता पुण्यक्रम का ही फल है।
पाठ्यकर्म	पाठ्यक्रम	पाठ्यकर्म छात्रोपयोगी नहीं था।
सरवस्व	सर्वस्व	इन्होंने सरवस्व अर्पित कर दिया।
पेटरोल	पेट्रोल	पेटरोल महँगा हो गया।

अतः कहा जा सकता है कि किसी भाषा में उसकी मानक शब्दावली के साथ–साथ उपयुक्त वाक्य–विन्यास व वाक्य–संरचना की दृष्टि से भी मानकता का होना अतीव आवश्यक है। वर्तनी, न केवल वाक्य–संरचना की, बल्कि भाषा के सौंदर्य का प्राण व आधारशिला है। वर्तनी की शुद्धता की भूमिका वाक्य में उसी टक्कर (परास) की है जिस तरह दैहिक क्रियाओं के संचरण में रक्त के शुद्धीकरण की। कभी–कभी जानकर अथवा अनजाने में प्रयुक्त आंशिक मात्राओं, अनुनासिक अथवा नासिक्य आदि के प्रयोग के कारण न केवल वाक्य का प्रवाह खंडित होता है अपितु वैयाकरणिक दृष्टि से संप्रेषणीयता के साथ–साथ उसमें अर्थवत्ता के परिवर्तन की भी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती है अथवा बढ़ सकती हैं।

यदि वर्तनी की समस्याओं को ध्यान में रख प्रारंभ से ही उसके अनुप्रयोग, शुद्धिकरण एवं मानकीकरण पर ध्यान दिया जाए तो इन छोटी–छोटी समस्याओं के तात्कालिक निदान से भविष्य में भाषा का लालित्य व लावण्य भी पाठकों को अधिकाधिक संख्या में अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम हो सकता है। वर्तनी की मानकता व एकरूपता की दृष्टि से केंद्रीय हिंदी निदेशालय विगत सदी के साठोत्तरी काल से ही सतत सक्रिय है,, यह श्लाघनीय है। दैनंदिन वर्तनी के क्षेत्र में आने वाली समस्याओं से मुक्ति मिले तो प्राथमिक विद्यालयों से विश्वविद्यालयीय शिक्षण तक में एकरूपता का स्वर रहेगा.....,अन्यथा वर्तनी की बहुविकल्पता उच्चतर शिक्षा व शोध में भी विद्यार्थियों अथवा शोधार्थियों–पाठकों को इसकी पठनीयता अथवा अंगीकरण से वंचित करने या मोहभंग का भी कारक बनाने में सहायक सिद्ध हो सकती है। इस पर प्रत्येक भाषा के सुधी लेखक, विचारक, पाठक, शिक्षक अथवा शोधार्थी द्वारा अत्यंत समर्पण एवं व्यावहारिक दृष्टि से विचार, चिंतन एवं अनुपालन करना अनिवार्यतः अपेक्षित होगा।

संदर्भः–
1. मानक हिंदी का स्वरूपः भोलानाथ तिवारी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–68
2. वृहद हिंदी कोशः ज्ञान मंडल, वाराणसी, वर्तनीप पृष्ठ–2
3. अच्छी हिंदीः सुंदरहिंदीः श्री शरण, दिनमान प्रकाशन, पृष्ठ–297
4. हिंदी की मानक वर्तनीः कैलाश चंद्र भाटिया, रचना भाटिया, पृष्ठ–23

संपर्क

'अभिव्यक्ति' 23, गढ़ विहार, फेज–1 मोहकमपुर, देहरादून, उत्तराखंड–248005
फोन– 9411173339, ई मेल–chamoladc@yahoo.com

❑❑❑

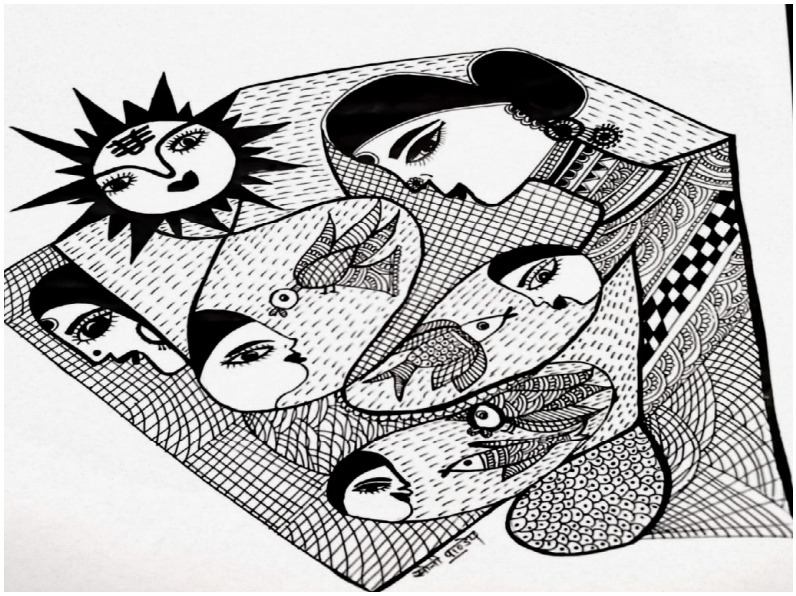

बुंदेली भाषा में अर्थात बुंदेलखंड के लोकजीवन में समयबोध

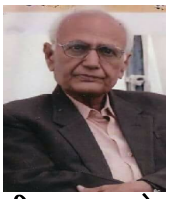

के.बी.एल.पाण्डेय

ऐसा क्यों होता है (गीत संग्रह), आँखों भर अनंत (कविता–संग्रह) और 'उत्तर छायावादी काव्य और नरोत्तमदास पांडेय' मधु' तथा 'आलोचनाः एक और पाठ'(आलोचनात्मक) प्रकाशित। संप्रति–मध्यप्रदेश के उच्च शिक्षा विभाग में प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त। संप्रति–स्वतंत्र लेखन।

मनुष्य ने काल के निरवधि विस्तार को अपने बोध की दृष्टि से खंडों में विभाजित कर लिया। आदिम मनुष्य ने भी प्रभात, दोपहर, शाम, रात जैसी परिवर्तित समय स्थितियाँ देखी होंगी और आरंभ से उसे भले ही अपने सीमित और अनिश्चित कार्य व्यापारों को इनकी सापेक्षता में समझने और कहने की आवश्यकता प्रतीत न हुई हो परंतु धीरे–धीरे समय का आयाम उसके जीवन के साथ जुड़ता गया। तब उसे समय के बदलते हुए रूपों और लघु खंडों को अपनी अभिव्यक्ति की क्षमता और साधन के अनुसार शब्द देने पड़े होंगे। तब दिन और रात के बीच की कई स्थितियों का नामकरण हुआ। क्षण, प्रहर, दिन, मास वर्ष के रूप में अधिक निश्चित समयबोध से मनुष्य संपन्न हुआ।

वैज्ञानिक दृष्टि से विकसित आज के विश्व में समय के अत्यंत लघु इकाई को जानने के उपकरणों का आविष्कार हो गया किंतु लोकजीवन में समयबोध इतना निर्दिष्ट नहीं रहता। उसके कार्य व्यापारों को समय की निश्चितता की आवश्यकता भी नहीं होती। वहाँ मिनटों या घंटों तक से भी कोई अंतर नहीं पड़ता है। घंटों के समय में यांत्रिक तटस्थता और निस्संगता वह केवल स्मृति का तथ्य है जबकि लोक जीवन का समयबोध घटना, व्यापार या परिवेश से जुड़ा है।

लोक–जीवन में समय का निर्धारण अपने परिवेश की अनेक वस्तुओं तथा प्रायः एक ही समय पुनः पुनः आवर्तित प्रकृति और मनुष्य के कार्य व्यापारों के आधार पर किया गया है। यह सच है कि आज ग्रामीण अंचल के व्यक्तियों के जीवन में भी आधुनिकता का प्रवेश हो रहा है। फिर भी परंपरा से वह अपने समयबोध से ही जुड़े

हैं। बुंदेलखंड के लोकजीवन में भी समयबोध का पारंपरिक रूप अब भी प्रचलित है।

प्रातःकाल

सूर्योदय के पूर्व से लेकर सूर्योदय के बाद के प्रातः काल का प्रत्यय केवल सुबह या प्रातः काल शब्दों से नहीं हो पाता। बुंदेली में इस बीच के समय के लिए अनेक शब्द हैं।

भोर, भुंसरा, भुंसारौः— प्रातःकाल के लिए प्रयुक्त होने वाले ऐसे सामान्य शब्द हैं जिनसे सूर्योदय के आसपास के समय का बोध होता है।

भुंसरया तरा, तला उगेः भोर का तारा उगने पर :— नक्षत्रों की स्थिति और उनकी दृश्यता का आधार भी समयबोध में सहायक हुआ है। लगभग चार बजे आकाश में भोर का तारा उदित होता है।

'ऊ बेरा भुसरया तरा निकरोई हतो':— उस समय भोर का तारा निकला ही था।

'तरा ऊगे निगे ते।':— तारा उगने पर चले थे।

अंदयाई, इंदयाईः— यह सुबह का वह वक्त है जब अंधेरा पूरी तरह लुप्त नहीं होता और रात भी नहीं रह जाती।

'भौत अंदयाई निगे हुइयौ':— बहुत सुबह चले होगे।

अंदयाई, इंदयाई शब्द आगामी सुबह कल के भी वाचक हैं पर इस अर्थ में वक्ता द्वारा इनका प्रयोग पूर्व संध्या पूर्व रात्रि के समय ही किया जाता है।

'अंदयाई आइयो, अब तो वे पर रये।':— सुबह कल आना अब तो वे लेट गए हैं।

अंदयाई—इंदयाई का प्रयोग सुबह के सामान्य रूप से भी होता है।

अंदयाई से सखियाँ पूछे, कहाँ कहाँ सुख बारो ईसुरीः— सुबह सखियाँ पूछती हैं पर रात का सुखाचार क्या बताऊँ।

चकिया की बेराः— अब तो गाँव में भी घरों में चक्कियाँ नहीं चलती, पर पहले घर—घर अनाज पीसा जाता था और महिलाओं की दिनचर्या की दृष्टि से इस कार्य का एक निर्धारित समय हो गया। बड़े सवेरे उठकर महिलाएँ चक्की चलाती हैं। इस कार्य में लगने वाले समय और श्रम की दृष्टि से सबेरे का समय ही उपयुक्त है क्योंकि दिनभर तो महिलाएँ अन्य कार्यों में व्यस्त रहती हैं सुबह लगभग 5—6 बजे का समय चकिया की बेरा है।

भुकाभुकौ, झुकामुकौः— प्रकाशबिंब का निर्माण करता भुकाभुकौ शब्द सूर्योदय के पूर्व के उस समय का बोध कराता है जब अंधेरा बिलकुल नहीं रह जाता है बल्कि उषाकाल के आभास से स्पष्ट दृश्यता आ जाती है। 'झुकामुकौ' लगभग वही समय अथावा इससे कुछ पहले का समय है।

'हेरों एन भुकाभुकौ हो गओ गैल चलन लगी।':— देखो काफी सवेरा हो गया रास्ता चलने लगा।

कुकरा बोले–मुर्गे के बोलने का समय।

यद्यपि मुर्गे अपनी जैविक आवश्यकताओं के कारण दिन में भी बोलते रहते हैं फिर भी सुबह उसका बोलना एक निश्चित और आवृत्तिमूलक क्रिया है। अतः उनका बोलना सुबह के अर्थ में रूढ़ हो गया। बुंदेली में कुकरा बोले से सूर्योदय के पूर्व के समय का बोध होता है।

'कुकरा बोल रओ तैं अबै तक सुता रऔ।':– मुर्गा बोल रहा है और तू अभी तक सो रहा है।

कतकारियन की बेरा–कार्तिक स्नान को जाने वाली स्त्रियों का समय

समयबोध की यह प्रयुक्ति लोकजीवन के सांस्कृतिक पक्ष से जुड़ी है। बुंदेलखंड में स्त्रियों में कार्तिक स्नान के पर्व का बहुत महत्व है। गोपी भाव से कृष्ण की इस प्रेमोपासना में स्त्रियाँ कार्तिक के महीने भर बहुत सबेरे नदी या तालाब में स्नान और पूजा करने जाती हैं। आस–पास की स्त्रियों का एक समूह बन जाता है। जो स्त्री पहले जग जाती है वह अपने समूह की अन्य स्त्रियों को जगाती है।

यूँ तो उनके जाने का समय मिनट के हिसाब से रोज वही नहीं रहता परंतु उसमें घंटों का अंतर भी नहीं होता। यह समय सुबह से बहुत पहले का है जब तनिक भी उजाला नहीं होता। यह समय सुबह 4–5 बजे के बीच का होता है।

बुंदेली में कार्तिक स्नान करने वाली स्त्री को कतक्यारी कहते हैं। समयबोध की यह प्रत्युक्ति कार्तिक महीने में ही बोलचाल में रहती है।

'नोयतो उदरत्ता नो तुमार नहीं पटात और इताई कतक्यारी के बेरा उठ बैठत':– इधर तो आधी रात तक कामकाज पूरा नहीं हो पाता और इधर कतक्यारियों को समय पर उठ बैठना पड़ता है।

महुअन की बेरा–महुआ की बेला

यह समयबोध मुख्यतः ग्रामीण जीवन में प्रचलित है। फागुन चैत के महीनों में रात्रि के अंतिम पहर में महुआ टपकता है। महुआ टपकने का प्रकृति–व्यापार समय की दृष्टि से काफी नियत है। महुअन की बेरा महुआ टपकने की समयावधि ही नहीं है बल्कि सूर्योदय के पूर्व कुछ अंधेरे में ही उन्हें बीनने के लिए जाने के समय से भी संबंधित है।

बुंदेलखंड में आर्थिक रूप से अभावग्रस्त वर्ग में महुआ उदर पोषण का प्रमुख आधार रहा है। गरीब लोग सुबह महुआ बीनने जाते हैं और पूरे मौसम में उनका संचय करके सुखाकर रख लेते हैं। वर्षभर अनेक प्रकार से भोजन के रूप में उनका उपयोग करते हैं। यह लोग महुआ ना तो उसके मधुर स्वाद के लिए खाते हैं, ना उसकी मादकता के लिए, बल्कि निःशुल्क रूप से संग्रहित महुआ उनके लिए खाद्यान्न का विकल्प है। ईसुरी की एक फाग से प्रमाणित होता है कि महुआ गरीब लोगों का भोजन रहा है–

आंसो ले गओ काल करोंटा।

गोंउ पिसी खों गिरूआ लग गओ मउअन लग गओ लौंका।

वैसे हाल में टपका महुआ तो मधुरता और रस का भंडार होता ही है उससे बनने वाले अन्य व्यंजन डुसुबरी, मुरका, लटा भी स्वादिष्ट होते हैं। बुंदेलखंड में यह उक्ति प्रचलित है–

महुआ मेवा गेर कलेवा गुलचन बड़ी मिठाई
दिन उगे–दिन उदित होने पर
दिन चड़े–दिन चढ़ जाने का समय
छिरयारे छिरवाये दुपर–बकरियों के चरने जाने का समय

बुंदेली में बकरी को छिरिया कहते हैं। दूसरे पशु तो चरने के लिए जंगल सूर्योदय के आसपास ही ले जाए जाते हैं पर बकरियों का समूह सूर्योदय के काफी बाद जाता है। गड़रिये बड़ी संख्या में बकरियाँ रखते हैं। सुबह उन्हें दुहने में समय लगना स्वाभाविक है। अतः उन्हें जंगल ले जाने में विलंब हो ही जाता है। बकरियों को ठंड भी बहुत लगती है। इसलिए उन्हें धूप निकल आने पर निकाला जाता है।

सुबह लगभग 7–8 बजे का समय छिरयाने दुपर है। दुपर–दोपहर कहने के पीछे दिन का काफी भाग बीत जाने की व्यंजना है। हालाँकि सुबह 7–8 बजे दोपहर नहीं होती परंतु श्रमिक समाज का दिन तो सूरज निकलने के पूर्व भी आरंभ हो जाता है और 7–8 बजे का समय उनकी दिनचर्या में काफी समय निकल जाने का अर्थ रखता है।

कौरे दुपर–कोमल दोपहरः– छिरयाये दुरुपुर के कुछ बाद मध्याह्न के पूर्व के समय को कौरे दुपर कहा जाता है। जब तक मध्याह्न का ताप प्रखर नहीं होता है। अतः समय दोपहर का तो है पर अपेक्षाकृत कम तापयुक्त होने से कोमल दोपहर हो गया।

टीकाटीका, टीकमटीक, टीक दुपर, दुपरिया– ठीक सिर के ऊपर सूरज मध्याह्न– बुंदेली में 'टीक' माथे को कहते हैं। तिलक का अर्थवाची शब्द टीका इसी से संबंधित है। टीकाटीक दुपर या दुपरिया का संबंध गर्मी की ऋतु से है क्योंकि तभी मध्याह्न के समय सूर्य का ताप अत्यंत प्रखर होता है।

'जा तो टीकाटीक दुपरिया और तीन कोस की मजल–' यह तो सिर के ऊपर सूरज की धूप है और तीन कोस का मार्ग।

घामी लौटे, दुपर लौटे, दुपर मुरके, दुपर लटके–धूप लौटने पर, दोपहर–

इस प्रयुक्ति में भी धूप के ताप से संबंधित समयबोध है। अपराह्न में सूर्य का ताप कुछ कम हो जाता है। संध्या के पूर्व लगभग 3 बजे के ऐसे समय को घरमों लौटे, दुपर मुरके, दुपर लटकैं कहा जाता है। दुपर को दुफर भी कहा जाता है।

दुपर मुरके में मुरकै क्रिया का लाक्षणिक प्रयोग हुआ है। मुरकबो मुड़ना गत्यर्थक क्रिया का अचेतन करता दुपर के साथ प्रयोग बुंदेली की अभिव्यक्ति क्षमता का उदाहरण है। बुंदेली में दुपह स्त्रीलिंग शब्द है पर उसका बहुवचन में अधिक प्रयोग होता है। तब वह पुल्लिंग हो जाता है।' अबै दुपर न मुरके' ऐसा ही प्रयोग है। स्त्रीलिंग में दुपरिया शब्द भी है।

'जो लड़का घरै तनकउ नई रूपत। पूरी दुपरिया मूड़ पे काड़त':– यह लड़का घर में तनिक भी नहीं ठहरता पूरी दुपहरी सिर पर निकालता है।

'वे दिन कटत बैन बज्जुर के
अबे दुपर न मुरके ईसुरी
दिन छित–दिन रहते
'दिन–छित आ जइयो।' दिन रहते आ जाना।

दिन डूबै, डिंडूबै, दिन बूड़ैः– दिन डूबने पर यह सूर्यास्त के समय का वाचक है।

भाषा विज्ञान के समीकरण के नियम द्वारा 'दिन डूबे' को 'डिंडूबै' कहा जाता है।

वर्ण विपर्यय से 'डूबै' 'बूड़ै' होकर 'दिन बूड़ै' बन जाता है। इसी नियम से बुंदेली में डुबकी को बुड़की कहा जाता है। ईसरी ने 'डूबै' और 'बूड़ै' दोनों का प्रयोग किया है–

मोरी कई मान गैलारे
दिन बूड़ै जिन जारे इसरी
दिन बूड़ै से करत बिछौना
फिर ना जगत जगाए ईश्वरी
संजा, अन्थआः– संध्या, अस्त

सूर्यास्त का समय संजा है। अन्थऔ भी अस्त से संबंधित है।

दोई–बेराः दो बेलाओं का समय।

इस प्रयुक्ति में विधेयात्मक रूप से समय बताने का भाव नहीं है बल्कि प्रतिबंधात्मक भाव है। लोक विश्वास के अनुसार संध्या के समय कुछ कार्य अशुभ माने जाते हैं। एक तो घर की देहरी पर बैठना वैसे भी अशुभ माना जाता है। संध्या के समय बैठना तो और भी निषिद्ध है। संभवतः हिरण्यकश्यप के संध्या समय देहरी पर मारे जाने के कारण यह लोक निषेध बना होगा।

'दोई बेरा देरी पै नई बैठियत':– संध्या के समय देहरी पर नहीं बैठना चाहिए। 'जा बिलैया आग लगी दोई बेरई रोउत':– यह बिल्ली आग लगी संध्या के समय ही रोती है।

ढोरन की बेरा/ढुरयाई बेराः– पशुओं के लौटने का समय।

चरवाहा सूर्यास्त के समय पशुओं को जंगल से 'लौटा कर' लाता है। इस समय को 'ढोरन की बेरा' कहा जाता है। 'गोधूलि बेला' इसका तत्सम रूप है पर गोधूलि में गायों के लौटते समय उड़ने वाली धूल पर विशेष ध्यान है जबकि 'ढोरन की बेरा' में पशुओं के लौटने के समय पर ही ध्यान है उसके अलंकृत या काव्यात्मक रूप पर नहीं। गाँव में धूल का परिवेश तो रहता ही है। वहाँ के लोगों के लिए गायों या पशुओं के लौटने से उड़ी हुई धूल न तो कोई अनोखा दृश्य है, ना काव्यात्मक आस्वाद की वस्तु। गोधूलि बेला में किसी बाहरी प्रेक्षक की दृष्टि हैं, 'ढोरन की बेरा' में उसी परिवेश के भोक्ता की।

'ढुरयाई बेरा हो रई मोड़ा खों देखैं रइयोः— पशुओं के लौटने का समय हो रहा है, लड़के को देखते रहना।

गोसेली की बेरा : गोसली का समय

पशु जब जंगल से चरकर लौटते हैं तो उन्हें 'सार' या 'बेड़ा' में बाँध दिया जाता है। फिर उन्हें दुहा जाता है और चारा पानी दिया जाता है। इस समय तक सूर्यास्त हो जाता है और कुछ—कुछ अंधेरा छाने लगता है।

अंथउ की बेराः— पारंपरिक जैन समुदाय सूर्यास्त के पूर्व भोजन कर लेता है। इसे अंथउ करना कहते हैं। अंथउ अस्त से जुड़ा शब्द है। सूर्यास्त के पूर्व प्रसाद प्रकाशयुक्त समय को 'अंथउ की बेरा' कहा जाता है। समयबोध की यह प्रयुक्ति जैन समुदाय के संदर्भ में ही प्रचलित है।

लौलइया— संध्या के समय या गोधूलि को लौलइया कहा जाता है।

झूली परे— संध्या के समय जब कुछ हल्का अँधेरा होने लगता है लेकिन कुछ दिखाई भी देता रहता है उसे, झूली परे कहा जाता है।

दिया बाती की बेरा, दिया मिलकं—दीपक जलने पर

आज तो गाँव में भी बिजली पहुँच गई है। पहले सभी घरों में दीपक एक नियत समय पर भले ही न जलाए जाते हों पर अंधेरा होते ही दीपक जला दिए जाते थे, संध्या के बाद अँधेरा छा जाने तक और दिया जलने का समय 'दिया मिलकै' या 'दिया बाती की बेरा' कहा जाता है।

ब्याई की बेराः— रात के भोजन का समय

हालाँकि पूरे समाज का अपने अपने घरों में भोजन करने का एक सामूहिक समय नहीं होता फिर भी लोकजीवन में कार्य व्यापारियों का क्रय सामान्य रूप से इस प्रकार निर्धारित है कि अलग—अलग की जाने वाली क्रियाएँ भी समाज में एक समय या उसके आसपास ही संपन्न होती हैं। इसीलिए दिनभर के काम से निपटकर रात में भोजन का भी प्रायः निश्चित समय है। लगभग 8 बजे का समय 'ब्याई' की बेरा' है।

खटोलना—

सप्तर्षि मंडल के सात नक्षत्रों की आयताकृति के आधार पर उसे घटोला कहा

जाता है। रात में आकाश में उसकी अलग–अलग तिथियों के अनुसार ही विभिन्न समूहों का बोध किया जाता है

हिन्नी–

जाड़ों में विशेष रूप से दिखाई देने वाले तारों के एक समूह से हिरनी की आकृति का आभास होता है इसलिए उन्हें हिन्नी कहा जाता है। रात के दूसरे पहर में यह तारे काफी ऊपर आ जाते हैं–

'देखो हिन्नी सामें आ गई'

देखो हिरनी तारे सामने आ गए हैं।

सोते परैः सो जाने का समय।

वैसे तो सभी घरों के लोग एक ही समय नहीं सोते परंतु रात में एक समय ऐसा अवश्य होता है, जब अपवाद छोड़कर सभी लोग सो जाते हैं। वह समय जाड़े और गर्मी के मौसम में अलग–अलग होता है। लोकजीवन में इसी अंतर के साथ रात के इस समय का बोध कर लिया जाता है। 'सोता पर गए' में समय बोध के अतिरिक्त नीरवता की भी अभिव्यंजना है।

'काल बन्ज से लौटतन भौत देर हो ती। सोता पर गएते।'

कल व्यापार से लौटने में बहुत देर हो गई थी, सभी लोग सो गए थे।

पसर की बेराः– रात में पशुओं को चराने ले जाने का समय

अर्धरात्रि के बाद लोग अपने पशुओं को विशेष रूप से बैलों और भैंसों को चराने ले जाते हैं, इसे पसर चराना कहते हैं। वर्षा होने पर जब जंगल में घास विपुलता से उग आती है और जानवरों के आहार के लिए पर्याप्त सामग्री हो जाती है तब पसर चराई जाती है।

'पावने आए तब पसर की बेरा हो रहीती।'

सुबह कोई देर तक या दिन में असमय सो रहा हो तो कहा जाता है–

'रातभर पसर चराउत रये का'

रातभर पसर चराते रहे हो क्या?

दिन, माह और वर्ष

हिंदी में कल की ही तरह बुंदेली में काल और कल्ल विगत आगामी 2 दिनों के लिए प्रयुक्त होते हैं पर भियाने शब्द आगामी कल के लिए ही आता है। विहान से व्युत्पन्न भियाने सुबह के अर्थ के आगे बढ़कर अगले दिन का विस्तार पर गया। हालाँकि 'भियाने अइयो' का अर्थ कल आना तो है ही पर उसमें कल सुबह का आभास रहता है। 'भ्याने' सुबह के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है–

'धरती रोज दिया मनमाने

हओ संजा, हओ भ्यार्ने डुसुरी

इसी प्रकार सकायं शब्द में भी आगामी सुबह के अर्थ के साथ ही आगामी कल का भी अर्थ निहित है।

परौं–नरौंः–

हिंदी में परसों की तरह बुंदेली में परों भूत और भविष्य दोनों कालों में आता है। संस्कृत में भी आगामी कल श्वः के बाद के दिन के लिए परश्वः शब्द है किंतु विगत कल ह्य के पूर्व के दिन के लिए अलग शब्द न होकर परश्वः ही है। बुंदेली में परौं के सादृश्य में नरौं/विगत परसों के पूर्व आगामी परसों के बाद का दिन/शब्द का भी प्रयोग होता है। आज के लिए बुंदेली में आज ही शब्द है। एक दिन के अंतराल को बुंदेली में आन्तरे या आंते रोजे आंतय रोजे तथा अन्तरयांव कहते हैं।

'अजा' अंतर अथवा अंतराल है। दूधवाले का महीने भर का हिसाब करते समय कहा जाता है–

'ई महीना में चार अजा है।' इस महीने में चार अंतराल हैं।

'औखद रोजीना खाने, अजा ना परवे।' औषधि रोजाना खाना है अंतराल न पड़े।

दिनों को विशिष्ट बनाने के लिए बुंदेली में (जिस दिन), किदना (किस दिन), उदनां (उस दिन), इदनां (इस दिन) शब्द हैं। इन्हें अलग–अलग करके कहने से विशेषीकरण कुछ बलयुक्त हो जाता है। जी दिनां, की दिनां, उ दिनां में जी, की उ, और ई में ऐसा ही बल है।

लोकजीवन में महीनों तथा तिथियों के भारतीय नाम ही प्रचलित हैं। अंग्रेजी महीनों का ज्ञान भी वह भारती महीनों के संदर्भ से ही ग्रहण करता है। चैत और कार्तिक कृषक समाज के बोध से फसल कटने तथा उसे बेचने से होने वाली आय के कारण विशिष्ट है। साहूकार का ऋण चुकाने के लिए किसान चैत या कार्तिक का समय निश्चित करता है।

'जो कछु रै गए, वे कतमी में मुजरा कर देओं।' जो कुछ रह गए हों वे कार्तिक की फसल पर चुका दूँगा।

'जो चैत तनक नौनौ हो जाय साई दालुद्दुर दूज हो जाए।' इस चैत की फसल थोड़ी अच्छी हो जाए तो दारिद्रय दूर हो जाए।

इसी प्रकार परमा, दोज, तीज, चैथ, पाँच आदि तिथियाँ उसकी धारणा में रहती हैं तारीखें नहीं। एक ही दिन में दो तिथियाँ पड़ जाने से उसका कैलेंडर अव्यवस्थित नहीं होता। कुछ तिथियाँ तो व्रत और पर्व– दिवसों के रूप में विशेष रूप से स्मरणीय रहती है। ग्यास/एकादशी/और परदोस/प्रदोष/ को बहुत से लोग व्रत रखते हैं और ऐसा भी नहीं है कि इन तिथियों का ध्यान उन्हें खा लेने के बाद आकस्मिक रूप से आता है। बुड़की संक्रांति, फाग, कजरियाँ, नौ देवी, दसरऔ, दिवारी, देवोत्थान आदि पर्व उनके समयबोध को आधार प्रदान करते हैं।

'दसरय से आज आ दिखाने। देखो कै बीस दिनों तो उसरय से दिवारी के हो गये और आज आठैं है। सो समजै कै पूरा मईना होन चाउत।'

दशहरे से आज दिखाई दिए देखो कि बीस दिन तो दशहरे से दिवाली के हो गए और आज अष्टमी है इस तरह समझो कि पूरा एक महीना ही होना चाहता है।

पितृपक्ष के पंद्रह दिनों में शुभ कार्य वर्जित होते हैं। इसलिए उन्हें करये दिन/कड़वे कार्य दिन/ कहा जाता है।

'अब काल से करय दिन लग रये। सो ई पन्दरइया तो कछू होत नइयां।'

अब कल से कड़वे दिन लग रहे हैं। इसलिए इन पंद्रह दिनों में कुछ होता नहीं है।

शुक्ल पक्ष के लिए सुदी और उजियारो पाख तथा कृष्णपक्ष के लिए बदी और अंदयारो पाख शब्द प्रचलित हैं।

बुंदेली में इस वर्ष को आंसों कहते हैं तथा विगत और आगामी साल को पर साल, पर की साल, पर कहते हैं।

'आसों ले गओ साल करोंटा'/ईसुरी/

इसे अगर हिंदी में कहें तो 'इस वर्ष साल या वर्ष करवट ले गया/गई कहा जाएगा। इसमें वर्ष या साल की आवृत्ति दोषपूर्ण रखती है पर बुंदेली में आंसों शब्द इस वर्ष का वाचक होता है, किंतु उसके साथ पुनः साल का प्रयोग शाब्दिक भिन्नता के कारण पुनरावृत्तिपरक नहीं लगता। इसलिए आसों का साल भी कहा जाता है। केवल आंसों का अर्थ है इस साल, और आंसों की साल का अर्थ भी यह साल या इस बार का साल होता है।

'आसों होंस सबई के भूले।'

'आसों साल भाव फागुन में होउन कात बलोने।'

'पर न हते कनू छाती में आसों तनक दिखाने।'/ईसुरी।

पिछले साल के पूर्व तथा आगामी सालों के बाद के वर्ष को त्योंरस या त्योंस कहा जाता है। इसी सादृश्य से कम प्रचलित शब्द चैरस और पचोरस भी हैं।

कोई वर्ष किसी विशेष घटना के कारण स्मरणीय हो जाता है। बुंदेलखंड के एक भाग में सन 1917 में प्लेग रोग इतने संक्रामक रूप में फैला था कि अनेक गाँव और नगर खाली हो गए थे। हर घर में ताला पड़ा था। सभी लोग घरों में आवश्यक और मूल्यवान सामान लेकर सुरक्षित तथा रोगमुक्त स्थानों में चले गए थे। सैकड़ों लोगों की मृत्यु हो गई थी। विभीषिका का यह वर्ष लोगों की स्मृति में विशेष समयबोध के रूप में अंकित है। 'प्लेग का साल' कहने में उस वर्ष का बोध हो जाता है, जब प्लेग फैला था। प्लेग का साल कहने में बस प्लेग की विभीषिका पर न रहकर समयबोध हो गया है। सन 1946–47 में भी प्लेग फैला था। सामान्यतः सन 1917 की साल को

प्लेग का साल कहा जाता है, कभी–कभी अंतर बताने के लिए उसे पैली प्लेग का साल कह दिया जाता है।

'पिलेग सालें भये ते।' प्लेग की साल पैदा हुआ था।

ऋतुऐं– बुंदेली में ग्रीष्म ऋतु के लिए 'जेठमास' शब्द प्रचलित है। यहाँ जेठमास का अर्थ केवल जेठ का महीना नहीं है, बल्कि अर्थविस्तार के द्वारा पूरी ग्रीष्म ऋतु है।

'बसकारो' पूरे वर्षा काल का द्योतक है। चौमासा भी वर्षा काल के लिए प्रयुक्त शब्द है। जैन मुनि और अन्य संन्यासी वर्ग वर्ष के शेष समय तो परिव्रजन करते रहते हैं पर वर्ष के चार माह किसी एक जगह रह कर चातुर्मास करते हैं। 'चातुर्मास' शब्द का इस प्रकार केवल वर्षा के चार माह में अर्थसंकोच हो गया। इसी से चौमासा शब्द बना। 'जड़कारो' जाड़े की ऋतु है।

'जेठमास' में ग्रीष्म के सभी महीनों का समावेश होने के कारण यह शब्द बहुवचन वाचक है। एक वचन नेतृत्व 'जेठमास' केवल जेठ का महीना है।

'पूरे जेठमास कट जैं फिर अनिवासी का मटका?' पूरी गरमियाँ निकल जाएँगी फिर शुरू करोगे क्या नए मटके का उपयोग?

'बसकारो' 'चैमासो' और 'जड़कारों' एकवचन के रूप हैं और इनका प्रयोग बसकारे, चैमासे, और जड़कारे के रूप में बहुवचन वाचक भी होता है हालाँकि आशय एक का ही होता है।

'चैमासे तो लग गए अब छीनर कब कराओ।' बरसात तो शुरू हो गई अब छावनी कब कराओगे?

'बसकारे लग गये अब थपत कउं खपरा?'

एकवचन के अर्थ में इन शब्दों के बहुवचन प्रयोग का कार्यकाल का प्रलंबतान या अनेक महीनों का समावेश हो सकता है। जब इन्हें अनेक अर्थ में कहना होता है तब इनके पूर्व संख्यावाची विशेषण आते हैं। केउ चैमासे, केउ जेठ मास, केउ जड़कारे।'

शीघ्रता, विलंब– सौकारूं, सौकाऊं–सकाल, शीघ्र समय रहते।

'सौकाऊं कड़ जाओ' का अर्थ है जल्दी चले जाओ ताकि अधिक समय न हो जाए।

'भौत सौकाऊं निकरे ते।' बहुत जल्दी निकले थे।

यहाँ सौकाऊं में सुबह का संकेत है।

उलायते–बिना विलंब के, शीघ्रता से।

'उलायतो निगत आ।' शीघ्रता से चलता आ।

उलात–शीघ्रता के अर्थ का द्योतक है।

'उलात काय आ मचाएं। उन्ना पैरन दौ के नईं।'
शीघ्रता क्यों कर रहे हो कपड़े पहनने दोगे कि नहीं।
अबेर–सौकाउं विलोम अबेर है।
'अबेरा परी बहुत संकट है।' ईसुरी
'अबेर हो रई' देर हो रही है।
'आज बहुत अबेरे उठे।' आज बहुत देर से उठे।

'अबेर' शब्द सब अबेरा हो जाता है तो उसका अर्थ बिल्कुल विपरीत। अबेर न मचाओ या अबेरा ना पारो का अर्थ है जल्दी न करो। अबेरा में शीघ्रता का अर्थ, समयाभाव से उत्पन्न हड़बड़ी है। अँधेरा यहाँ अबेला, असमय, अनुपयुक्त समय का समानार्थी है लेकिन वह समय पूर्णता की असमयता की दृष्टि से किसी कार्य में जितना समय लगना चाहिए उससे कम या उसके पूर्व का अर्थ अबेरा में निहित है। अबेरा विपत्ति के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। 'भगवान ऐसी अबेरा काउ पे न पारे।' ईश्वर ऐसी विपत्ति किसी पर ना डालें।

कुकेर अनुपयुक्त समय का वाचक है इसे 'उपयुक्त समय पर सफलतापूर्वक किया' अर्थ नहीं है। कुबेरा का अर्थ है– वह समय जो किसी कार्य के लिए उपयुक्त नहीं हो।

'कुबेरा हो गई और तुम अबे हियंई बैठे' यह असमय हो गया और तुम अभी यहीं बैठे हो।

बेरा–कुबेरा का अर्थ है समय–असमय।

'बेरा कुबेरा हो देखवो करो। चकिया चला दई।' समय–असमय देखा करो दिन में ही चक्की शुरू कर दी।

आतइ बेरा का अर्थ है आते समय।

अबे शब्द अभी का बुंदेली रूप है।

इस तरह बुंदेली में समय को बहुत सूक्ष्म अंश तक नामित किया गया है जो हिंदी की समृद्धि को प्रकट करता है।

संपर्क

70, हाथी खाना, दतिया, मध्यप्रदेश–478661

फोन–9425113172, ईमेल– pandeykrishna896@gmail.com

❑❑❑

मराठी लोकगीतों में रिश्तेदारों का वर्णन

बबन चौरे

'निराला की साहित्य साधनाः एक मूल्यांकन', 'समकालीन हिंदी साहित्य में मूल्यबोध', 'निराला का हिंदी गद्य में योगदान' पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पुस्तकों–पत्रिकाओं में शोध आलेख प्रकाशित। संप्रति– प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बाबूजी आव्हाड वरिष्ठ महाविद्यालय, पाथर्डी, अहमदनगर, महाराष्ट्र।

लोकगीत मनुष्य मन की सहज एवं सुंदर अभिव्यक्ति है। सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जाता है। लोकगीतों में लोक का मंगल, लोक का सुख–दुख, लोक की आकांक्षा और लोकोत्सव की अभिव्यंजना होती है। इसी कारण लोकगीत लोकमानस का प्रतिबिंब होते हैं। इस संदर्भ में डॉ. सदाशिव फड़के ने लोकगीतों को लोकमानस के तरंगायित रूप से निःसृत काव्य का रूप मानते हुए लिखा है कि, ''शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोकव्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनंद की तरंग में जो छंदोबद्ध वाणी सहज उद्‌भूत करता है वह लोकगीत है।''[1] उसी प्रकार डॉ. श्याम परमार लोकगीतों का महत्व उनकी नैसर्गिकता में देखते हैं। उनका कहना है, 'लोकगीतों में विज्ञान की तलाश नहीं, मानव संस्कृति का सारल्य और व्यापक भावों का उभार है। भावों की लड़ियाँ लंबे–लंबे खेतों सी स्वच्छ, पेड़ों की नंगी डालों की तरह अनगढ़ और मिट्‌टी की भाँति सत्य है।''[2] संक्षेप में लोकगीत मनुष्य मन की सहज, सरल और सरस अभिव्यंजना है जिनका अधिकांश सृजन जनसाधारण में होता है।

भारतीय समाज और परिवार रिश्तों–नातों से समृद्ध है। इन रिश्तों का वर्णन अनेक जगहों पर अनेक संदर्भों में मिलता ही है लेकिन इन रिश्तों का काव्यमय वर्णन अधिकतर लोककलाकार और ग्रामीण महिलाओं ने किया है। लोक–कलाकार विभिन्न अवसरों पर अपने गीतों के माध्यम से रिश्तों का महत्व प्रस्तुत करते रहें हैं। भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे अधिक रिश्तों का निर्वहन महिलावर्ग को ही करना पड़ता है। भारतीय महिलाओं के जीवन के दो भाग होते हैं, एक मायका और दूसरा ससुराल। मायके के रिश्तेदारो में माँ–बाप, भाई–बहन, चाचा–चाची, मौसी–मौसा, मामा–मामी, भाँजा–भाँजी के साथ–साथ पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, रास्ते–पगडंडियाँ, नदी–नाले,

खेत–खलिहान भी उसके रिश्तेदार बन जाते हैं। उसी प्रकार विवाह के बाद ससुराल में निर्माण होने वाले रिश्तों में पति, बेटा–बेटी, सास–ससुर, देवर, ननद, जेठ–जेठानी–देवरानी महत्वपूर्ण है। इन सबके प्रति उसका व्यवहार और संबंध कभी अपनत्व, प्रेम, अनुराग, स्नेह तो कभी–कभी ईर्ष्या का भी होता है। इसी व्यवहार और संबंधों को लोकगीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। यहाँ उसकी भूमिका रिश्तों के हिसाब से बदलती रहती है।

माता–पिता– मायके के रिश्तेदारो में सबसे पहला स्थान आता है माता–पिता का। मायके का मूलाधार ही माता–पिता हैं। माता–पिता के बिना मायके की कल्पना भी ससुरालवासी महिला के लिए संभव नहीं है। उसका मानना है कि माता के बिना मायका और पति के बिना ससुराल का कोई महत्व नहीं है। जैसे बारिश के बिना खेत भेसूर अर्थात भयानक लगते हैं, उसी प्रकार माता के बिना मायका और कंथ (पति) के बिना ससुराल लगता है। जैसे–

आई वाचून माहेर, कंथा वाचून सासर।
राजा पावसाविन, रान दिसत भेसूर ।।

किसी ससुरालवासी महिला के लिए मायके में माता से बढकर कोई नहीं है। माता का स्थान उसके लिए वीरान जगह पर छाया देनी वाली उस बेरी के पेड़ के समान है, जिसके नीचे निर्भय होकर सोया जा सकता है। यहाँ माता को बेरी के पेड़ की उपमा खास वजह से दी गयी है। क्योंकि बेरी का पेड़ जिस प्रकार अपने आप उगकर, कम से कम आवश्यकताओं में विपरित माहौल में जीवित रहता है और केवल जीवित ही नहीं रहता, बल्कि पशु–पक्षियों तथा पथिक को छाँव तथा मीठे बेर देता है। उसी प्रकार एक माता भी विपरित परिस्थितियों में रहकर अपने परिवार और बच्चों का आधार बनकर भरण–पोषण करती है । इसलिए तो वह माता के संदर्भ में कहती है –

माय म्हणू माय, आहे लवणाची बोर ।
तुझ्या सावलीला, झोप चल बिनघोर ।।

माँ बाप के घर का राज और वहाँ के वातावरण की प्रशंसा अनेक मराठी लोकगीतों में हुई है। विवाहिता के लिए माता–पिता का मायके में होना सबसे सुखद बात है क्योंकि उनके बाद तो भाई–भौजाई का अमल शुरू हो जाता है। भाई–भौजाई का उनके प्रति व्यवहार कैसा होगा? इसे कोई नहीं जानता। क्योंकि भाई–भौजाई का स्नेह मिलना तो उसके लिए तकदीर की बात है। उसी प्रकार मायके में जब तक माँ बाप होते हैं तब तक बेटी का लड़कपन मौजूद रहता है। माँ–बाप के बाद वही लड़कपन प्रौढ़ता का रूप धारण करता है। इसीलिए इस गीत में लड़कपन को वडवण (कुएँ से पानी निकालने के लिए लकड़ी का बनाया ढाँचा) के रूप में देखा गया है। जैसे–

राजा मध्ये राज माय बापाचं चांगलं।
भावाभावजयीचे राज घेवा नशीबी लागलं।।
जवर गं आई बाप, तवर ग हुडं पन।
असं देतं बाई शोभा, ना येहरींचे वडवन।।

विवाह में सबसे भावुक और मार्मिक प्रसंग होता है विदाई का। लड़कियाँ विवाह के बाद मायका छोड़कर जब ससुराल जाने लगती हैं तो उसको विदा करने की एक खास परंपरा होती है। विदाई के प्रसंग पर नवविवाहिता और मायके के लोगों की जो भाव विह्वल स्थिति होती है, उसे शब्दों में बाँधना आसान नहीं है। परंतु लोकगीतों ने इसमें सफलता प्राप्त की है। एक जमाने में तो सारा गाँव विवाहिता को बिदा करने के लिए उपस्थित रहता था। इस प्रसंग पर वह किसी व्यक्ति विशेष की बेटी न रहकर सारे गाँव की बेटी हो जाती थी। वह ससुराल जाने लगती है तो उसको विदा करते हए पिता गाँव के प्रवेशद्वार तक जाता था लेकिन माँ को तो उतना भी अधिकार नहीं था। बेचारी अपनी ममता को दबाती हुई केवल पल्लू से आँखें पोछ सकती है। इसलिए तो पोतराज जैसे लोककलाकार अपने गीतों में माँ की ममता को वेडी (पागल) कहते हैं, जैसे–

लेक चालली सासरी, बाप गेला वेशी पासी।
मायीची ग वेडी माया, पदरान डोळ पुसी।।

ससुराल में महिलाओं को अनेक प्रकार की विपत्तियों का सामना करना पड़ता था। अनेक बार तो बीमार होने के बावजूद उनका इलाज नहीं होता तब उसे लगता था कि, किसी न किसी माध्यम से यह खबर उसके मायके तक पहुँचे और कभी–कभी आश्चर्य यह होता था कि वह खबर मायके में पहुँच जाती थी। इसे मनोविज्ञान में टैलीपैथी कहा जाता है। इसके लिए लोकगीत में जो संकेत दिए गए हैं, वह बहुत ही समर्पक है। यहाँ ससुरालवासी महिला इस बात के लिए पहले प्रश्न पूछती है कि उसके बीमार होने का मायके में कैसे पता चला? और दूसरी पंक्तियों में उसका उत्तर देती हुई कहती है कि मायके के आँगन में जो चाफे का पेड़ है, उसकी कलियाँ अचानक से झरने लगी होगी और बाप को संकेत मिला होगा कि मैं आँगन हूँ। उसी प्रकार माँ को भी जाई की कलियों के गिरने के माध्यम से संकेत मिला होगा। जैसे –

जीवाला माझ्या जड, कस कळाल माझ्या बापा।
अंगणी होता चाफा, कळ्या पडल्या गपा–गपा।।
जीवाला माझ्या जड, कस कळाल माझ्या आई।
अंगणी होती जाई, कळ्या पडल्या घाई–घाई।।

भाई–भौजाई–विवाहिता के लिए मायके में माँ–बाप के बाद या कभी–कभी उससे भी बढ़कर अगर कोई है, तो वह है उसका भाई। मराठी लोकगीतों में सबसे

अधिक लोकगीत भाई या बंधू को लेकर है। मराठी लोकगीतों में महिलाएँ भाई का वर्णन करते हुए कभी थकती नहीं। अपने भाई के प्रति उसे प्रेम, अभिमान और गर्व है। भाई का वर्णन करते हुए लोकगीतों में उसके व्यक्तित्व और उसकी स्थिति का अतिश्योक्तिपूर्ण वर्णन किया गया है। भाई की आर्थिक संपन्नता, सामाजिक प्रतिष्ठा, पारिवारिक रुतबा उसके वर्णन के विषय बन जाते हैं। भाई से मिलने वाली हर भेंट – उपहार ससुराल में चर्चा के विषय बन जाते हैं। भाई के द्वारा एक महीने में भेजी हुई दो चोलियाँ भी अड़ोस – पड़ोस की महिलाओं में चर्चा का विषय बन जाता है। एक लोकगीत में पड़ोस की महिलाएँ पूछतीं है कि ऐसा अमीर भाई किसका है जो एक महीने में दो–दो चोलियाँ बहन को देता हो.

चोळ्या वरी चोळ्या, मला एका महिन्यात दोन।
बोलती शेजी बाई, असा श्रीमंत भाऊ कोण।।

उसी प्रकार वह अपने भाई के घर का वर्णन करती हुई घर की विशालता तथा संपन्नता का जिक्र जरूर करती है। उसे अपने भाई के घर के प्रति अभिमान और गर्व है। उसे लगता है कि उसके भाई जैसा घर अन्य किसी का नहीं है। इसलिए वह किसी राह चलते पथिक को कहती है कि, हे पथिक! सिर्फ देहात को क्या देख रहा है, मेरे भाई के वाडे (घर) को देख उसे तो सोने का ताला लगा हुआ है

वाटच्या वाटसरा, काय पहातो खेड्याला।
सोन्याच कुलूप, मह्या बंधूच्या वाड्याला।।

ससुरालवासी महिला अपने भाई की संपन्नता का वणर्न करते समय भाई के परिवार को नहीं भूलती। भाई की संतानें खासकर भाँजे–भाँजी में वह अपने भाई को देखती है। भाई का परिवार उसके के लिए अभिमान और आनंद का विषय है। भाई का भरा–पूरा परिवार उसे कृष्ण के गोकुल से कम नहीं लगता।

अस सरल गं दळण , कसी म्हणू मी सरल।
भाऊ – भाशांनी, गोकुळ माझं गं भरल।।

मराठी लोकगीतों में भौजाई का वर्णन तो हुआ है लेकिन उस वर्णन में स्नेह से अधिक ताने ही देखने को मिलते हैं। जहाँ प्रशंसा देखने को मिलती है वहाँ भौजाई भाई की धर्मपत्नी के रूप में चित्रित है। लेकिन जहाँ भौजाई का संबंध व्यवहार से आता है वहाँ वह द्वेष का विषय बनती है। बहन के लिए जब भाई साधारण चोली भी लेता है तो भौजाई को यह बात पसंद नहीं आती। तब वह कहती है कि उसे इस बात की परवाह नहीं है कि भौजाई क्या सोचेगी, क्योंकि जब भाई जैसा चंद्रमा उसके साथ है तो चाँदनी अर्थात भौजाई को कौन पूछता हैं, जैसेः–

बंधू माझा घेतो चोळी, भावजई कानी–कानी।
चंद्र आहे माझा भारी, चांदणी ला कोण मानी।।

माँ बाप के बाद मायके में केवल औपचारिकता निभाने के लिए बुलाया जाता है।

भाई का सच्चा प्रेम, स्नेह भी जीवन की आपाधापी में खो जाता है और रहता है केवल व्यवहार। इसलिए तो लोकगीतों में महिलाएँ कहती हैं कि जब तक माँ बाप है तब तक ही मायके में हमारा आना–जाना होगा। उसके बाद तो भाई–भौजाई का अमल या राज शुरु होगा। उस अमल में हमें कौन पूछेगा ? उस राज में कौन किसका होगा ? भौजाई का वर्णन करते हुए वह कहती है कि तब भौजाई हमारी कहाँ होगी, हमारा अस्तित्व तो बिना आधार के खंभे जैसा होगा, जैसेः–

जवर बाबा बया, तवर माहेराची गोडी।
कोणाच्या भावूजया, नं बिन आधाराच्या मेडी।।

बहन– मायके में जिस प्रकार भाई का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहता है उसी प्रकार बहन का भी स्थान उतना ही महत्वपूर्ण है। भाई हमेशा मायके में रहता है लेकिन बहन तो विवाह के बाद विभिन्न गाँवों में चली जाती है। भाई–बहन के आपसी प्रेम का मराठी लोकगीतों में बहुत मार्मिक चित्रण किया गया है। बहन के प्रति ससुराल में होनेवाला बर्ताव या व्यवहार, ससुराल में होने वाला उसका अपमान, ससुराल में उसे दी जाने वाली तकलीफ, यह सब भाई समझता है। भाई का बहन के प्रति प्रेम, स्नेह, चिंता लोकगीतों में व्यक्त हुई है। बहन का दुख जब भाई को सुनाई देता है तो उससे झरने का पानी भी पिया नहीं जाता। बहन की तकलीफ जब वह सुनता है तो अपनी माता के पास जाकर कहता है कि बहन को ससुराल में बहुत दुख है। इसी भावना को व्यक्त करते हुए कभी कभी वह कहता है कि बहन का न होना ही अच्छा है।

बहिणीचा सासुरवास, भावाच्या कानी गेला।
उपसिला झिरा भाऊ, पाणी नाही प्याला।।
बहिणीचा सासुरवास नं, बंधू एकतो दारी।।
जाऊन सांगतो आईला, बहीण नसल्याली बरी।।

भाई का बहन के प्रति प्रेम तो सर्वविदित है लेकिन वर्तमान स्थिति में उसमें परिवर्तन भी हुआ है। अब भाई का बहन के प्रति वह पहले वाला प्रेम नहीं रहा। बहन से ज्यादा उसे साली अधिक प्रिय लगने लगी है। इस वास्तविकता को भी मराठी लोकगीतों में व्यक्त किया हैः–

आताच्या राज्यात, भाऊ नाही बहिणीचा ।
खिशा मध्ये चोळी, वाडा पुस मेहुणीचा।।

बेटा– घर में बेटे का स्थान होता है। बेटा ही वंश का कुलदीपक माना जाता है। बेटी के साथ घर के सदस्यों का संबंध भावनात्मक होता है। बेटे के संबंधों में भावनात्मकता के साथ–साथ अधिकार की भावना भी होती है। माँ का बेटे के प्रति प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, अभिमान और गर्व लोकगीतों में प्रस्तुत हुआ है। उसकी हर एक लीला, कार्य, भूमिका माँ के लिए कौतुक और कौतूहल का विषय बन जाता है। सुबह

जब माँ उठती है तो सबसे पहले उसकी नजर अपने बेटे को ढूँढती है। उसे यह जानकर खुशी होती है कि उसका बेटा तो घोंगडी (भेड़ों के बालों से बना वस्त्र जिसे ठंड के मौसम में इस्तेमाल किया जाता हैं) ओढ़कर सुबह से बैलों की रखवाली कर रहा है।

सकाळी उठून, नजर माझी खालाकड।
काळ्या घोंगडीचा, राघू माझा बैलाकड।।

कभी – कभी वह अपने अनुभवों से खेती, फसल के संबंध में जानकारी देती है। फसल तैयार होने के बाद उसे कहाँ रखना इसकी जानकारी देते हुए वह कहती है कि तैयार फसल को खेती के निचले हिस्से में रखो। जैसे –

शेत पिकलं पिकलं, मात गेली गगनात।
सांगते बाळा तुला, सुड्या घाल लवणात।।

बेटे का विविध कोणों से वर्णन मराठी लोकगीतों की विशेषता रही है। मामा अर्थात भाई के पास बैठा उसका बेटा कैसा नजर आता है? मामा के पास भाँजा इतना सुंदर दिखाई देता है कि नजर न लग जाय, इसलिए वह उसे पल्लू के नीचे छुपाना चाहती हैं। जब बेटा कहीं दूर किसी गाँव चला जाता है, तो उसकी चिंता में उसे खाना भी अच्छा नहीं लगताः–

मामाच्या कडाला, भाचा दिसतो नादर।
माझ्या नेणत्या बळावर, टाक शालूचा पदर।।

बेटी– एक बेटी की दृष्टि से माँ का वर्णन तो हमने देख लिया अब एक माँ अपनी बेटी के संदर्भ में क्या सोचती है इसका वर्णन भी अनेक लोकगीतों में हुआ है। कभी उसे चिडिया कहती है, तो कभी मैना कहती है, तो कभी सोनचिरइया कहती है।

दारामंधी माझ्या, चिमणी बाई पानी प्याली।
लाडकी लेक माझी, जवळची मैना आली।।

बेटी के जन्म और उसके बाद उसकी क्या स्थिति होती है इसका वास्तविक वर्णन भी अनेक लोकगीतों में हुआ है। वह कहती है कि बेटी का जन्म तो बबूल के पत्ते जैसा होता है जो तूफान या हवा से कहीं पर भी पहुँच सकता है । उसी प्रकार बेटी का जन्म कहीं होता है, ब्याह कहीं और हो जाता है, मालिक कोई और हो जाता है।

लेकीचा जन्म बाई ,जसा बाभळीचा पाला।
वाऱ्या वावटळीने गेला, धनी कोण कुणाचा झाला।।

बाप को तो बेटी अधिक प्रिय होती है। बाप के लिए वह किसी सोने की छड़ी से कम नहीं है। उसे इस बात की चिंता लगी रहती है कि जब वह पराये घर जायगी तो उसे कहीं धूप न लग जाए अर्थात उसे अधिक कष्ट न उठाना पड़े।

बाप म्हणे लेकी, तू ग सोन्याची सळई।
जाशीन परक्या घरी, लागन उन्हाची झळई।।

ससुरालवासी बेटी से जब बाप पूछता है कि तेरा ससुराल में किस तरह चल रहा है। तो बेटी उत्तर देती हुए कहती है कि जिस प्रकार बाघ जंजीरों में बँधा होता है, उसी प्रकार ससुराल में मेरी अवस्था है।

बाप म्हणे लेकी, सासुरवास कसा।
लोखंडाचा साखळदंड, वाघ आडकिला जसा।।

बहू– रिश्तों में सबसे उपेक्षित दुर्लक्षित बहू का वर्णन भी मराठी लोकगीतों में विस्तार से हुआ है। बहू की अधिकतर लोकगीतों में आलोचना हुई है परंतु मराठी लोकगीतों में उसकी प्रशंसा भी हुई है। ससुर अपनी मन पसंद बहू को उपदेश देते हुए बेटी को सीढ़ियों पर धीरे चलने को कहते हैं:–

सासऱ्याला सून, आवडली मनातून।
इसनील पानी, हळू चाल जिन्यातून।।

देहातों में लडकियों के विवाह बचपन में ही हो जाते थे। बचपन में ही लड़कियाँ ससुराल चली जाती थीं। मायके के लोगों को उसकी चिंता लगी रहती थी कि वह ससुराल में कैसे काम कर पाऐगी? तब ससुराल वालों से विनती की जाती थी कि उसे हलके और छोटे–छोटे काम ही बताएँ। जैसे बछिया को पानी पिलाना, दूध में दही मिलाना आदि।

नेणत्या सुनाला, काम सांगा लहान लहान।
पाज वासराला पानी, घाल दुधाला विरजण।।

यह हर महिला की अपेक्षा होती है कि उसकी बहू सुंदर और सुशील हो। जब वह खड़ी होगी तो उसे देखकर ही उसके मन की कामना पूरी हो जाएगी।

लेकाच्या परीस, सून करीते गवूस।
अशी वसरीला उभी, फिटन मनाची हाउस।।

जमाई– जमाई के संदर्भ में समाज में उतनी अच्छी धारणा न होने के बावजूद लोकगीतों में उनका वर्णन अच्छे रूप में किया है। वैसे जमाई के द्वारा दी जाने वाली तकलीफ और उसका मान सम्मान रखते–रखते होने वाली दमछाक के कारण कहानियों में हमेशा उसकी फजीयत और परेशानी के किस्से सुनाए जाते हैं। लेकिन लोकगीतों में उसकी प्रशंसा देखने को मिलती है। साँवला जमाई भी लोकगीतों में सुंदर लगने लगता है। जिसकी प्राप्ति के लिए तोले के हिसाब से मुहरे गिननी पड़ी थी, इसका अभिमान के साथ वर्णन इस लोकगीत में किया गया है।

जावई सावळा, बाई पाहिला डोळ्यान।
नेणत्या मैनासाठी, म्हर मोजली तोळयान।।

जब कभी जमाई वाद–विवाद करने पर उतरता है तो माता अपने बेटे को सलाह देती हुई कहती है कि बेटे चुपचाप सहन कर क्योंकि अपनी बेटी उसके यहाँ रहती है

सासुरवाडीत भांडण, जावई आले आऱ्या तुऱ्यावरी।
गपबस माझ्या बाळा, आपली बाई त्याच्या घरी।

बहनोई– बहनोई का रिश्ता भी हमारे समाज में अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है जिसे मराठी में मेहुणा कहते हैं। विवाह के पहले बहन का पति अर्थात बहनोई शरारत का विषय होता है। लेकिन जब बहनें विवाह के बाद अपने–अपने ससुराल चली जाती हैं तो शरारती बहनोई अभिमान का विषय बन जाता है। तब उसका वर्णन करते हुए वह अपने रिश्ते का हवाला देते हुए बहनोई के सांवले अंग का वर्णन करती है।

अगं मेहुण्याच नातं, शिंपण करते गुलालाचं।
मेव्हणा गं सावळ्याच, गोर अंग गुलालाचं।।

बहनोई उसके बहन का पति है इसका भी उसे अभिमान है। पहले तो वह प्रश्न पूछती है कि चश्मा लगाकर रास्तें से कौन जा रहा है ? और उसका उत्तर भी दूसरी पंक्ति में देते हुए कहती है कि चश्मा लगाकर रास्तें से जाने वाला दूसरा, तीसरा कोई और नहीं तो उसकी बहन का पति है।

रस्त्यान चालला, कोण बाई आयनीचा।
वडील बाईचा, कंथ माझ्या बहिणीचा।।

चाचा–भतीजा– मराठी में चाचा के लिए चुलता और भतीजे के लिए पुतण्या शब्द का प्रयोग किया जाता है। चाचा भतीजा के रिश्ते के संदर्भ में बहुत कम लिखा गया है लेकिन मराठी लोकगीतों में इस रिश्ते को भी चित्रित किया है गया। चाचा मतलब पिताजी के भाई अर्थात पिता के समान ही। कोई ससुरालवासी स्त्री अपने घर आए हुए चाचा का वर्णन करती है तो उनके बड़प्पन का वर्णन करती है। उसी प्रकार चाचा भतीजे का साथ–साथ खेलना उसके लिए आनंद का कारण बन जाता है।

आले आले पाहुणे, काय काय गाऊ।
बापजीचे भाऊ, चुलते माझे बाजीराऊ।।
माझ्या मनामधी, बहू आनंदाची घडी।
माझ्या वसरी खेळतेत, चुलत्या पुतण्याची जोडी।।

मामा–मामी– माता के भाई को मामा कहा जाता है। भारतीय परिवार में मामा का खास महत्व होता है। भाँजा–भाँजी का लाड करना मामा का कर्तव्य माना जाता है। भाँजा– भाँजी के लिए मां–बाप के बाद सबसे अधिकारवाली और उतनी ही सुरक्षित जगह मामा के पास होती है। मामा का अपनी भाँजी के घर आना और भाँजी

के द्वारा उनकी खातिरदारी करना बहुत ही आनंद और भावुक प्रसंग होता है। इसलिए तो ससुरालवासी स्त्री अपने मामा के भोजन के लिए वह दूध की मलाई से युक्त मांडा बनाना चाहती है क्योंकि वह व्यक्ति दूसरा तीसरा कोई नहीं तो माता का भाई अर्थात मामा है। इतना ही नहीं तो मामा खास आग्रह करके अपनी भाँजी को ननिहाल लेकर जाना चाहता है और उसे जो कुछ चाहिए उसे लेने के लिए नहीं तो लूटने के लिए कहता हैः–

माझ्या घरी ग पाहुणा, मांडा करीन साईचा ।
आला ग माझा मामा, भाऊ माझ्या ग आईचा।।
मामा म्हणतो भाची, चल तू भेटायला।
तुझ्या माईचं माहेर, मुभा तुला लुटायला।।

शादी ब्याह में मामा का खास महत्व होता है। ब्याह तय करने से लेकर ब्याह संपन्न होने तक का सारा कार्य मामा की उपस्थिति में ही संपन्न होता है। विवाह के मंडप में मामा का किस प्रकार सम्मान होता है यह इस गीत के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

बाई मांडवाच्या दारी, कशाचा गलबला ।
बोलते जन लोक, मामा नवऱ्याचा आला।।

समाज के कुछ लोग मामा और भाँजे के बीच झगड़ा लगाने का कार्य करते हैं। तब मामा भाँजे को छोटा मानकर उसकी गलती को नजरंदाज करते हुए हार मान लेता है।

मामा भाश्याची, झोंबी लावली जनानं।
भाशाची कवळी शीन, लवती घेतली मामानं।।

ननिहाल– मायके जैसा ही अपने ननिहाल का आकर्षण विवाहिता को रहता है। दूर से दिखाई देनेवाला गाँव और उसकी दीवारें उसका मन मोह लेती है। इतना ही नहीं तो पानी भरने के लिए जाने वाली महिलाएँ रिश्ते में उसकी मामी ही हैं, ऐसा उसे दूर से लगता है।

लांब इथून दिसती, माझ्या आजुळाच्या भिंती।
खांद्यावरी घागरी, माझ्या माम्या पाणी नेती।।

मौसी– मामा के बाद पारिवारिक रिश्तों में महत्वपूर्ण स्थान मौसी का है। मराठी में तो एक कहावत है कि "माय मरो आणि मावशी उरो " अर्थात दुर्भाग्य से अगर किसी की माँ की मृत्यु होती है तो कम से कम मौसी बचनी चाहिए क्योंकि माँ के बाद मौसी ही माता का दायित्व निभा सकती है। इसलिए मौसी का वर्णन विस्तार से किया गया है।

माझ्या घरी ग पाहुणी, तिला खाया करीन करंजी।
आली माझी मावशी बाई, बहीण माझ्या ग आईची।

पति– लोकगीतों में जिस प्रकार मायके के रिश्ते नातों का वर्णन है, उसी प्रकार ससुराल के भी लोगों का वर्णन मिलता हैं। मायके के रिशतों में जहाँ अपनत्व, प्रेम और स्नेह है वहीं ससुराल के रिश्ते कटुता, जलन, द्वेष, ईर्ष्या से भरे हुए हैं। इसमें अपवाद केवल पति का होता है। पति के प्रति आदर, प्रेम और सम्मान का भाव देखने को मिलता है। ससुराल में पति ही उसके जीवन का आधार है। इसलिए पति की इज्जत उसकी इज्जत बन जाती है। उसका मानना है पति ने ही उसके जीवन का बोझ उठाया है इसलिए उसे कभी भी दोष देकर बोलना नहीं चाहिए। इतना ही नहीं ससुराल में अपने रहन–सहन पर पति की इज्जत निर्भर है। इसलिए वे एक दूसरे से कहती हैं कि ससुराल में अपना बर्ताव और पहनावा अच्छा ही होना चाहिए। जैसेः–

फाटला पाटव, घे ग निरीला झाकून।
अन आब, कंथाचा राखून।।
भरताराला नारी, नको बोलू अजं दुजं।
आपल्या जल्माच, त्येंन उचललं वझं।।

सास–ससुर सास–ससुर का बर्ताव एक विवाहिता के लिए हमेशा कष्ट दायक रहा है। परंतु यह बात हमेशा सत्य नहीं रही क्योंकि अनेक लोकगीतों में सास ससुर के स्नेहशील, स्वभाव का वर्णन भी किया है। कभी कभी तो उनको अपने देवघर का देवता भी कहा गया है और उनके पाँव छूने में उसे किसी भी प्रकार का दुर्भाव नहीं है। उसी प्रकार सास की छत्रछाया में वह सुहागन बनी रहना चाहती है ।

सासू सासरे माझे देव्हारयाचे देव।
पडते पाया मनी नाही दुजाभाव।।

कभी–कभी सास बहू का झगड़ा और उसमें पति की भूमिका का वर्णन भी लोकगीतों में किया है। जहाँ बेटा खुद पत्नी को अनुमति देता है कि वह बुढ़िया का काम तमाम करे।

सासू सुनाच भांडण, लेक पानईला उभा।
देतो अस्तुरीला मुभा, कर म्हतारीचा भुगा।।

सास और ससुर को बेटी बहू के रूप में कैसे पसंद हुई और उन्होनें उसका चुनाव कैसे किया जैसे हरा धनिया हम चून–चून कर लेते हैं। उसी प्रकार सास के द्वारा होने वाला बहू का छल करते समय ननद को धीरे बोलने के लिये रखा जाता है क्योंकि उसका पति बाहर से आया है।

सासू सासऱ्याला, मालन माझी आवडली।
धन्याची कोथंबीर, काय गुणाला निवडली।।

समधी–समधन– समधी और समधन का वर्णन भी मराठी लोकगीतों की विशेषता रही हैं। वैसे देखा जाय तो समधी और समधन का रिश्ता बड़ा नाजुक होता

है। यह रिश्ता दोनों तरफ का होता है। लड़का और लड़की के माता–पिता दोनों परस्पर एक दूसरे के समधी समधन होते हैं। इसमें सबसे अधिक महत्व लड़के के माता–पिता का होता है। दोनों समधन में तुलना होती है। जब लड़की की माता अपनी समधन अर्थात लड़के की माता को गीतों में कुछ आग्रह करती है तो उसमें अधिकांश निवेदन अपनी लड़की को सुखी रखने हेतु ही होती है। उसी प्रकार समधी और समधन किस प्रकार की उन्हें मिली है, इसकी चर्चा भी इन गीतों में की गई हैः–

बाई लेकीच्या आईन, कामून पस्तावा मांडीला।
लेकाच्या आईला ना, कुठ झुलवा टांगीला।।
येहीन माझ्या बाई, तुला सांगते घरात।
साळीच्या भाताच, माझ्या मैनाला वरात।।
येहीन हावूशी अन, येही मिळाला धीन्गड।
मांडवाच्या दारी, फुलबाजाची झिंबड।।

मराठी लोकगीत सिर्फ मानवीय रिश्तों तक सीमित नहीं है। उसमें उन रिश्तों का भी अंतर्भाव है जो समस्त व्यक्ति के साथ होते हैं।

बैल– भारत एक कृषिप्रधान देश माना जाता है। कृषि का आधार बैल ही होते थे। उस समय बैलों का महत्व अत्यधिक था। बैलों के प्रति ग्रामीण समुदाय अत्यंत संवेदनशील होता था । बैल घर–परिवार के एक सदस्य ही माने जाते थे। किसानों की प्रगति आधार और उसका कारण बैल ही माने जाते हैं। बैलों के प्रति यह कृतज्ञता अनेक लोकगीतों के माध्यम से व्यक्त हुई है। किसान बैलों के लिए गीत गाए जाते हैं और उनके लिए खास त्योहार भी मनाया जाता है। इस समय खेत की फसल बैलों के कष्ट के कारण निर्माण हुई है इसका भी ध्यान उसे हैः–

शेत पिकलं पिकलं, मात गेली गगनात।
बाळाचे माझ्या, नंदी राबले शेतात।।

महाराष्ट्र में तो खास बैलों के लिए पोळा नामक त्योहार होता है। उस दिन किसान बैलों के लिए उपवास रखते हैं। एक माँ अपने बेटे का वर्णन करती हुई कहती है

पोळ्याच्या दिवशी ,राघू माझा उपाशी।
बारा बैलाचा उपास, धरितो सायाशी ।।

रास्तें– रास्ता खासकर मायके का रास्ता भी ससुरालवासी महिला को अपना सगा–संबंधी लगता है। इसी रास्ते पर उसे जब हिचकी लगती है तो मायके की याद अपने आप आती है। उसी रास्ते पर जब सखी दिखाई देती है तो वह उसके पास संदेश देती है। उसे मायके जाने की इतनी जल्दी है कि वह अपना संदेश सखी के पास भेजकर उसके पहुँचने से पहले पहुँचाना चाहती है। जैसे–

माझ्या माहेरच्या वाटे मला लागली गुचकी।
आली उडत उडत, एक दिसली सायंकी।।
माझ्या माहेरच्या वाटे, मार सायंखी भरारी।
माझ्या जाण्याच्या आधी, सांग निरोप माहेरी।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि रिश्तों को लेकर कहे गए लोकगीतों का भंडार मराठी लोकगीतों में बिखरा हुआ है। समय के साथ पुरानी पीढ़ियों के साथ यह भंडार भी लुप्त हो रहा है । इसमें आपको प्रतीक, बिंब, अलंकार, रस, छंद सबकुछ मिलता है लेकिन उसका विश्लेषण करना यहाँ हमारा उद्देश्य नहीं है।

संदर्भ–

1. मेरे गाँव की महिलाएँ और लोक कलाकारों से मेरे सुने हुए लोकगीत
2. लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति – उषा सक्सेना पृष्ठ 46
3. लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति – उषा सक्सेना पृष्ठ 46

संपर्क

अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बाबूजी आत्हाड़ महाविद्यालय, पाथर्डी, जि– अहमदनगर, महाराष्ट्र–414102, फोन–9423045870, ई मेल–drbabanchoure@gmail.com

❑❑❑

पृथ्वी सभी मनुष्यों की जरूरत पूरी करने के लिए पर्याप्त संसाधन प्रदान करती है, लेकिन लालच पूरा करने के लिए नहीं।

–महात्मा गांधी

ध्वनि सिद्धांत : विवेचन एवं प्रासंगिकता

कमलेश सिंह
छह पुस्तकें प्रकाशित। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओ में आलेख और समीक्षाएँ प्रकाशित। संप्रति–धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़ में अध्यापनरत।

भारतीय काव्यशास्त्र के संप्रदायों में ध्वनि संप्रदाय का स्थान अति महत्वपूर्ण है। ध्वनि संप्रदायमें काव्य की आत्मा ध्वनि को बताया गया तथा ध्वनि का संबंध शब्द की व्यंजना शक्ति से निर्धारित किया गया। ध्वनि संप्रदाय से संबंधित ग्रंथों में प्राचीनतम आनंदवर्धन द्वारा रचित 'ध्वन्यालोक' है। हालाँकि आनंदवर्धन ने अपने सूत्र 'काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समान्नतापूर्वः' से स्पष्ट किया कि ध्वनि की परंपरा उनसे पहले ही से है। परंतु पूर्व कोई ग्रंथ न मिलने के कारण ध्वनि की परंपरा के प्रवर्तन का श्रेय उन्हें ही दिया जाता है।

संस्कृत काव्यशास्त्र के उत्कृष्ट विद्वान पी.वी. काणे के अनुसार ध्वनि सिद्धांत रस–सिद्धांत की ही एक शाखा है। क्योंकि रस सिद्धांत दृश्य–काव्य तक ही सीमित था। इस सिद्धांत को और खींचते हुए आनंदवर्धन ने रस को श्रव्य–काव्य के अनुकूल बनाने के लिए ध्वनि की महत्ता स्थापित की। आनंदवर्धन ने अपने से पूर्ववर्ती अलंकार और रीति की व्यापकता का निराकरण किया और रस को ध्वनि का एक भेद स्वीकार करते हुए भी उसे सर्वोत्कृष्ट भेद घोषित किया। उन्होंने लक्षणा शब्दशक्ति को स्वीकार करते हुए भी ध्वनि (व्यंजना) को इससे अलग माना। लक्षणा में ध्वनि को अंतर्भूत नहीं किया जा सकता। आनंदवर्धन ने ध्वनि का व्यापक रूप निर्दिष्ट करने के लिए इसके तारतम्य के आधार पर समग्र काव्य को तीन भेदों में विभक्त किया तथा अलंकार, गुण, रीति (संघटना) और दोष का लक्षण नवीन रूप में प्रस्तुत किया। इनके अनुसार ध्वनि काव्य की आत्मा है। आनंदवर्धन के उपरांत ध्वनितत्व का खंडन किया गया। किंतु आगे चलकर मम्मट ने अपने मार्मिक विवेचन द्वारा ध्वनि की पुनः स्थापना की। ध्वनि को परिभाषित करते हुए आनंदवर्धन ने लिखा है कि ''जहाँ अर्थ स्वयं को तथा शब्द अपने अभिधेय अर्थ को गौण करके प्रतीयमान अर्थ प्रकाशित करते हैं उसे काव्यविशेष के विद्वानों ने ध्वनि कहा''। इसका अभिप्राय यह है कि ध्वनि में व्यंग्यार्थ (प्रतीयमान) अर्थ तो होता ही है, किंतु केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। उस प्रतीयमान

अर्थ को वाच्यार्थ से अधिक महत्वपूर्ण होना अपेक्षित है, अर्थात् जहाँ व्यंग्यार्थ प्रमुख एवं वाच्यार्थ गौण हो वहीं ध्वनि मानी जा सकती है। आनंदवर्धन ने कहा–

''प्रतीयमान पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यततत्प्रसिद्धावयवातिरिक्त, विभाति लावण्यमिवांगनासु।।
काव्यस्यात्मास एवार्थस्तथा चादिकवेः पुरा।
क्रौंचद्वद्ववियोगोत्यः शोकः श्लोकत्वमागतः''।।

प्रश्न यह उठता है कि व्यंग्यार्थ को प्रमुखता किस कारण से प्राप्त हो सकती है? इसके उत्तर में कहा गया है कि सौंदर्य के आधार पर ही व्यंग्यार्थ, वाच्यार्थ से प्रधान हो सकता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि जहाँ व्यंग्यार्थ, वाच्यार्थ से अधिक सुंदर हो, वहीं ध्वनि का अस्तित्व स्वीकार किया जाएगा। ध्वनि का संबंध शब्दशक्तियों से है। अतः यह एक व्याकरण आधारित काव्य–सिद्धांत है। भारतीय काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों में भाषा की अर्थसूचित करने की क्षमता को शक्ति या वृत्ति के नाम से पुकारा जाता है। ध्वनि में मुख्यतः तीन शब्द शक्तियाँ अभिधा, लक्षणा व व्यंजना पाई जाती है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या गुण, रीति, अलंकार आदि से पृथक काव्य में ध्वनि नाम का कोई तत्व रहता है। इस संबंध में ध्वनि विरोधियों ने अनेक वितर्क प्रस्तुत किए। कुछ विरोधियों ने ध्वनि के मूलाधार व्यंग्यार्थ को ही अस्वीकार कर दिया। अपने कथन के समर्थन में उन्होंने कहा कि व्यंजना से अभिधा की पृथक सत्ता और व्यंजना की लक्षणा से पृथक सत्ता नहीं है। प्रतीयमान अर्थ या तथाकथित व्यंग्यार्थ तो अनुमान से ग्रहण होता है। अतः इन ध्वनिविरोधी आचार्यो के अनुसार व्यंजना व ध्वनि को मानने की आवश्यकता नहीं है। ध्वनि का समन्वय, समासोक्ति, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि अलंकारों में किया जा सकता है। ध्वनिवादियों की दृष्टि से यह व्यंग्यार्थ मात्र अभिव्यक्ति नहीं होती है। इसलिए इन्होंने इसके भी तीन भेद किए। जहाँ व्यंग्यार्थ से रसादि की प्रतीति हो जाती हो वह रसद् ध्वनि संपन्न व्यंग्यार्थ या काव्य कहा जाएगा। यहाँ रसादि से इन आचार्यो का तात्पर्य असंपुष्ट रस, भाव या रसाभास से था। इस प्रकार ध्वनिवादियों ने रस का खंडन नहीं किया बल्कि उसे अपने सिद्धांत में ही समाहित कर लिया। जहाँ व्यंग्यार्थ अलंकार–बोध तक ले जाए, वहाँ अलंकारध्वनि संपन्न व्यंग्यार्थ या काव्य होगा। जैसे मीर के निम्नलिखित शेर में–

''नाजुकी उनके लब की क्या कहिए।
पंखुड़ी एक गुलाब की सी है''।।

काव्य मात्र होठों को गुलाब की पंखुड़ी से उपमा करा पाता है। इसलिए यह अलंकारद् ध्वनि संपन्न काव्य है। जहाँ व्यंग्यार्थ किसी वस्तु की सुंदर व्यंजना तक ले जाए, वहाँ पर वस्तु ध्वनि संपन्न व्यंग्यार्थ या काव्य होगा। इस प्रकार ध्वन्यालोक में आनंदवर्धन ने व्यंग्यार्थ के तीन भेद करके उसमें रस, अलंकार आदि सारे काव्यशास्त्रीय

विषयों को अपने सिद्धांत में समाहित कर लिया। संस्कृत काव्यशास्त्र में परंपरा रही है कि अपने सिद्धांत को तार्किक, व्यापक एवं स्वीकृत कराने के लिए उसी के अनुसार काव्य की परिभाषा एवं उसका भेद किया जाता था। आनंदवर्धन ने भी इस परंपरा का अनुकरण करते हुए काव्य के तीन भेद किए।

1. **ध्वनि काव्य** :– जहाँ व्यंग्यार्थ की चारुता एवं प्रधानता वाच्यार्थ से अधिक हो, उसे ध्वनि काव्य कहेंगे। जैसे–

''सीता हरन तात जनि कहहु, पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहिदसानन आइ।।''

'रामचरितमानस' के इस जटायु–उद्धार से संबंधित दोहे में प्रत्यक्षतः केवल स्वर्ग आने–जाने की बात कही गई है। परंतु व्यंग्यार्थ इस वाच्यार्थ पर हावी होते हुए स्पष्ट कर दे रहा है कि राम इस चौपाई में रावण का कुलसहित वध करने की प्रतिज्ञा ले रहे हैं।

2. **गुणीभूत–व्यंग्य काव्य** :– जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ की अपेक्षा गौण अथवा कम चमत्कार हो, वहाँ गुणीभूत व्यंग्य काव्य माना जाता है। इस तरह के काव्य के लिए इसके भावों का सुंदर होना अनिवार्य है। मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत' महाकाव्य की निम्नलिखित पंक्तियाँ व्यंग्य काव्य का सुंदर उदाहरण है–

''युग–युग तक चलती रहे, कठोर कहानी।
रघुकुल में थी एक, अभागिन रानी।।'

3. **चित्र काव्य** :– जहाँ वाच्यार्थ ही प्रमुख हो एवं व्यंग्यार्थ का एकदम अभाव हो, उसे आनंदवर्धन ने चित्रकाव्य कहा। इन्होंने सारे अलंकारयुक्त काव्य को चित्रकाव्य माना। चूँकि जहाँ अलंकारों का सौंदर्य हो, वहाँ भावों का सौंदर्य तो होगा नहीं इसीलिए आनंदवर्धन ने चित्रकाव्य को निकृष्ट या अधम काव्य कहा। इनके अनुसार ध्वनिकाव्य एवं गुणीभूत व्यंग्य काव्य मध्यम कोटि का काव्य है।

आनंदवर्धन के परवर्ती आचार्य विश्वनाथ ने तो केवल दो ही प्रकार, ध्वनि एवं गुणीभूत व्यंग्य को काव्य माना। उनके अनुसार भावहीन चित्रकाव्य काव्येतर किस्म की रचना है। 17वीं शताब्दी के ध्वनिवादी आचार्य पंडितराज जगन्नाथ ने ध्वनि के आधार पर काव्य के चार भेद किए।

उत्तमोत्तम काव्य – ध्वनि काव्य

उत्तम काव्य – ध्वनिभूत व्यंग्य काव्य

मध्यम काव्य – जिसमें अर्थचित्रों की प्रधानता हो, अर्थात् जहाँ शब्दालंकारों की चारुता हो।

अधम काव्य – जिसमें शब्दचित्रों की प्रधानता हो, अर्थात् जहाँ शब्दालंकारों की चारुता हो।

इस प्रकार जगन्नाथ ने दो प्रकार के अलंकारों के भेद के अनुसार काव्य के भेद भी बढ़ा दिए। इससे स्पष्ट है कि यद्यपि ध्वनिवादी व्यंग्यार्थ की प्रधानता को मानते है, परंतु अभिव्यक्ति की उपेक्षा नहीं करते।

अर्थ की प्रकृति के आधार पर संस्कृत विद्वानों ने ध्वनि के 51 भेद किए। यहाँ पर इन सारे भेदों की चर्चा करना असंभव भी है और अनावश्यक भी। निम्नलिखित ध्वनि–भेदों के आधार पर कुछ प्रमुख ध्वनियों की चर्चा की जाएगी।

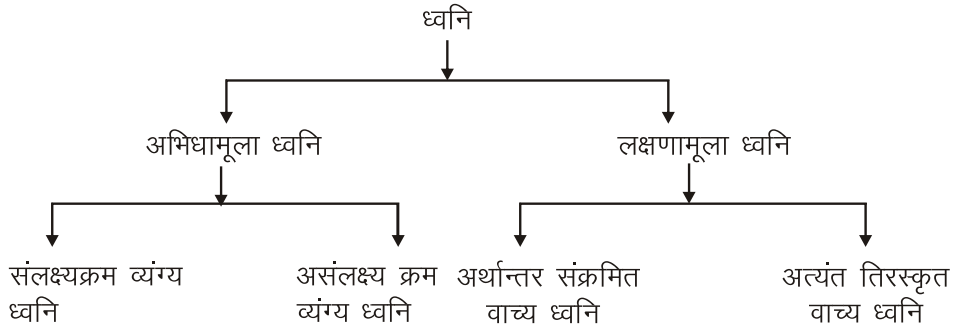

1. **अभिधामूला ध्वनि** :– जहाँ वाच्यार्थ का अस्तित्व होते हुए भी दूसरा अर्थ सीधे द्योतित या प्रकट होता हो, वहाँ अभिधामूला ध्वनि मानी जाती है। इस प्रकार की ध्वनि में व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ (अभिधा) से होकर प्राप्त होता है। इसके दोनों भेद निम्नलिखित हैं–

क. संलक्ष्यक्रम ध्वनि :– जहाँ पर वाच्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ के प्रकट होने का कोई निश्चित क्रम हो, उसे संलक्ष्यक्रम ध्वनि कहते हैं। अलंकार ध्वनि व्यंग्य एवं वस्तु ध्वनि व्यंग्य, ये दोनों संलक्ष्य क्रम ध्वनि के अंदर समाहित हो जाते हैं। इस प्रकार की ध्वनि का एक उदाहरण दीजिए–

''माली आवत देखकर, कलियन करि पुकारि।
फूले–फूले चुनि लई, कालि हमारि बारि''।।

इसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक पहुँचने का एक क्रम बनता है। इसलिए यहाँ संलक्ष्यक्रम ध्वनि है।

ख. अंसलक्ष्यक्रम ध्वनि :– जहाँ वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ तक जाने के क्रम को तुरंत पहचाना न जा सके, वहाँ असलक्ष्यक्रम ध्वनि होती है। इस ध्वनि भेद के अंतर्गत रस–सिद्धांत हो जाता है इसका एक उदाहरण निम्नलिखित है–

''अरे! घी तो यहाँ रुपए का दो छटांक मिलता है।''

2. लक्षणामूला ध्वनि :– जहाँ पर व्यंग्यार्थ की प्रतीति लक्षणार्थ से होकर मिलती हो, वहाँ लक्षणामूलक ध्वनि होती है। इसे अविवक्षित वाच्य ध्वनि भी कहते हैं।

क. अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि :– जहाँ पर व्यंग्यार्थ, लक्षणार्थ के सहारे

मुख्यार्थ से एकदम विलग द्योतित होता हो, वहाँ पर अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि होगी। हिंदी विद्वान आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'रस मीमांसा' में इस प्रकार की ध्वनि का निम्न उदाहरण दिया है।

''आम आम है, इमली इमली ही है''।

यहाँ पर दूसरे आम एवं इमली शब्द वस्तु आम और इमली के द्योतक न होकर उनके गुणों को अभिप्रेरित करते है। इसलिए इन शब्दों के इस अंतर को देखते हुए यहाँ अर्थांतर संक्रमित वाच्य ध्वनि होगी। इस ध्वनि में मुख्यार्थ बाधित होता है, परंतु यह ध्वनि मुख्यार्थवादी ही होती है।

ख. अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि :– जहाँ वाच्यार्थ तिरस्कृत या उपेक्षित हो एवं व्यंग्यार्थ एकदम विपरीत अर्थ दे जाता है, वहाँ पर अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि होती है। जैसे– 'अंधा–दर्पण' शब्द प्रयोग में दर्पण के लिए अंधतत्व का अर्थ मायने नहीं रखता अर्थात् तिरस्कृत है। यहाँ पर दर्पण के अंधा होने का व्यंग्यार्थ उसके मैला हो जाने से है। आचार्य शुक्ल 'रस मीमांसा' में एक और दिलचस्प उदाहरण इस प्रकार की ध्वनि का देते है– ''क्या भरा हुआ सरोवर है कि लोग लोट–लोटकर नहा रहे हैं''। यहाँ पर सरोवर के भरे होने का अर्थ छोड़कर एकदम विपरीत अर्थ सूखा हुआ लगाया जाता है।

ध्वनिवादियों का महत्व इस बात के लिए है कि उन्होंने शब्द की एक सर्वथा नई तीसरी शक्ति की खोज की। हालाँकि यह सिद्धांत संस्कृत काव्यशास्त्र में बहुप्रचलित एवं ग्राह्य सिद्धांत बन गया, परंतु आनंदवर्धन के जीवनकाल में या उसके पश्चात भी ध्वनि सिद्धांत के विरोधी उत्पन्न हो गए। ध्वनि को भटट्नायक ने भावकत्व व्यापार में अंतर्भूत किया, धनिक ने तात्पयर्थि वृत्ति में, कुंतक ने वक्रोक्ति में और महिमभट्ट ने अनुमान में। इनमें से भट्टनायक का खंडन अभिनवगुप्त ने किया और धनिक तथा मम्मट ने। ध्वनि सिद्धांत के विरोधियों को मुख्यतः तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

1. अभाववादी 2. अभिधावादी 3. लक्षणावादी

जो ध्वनि का अस्तित्व ही स्वीकार नहीं करते ऐसे ध्वनि सिद्धांत के विरोधी अभाववादी कहे जाते हैं। काव्य में ये गुण अलंकार, रीति आदि का अस्तित्व तो मानते हैं, लेकिन इनके परे ध्वनि नामक कोई धर्म नहीं स्वीकारते। अलंकारों में ही ये ध्वनि का अस्तित्व मानते हैं। वामन और भट्टनायक ने काव्य लक्षणा के भीतर ही ध्वनि को माना।

ध्वनि के संबंध में एक प्रबल युक्ति और है कि क्या ध्वनि को समासोक्ति, अप्रस्तुत, प्रशंसा आदि अलंकारों से समन्वित नहीं किया जा सकता? इस पक्ष में आनंदवर्धनाचार्य ने इन अलंकारों से ध्वनि की तुलना करते हुए स्पष्ट किया कि एक तो इसमें ध्वनि की भाँति व्यंग्यार्थ को प्रमुखता प्राप्त नहीं होती, दूसरे ध्वनि का क्षेत्र

अलंकारों से अधिक व्यापक है। अतः ध्वनि में भले ही अलंकारों का समन्वय किया जा सके, किंतु अलंकारों में ध्वनि को अंतर्भूत नहीं किया जा सकता। परंतु उनका यह विचार संकीर्ण है, क्योंकि अन्योक्ति अलंकार में व्यंग्योक्ति की भाँति दो अर्थ होते हैं तथा व्यंग्यार्थ की वाच्यार्थ पर प्रधानता भी होती है। जैसे–

''नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली–अली ही सौं बंध्यौ, आगैं कौन हवाल।।'

उपर्युक्त दोहे से स्पष्ट है कि अलंकारवादियों की दृष्टि अन्योक्ति है तो ध्वनिवादियों की दृष्टि से व्यंग्योक्ति या ध्वनि है। अतः यह स्पष्ट है कि ध्वनि भी एक प्रकार का अलंकार ही है। इस आक्षेप पर विचार करते हुए आनंदवर्धन ने कुछ अंलकारों में तो ध्वनि के अस्तित्व को माना और उसे ही ध्वनिकाव्य कहा। इनके अनुसार संपूर्ण ध्वनि का अंतर्भाव काव्य लक्षणा या अलंकार में नहीं किया जा सकता। ध्वनि सिद्धांत के जो विरोधी ध्वनि से ज्यादा अभिधा के महत्व को स्वीकार करते हैं, उन्हें अभिधावादी कहते हैं। अभिधावादियों के मत में अभिधा शक्ति का व्यापार उस प्रकार दीर्घ–दीर्घतर है, जिस प्रकार किसी बलान पुरुष द्वारा छोड़े हुए बाण का। जिस प्रकार वह बाण कवचभेदन, उरोविदारण और प्राणहरण तीनों का कारण बनता है, उसी प्रकार अभिधा शक्ति का दीर्घ–दीर्घतर व्यापार भी वाच्य और व्यंग्य दोनों अर्थो का बोध करने में समर्थ है। लक्षणावादियों के अनुसार जिस प्रकार मुख्यार्थ की संगति न बैठने पर उपचार से लक्ष्यार्थ का ग्रहण होता है ठीक उसी प्रकार वाच्यार्थ की संगति बैठने पर ही प्रतीयमान अर्थ की प्रतीति होती है, अतः क्यों न प्रतीयमान अर्थ को लक्ष्यार्थ का एक भेद मान लिया जाए। उनके अनुसार वाच्यार्थ सदा लक्षणा के ही माध्यम से प्राप्त नहीं होता, उसकी उपलब्धि सीधे वाच्यार्थ से भी हो सकती है। ध्वनि के सबसे बड़े विरोधी आचार्य महिमभट्ट ने अपने ग्रंथ 'व्यक्तिविवेक' में लिखा कि ध्वनि वस्तुतः अनुमान से पृथक नहीं होती। उन्होंने ध्वनि के स्थान पर काव्य भित्ति नाम प्रस्तावित किया। उनके विचार से अर्थ के भी केवल दो प्रकार हैं– वाच्य तथा अनुमेय। परंतु ध्वनि को चाहे ध्वनि कहा जाए या काव्यानुभूति, इसमें कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। ध्वनि के संबंध में यह भी एक विवाद प्रचलित है कि काव्यत्व का अधिवास उसके किस पक्ष में है। वाच्यार्थ में या व्यंग्यार्थ में। इस संबंध में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा कि ''वाच्यार्थ के अयोग्य एवं अनुपयुक्त होने पर योग्य और उपपन्न अर्थ प्राप्त करने के लिए लक्षणा और व्यंजना का सहारा लिया जाता है। अब प्रश्न यह है कि काव्य की रमणीयता किसमें रहती है– वाच्यार्थ में या लक्ष्यार्थ में या व्यंग्यार्थ में? इसका उत्तर आचार्य शुक्ल वाच्यार्थ में देते हैं। उनके अनुसार चाहे वह योग्य हो या उपयुक्त हो अथवा अयोग्य हो या अनुपयुक्त, वाच्यार्थ ही रमणीयता का स्त्रोत होता है। उन्होंने 'साकेत' के एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया–

''आप अवधि बन सकूँ कहीं, तो क्या कुछ देर लगाऊँ।
मैं अपने को आप मिटाकर, जाकर उनको लाऊँ।।''

इस पंक्ति में वाच्यार्थ बहुत अनुपयुक्त, अव्यवहृत तथा बुद्धि को सर्वथा अग्राह्य है। उर्मिला आप ही मिट जाएगी तब अपने प्रियतम लक्ष्मण को वन से क्या लाएगी। पर सारी रमणीयता, सारा रस इसी अव्यवहृत और बुद्धि को अग्राह्य वाच्यार्थ में ही है। इस योग्य और बुद्धि ग्राह्य व्यंग्यार्थ में नहीं है कि उर्मिला को अत्यंत औत्सुक्य है। इससे स्पष्ट है कि वाच्यार्थ ही काव्य होता है। व्यंग्यार्थ या लक्ष्यार्थ नहीं। पं0. रामदहिन मिश्र ने आचार्य शुक्ल के इस मत का खंडन करते हुए शास्त्रीय आधार पर काव्यत्व का अधिवास व्यंग्यार्थ में ही सिद्ध किया है। इसी मत का समर्थन करते हुए डॉ. नगेंद्र ने लिखा है कि किसी रसात्मक वाक्य को पढ़कर हमें जो आनंदानुभूति होती है उसके लिए उस वाक्य का कौन सा तत्व उत्तरदायी है? उस वाक्य का वाच्यार्थ जिसमें शब्दार्थगत चमत्कार रहता है अथवा व्यंग्यार्थ जिसमें प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से भाव रमणीयता रहती है? इस युक्ति की वास्तविक रमणीयता का संबंध रतिजन्यव्यग्रता में ही है जो व्यंग्य है। अतः ध्वनि संबंधी इस विवाद के बारे में यह कह सकते हैं कि काव्य का अधिवास तब तक अस्तित्वयुक्त हो सकता है जब तक वाच्यार्थ, व्यंग्यार्थ में समन्वित हो या व्यंग्यार्थ से आवृत्त हो।

वस्तुतः ध्वनि संप्रदाय ने रस को सर्वोच्च स्थान देकर उसके साथ समझौता कर लिया है। परंतु प्रश्न यह उठता है कि रस और ध्वनि में से किसका महत्व अधिक है? क्या ध्वनि इतनी व्यापक है कि रस उसमें समा जाए। हम कह सकते हैं कि रस यदि साध्य है तो काव्य में ध्वनि साधन मात्र है। रस का संबंध काव्य के आधार पर मूल तत्वों से है, जबकि ध्वनि एक अभिव्यक्ति प्रणाली है। यह सत्य है कि वह अभिव्यक्ति प्रणाली, रसानुभूति के लिए सहायक सिद्ध हो, फिर भी उसे आधारभूत तत्वों के समान महत्व नहीं दिया जा सकता। फिर यदि प्रतीयमान अर्थ वाली धारणा को उसके मूल अर्थ में लिया जाए तो कवि को अपनी भाषा ऐसी कहनी पड़ेगी, जहाँ दोहरे अर्थ हों। अंततः यह स्पष्ट है कि ध्वनि संप्रदाय अपने आप में एक पूर्ण सिद्धांत नहीं है। वह रस और अलंकार संप्रदाय को आधार बनाकर आगे बढ़ा है।

ध्वनि संप्रदाय में अन्य संप्रदायों की भाँति कई त्रुटियाँ एवं असंगतियाँ हैं। एक ओर तो ध्वनिकार प्रतीयमान अर्थ को ही काव्य की आत्मा मानते हैं तो दूसरी ओर ध्वनि के पाँच अर्थो में प्रतीयमान अर्थ के अतिरिक्त ध्वनि के अन्य अवयव भी सम्मिलित कर लेते हैं। प्रतीयमान अर्थ की प्रधानता–अप्रधानता और शून्यता के आधार पर ही काव्य को उत्तम, मध्यम और अधम घोषित कर देना भी ध्वनिवादियों का अतिवाद है। यह सत्य है कि प्रतीयमान अर्थ भी चारुत्व व सौंदर्य के हेतुओं में से एक है। यदि एक अन्य हेतु से काव्य में चारुत्व आ जाता है तो काव्य मानने में क्या आपत्ति है? हम

निस्संकोच कह सकते हैं कि काव्य की आत्मा वह चारुत्व व सौंदर्य ही है, जिसका उल्लेख बार–बार ध्वन्यालोककार द्वारा हुआ है तथा ध्वनि, अलंकार, रीति ये सब उसी चारुत्व की उपलब्धि के साधन मात्र हैं। अंत में हम कह सकते हैं कि ध्वनि का अस्तित्व काव्य के साधनों (रस, अलंकार, रीति, आदि) में महत्वपूर्ण है।

हालाँकि ऊपर की पंक्तियों में आज के युग में ध्वनि सिद्धांत की प्रासंगिकता की प्रकारांतर से चर्चा कर दी गई है। परंतु अंत में इतना कहना आवश्यक है कि जब तक शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना का अस्तित्व रहेगा तब तक ध्वनि सिद्धांत महत्वपूर्ण बना रहेगा। भले ही इसका नाम बदल जाए। यह इतना सार्वभौम सिद्धांत न रह जाए, काव्य की आत्मा न कहलाए। परंतु प्रासंगिक सर्वदा रहेगा, क्योंकि यह भी काव्य के सौंदर्य या चारुत्व का एक साधन या साध्य है। अतः जब तक काव्य–सौंदर्य की माँग रहेगी तब तक ध्वनि सिद्धांत को भुलाया नहीं जा सकता। ध्वनि सिद्धांत बाह्यपरक नहीं एक अंतर्वर्ती भावपरक सिद्धांत है। अतः आज की कविता में जहाँ कम कहकर ज्यादा भाव का बोध कराना हो, इस सिद्धांत का महत्व और बढ़ जाता है।

सहायक ग्रंथः–

1. संस्कृत काव्यशास्त्र – डॉ. एस.के.डे
2. भारतीय काव्यशास्त्र– डॉ. सत्यदेव चौधरी
3. आलोचना के तीन आयाम – डा0. रामचंद्र तिवारी
4. संस्कृत आलोचना – डॉ. बलदेव उपाध्याय
5. भारतीय काव्यशास्त्र की रूपरेखा– डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह।

संपर्क

सहायक आचार्य–हिंदी, धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़–202001, उत्तरप्रदेश
फोन–8882228473, ई मेल–madhyam999@gmail.com

❑❑❑

गोंड जनजातिः परिचय

सतिश शामराव मिराशे

विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित, संप्रति–बलीराम पाटील कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय में सहायक प्राध्यापक के पद पर कार्यरत। आदिवासी साहित्य पर विशेष अध्ययन ।

गजानन सुरेश वानखेड़े

'हिंदी साहित्य अधुनातन आयाम' और 'हिंदी लेखन कौशल विकास और प्रयोजनमूलकता' पुस्तक का संपादन। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में शोध आलेख प्रकाशित। संप्रति– 'उषा प्रियंवदा और सानिया के उपन्यास साहित्य में बदलती नारी प्रतिमाओं का तुलनात्मक अध्ययन' पर शोधरत ।

दुनिया के हर कोने में आदिवासी जनजातियाँ बसी हुई हैं। भारत में भी बहुत बड़ी संख्या में आदिवासी जनजातियाँ हैं। संपूर्ण भारत में वह फैली हुई हैं। उनकी संख्या करीब–करीब 414 के ऊपर है। महाराष्ट्र सरकार द्वारा घोषित 47 जनजातियाँ थीं। वह अब घटकर 45 रह गई हैं, जिनमें गोंड, अंध, कोलाम, भील, ठाकर, कोरकू, पारधी, वारली, कातकरी आदि प्रमुख हैं। विकास की धारा से कोसों दूर जंगलों एवं पर्वतों में अपनी भाषा, प्रथा–परंपरा एवं संस्कृति का निर्वाह करनेवाले जो समुदाय हैं उन्हें आदिवासी कहा जाता है। आजकल 'आदिपुत्र', 'भारत माता की आदिसंतान' जैसे नामों का भी प्रयोग किया जा रहा है। संविधान द्वारा आदिवासियों को अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया है। ''आदिवासी शब्द उन समुदायों के लिए प्रयुक्त किया जाता है जिन्हें भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 342 के अधीन अनुसूचित जनजातियों के तौर पर निर्दिष्ट किया है।''[1] ऐसे ही महाराष्ट्र की 'गोंड' जनजाति भारत की सर्वाधिक जनसंख्या वाली मध्य भारत का विशाल जनजातीय समुदाय है। यह जनजाति महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, तेलंगाना, आंध्रप्रदेश, कनार्टक, पश्चिम बंगाल, गुजरात एवं उत्तर प्रदेश में निवास करती है। दुनिया में शायद ही कोई अन्य 'गोंडों' जनजाति जैसी प्राचीन गौरवमय इतिहासवाली एवं बदलते हुए समय में सभी परिवर्तनों के साथ–साथ अपनी जनजातीय विशेषताएँ संभालकर रखे हुए हैं।

'गोंड' शब्द की शाब्दिक उत्पत्ति के साथ उनकी जीवन शैली, पहनावा और पूजा की पद्धतियों को आधार बनाकर उत्पत्ति के बारे में समाजशास्त्रियों, इतिहासकारों द्वारा समय–समय पर विचार एवं मंथन किया जाता रहा है। 'गोंड' स्वयं को 'कोयतूर' या 'कोई' कहते हैं। 'चांदागढ़ का इतिहास' के लेखक अ.ज. राजूरकर ने 'गोंड' नाम तेलगु लोगों द्वारा दिया गया है, ऐसा मत व्यक्त किया है। तेलुगु भाषा के 'कोंड' या कोंडा से 'गोंड' शब्द बना है ऐसा उन्होंने कहा, जिसका अर्थ पर्वत या

पर्वतीय मालाओं के अंचलों में रहनेवाले लोग होते हैं। 'गोंड' कवि सुरू सोन्यादास ने 'गोंड' शब्द की व्याख्या कुछ इस प्रकार की है,

''गोंड नाम है वीर का,
नर में नर जो होय।
जो प्रतिपालै अन्न दे
गोंड कहावे सोय।'' [2]

डॉ. शैलेजा देवगावकर ने भी 'गोंड' शब्द कोंड से बना हुआ है ऐसा कहा है। 'गोंड' शब्द की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में विभिन्न मत हैं फिर भी 'गोंड' शब्द कोंड का हिंदी रूपांतर है। डॉ. एस.डी. मौर्य भी अपनी किताब 'सामाजिक भूगोल' में 'गोंड' शब्द के बारे में लिखते हैं कि, 'गोंड' के लिए कोयतोर शब्द का प्रयोग किया जाता है। हिसलप के अनुसार 'गोंड' या गुंड शब्द कोंड या कुंड का विकृत रूप है। कोंड शब्द तेलुगु के कोंडा से निकला है जिसका अर्थ पर्वत होता है। इस प्रकार 'गोंड' शब्द को पर्वत में रहनेवाले का पर्यायवाची माना जाता है।''[3] इस तरह से 'गोंड' शब्द की उत्पत्ति हुई, यह मानी जा सकती है।

'गोंड' समुदाय (जनजाति) की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं जिनमें रूढ़ि, प्रथा, परंपरा, रीतिरिवाज, भाषा, धर्म, संस्कृति, रहन–सहन, खान–पान, आचार–विचार, देवी–देवता, शादी–ब्याह, गोंदना, नृत्य–संगीत, लोकगीत आदि हिंदु धर्म से सर्वथा भिन्न दिखाई देती हैं। इन सब विशेषताओं को हम निम्न मुद्दों के आधार पर देख सकते हैं।

ऐतिहासिक संदर्भः

आदिवासी समुदाय भारतभूमि के सबसे प्राचीन समुदाय है। यह जनजाति जल, जंगल और जमीन की धनी है। वर्तमान मध्यप्रदेश के बड़े से हिस्से पर गोंडों ने अपना साम्राज्य स्थापित किया था।

गोंडों के सबसे प्रतापी राजा संग्राम शाह और दलपत शाह और रानी दुर्गावती आदि महान शासक इस समुदाय में हुए हैं। 15वीं से 17वीं शताब्दी तक गोंडवाना में अनेक राजवंशो ने सफलतापूर्वक शासन किया था। 1857 में ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ विद्रोह करनेवाले बाबूराव शेडमाके 'गोंड समुदाय' से ही थे।

रहन–सहन एवं खानपानः

गोंड समुदाय के लोग बहुत सीधे–साधे होते हैं। साथ ही जंगलों के आस–पास रहने के कारण इनके घर मिट्टी और घाँस–फूस के बने होते हैं। शिकार करना, कंद, मूल, फूल, महुआ के फूल, फल, मछलियाँ पकड़कर खाना मूल आहार है। ये आज आम लोगों की तरह खेती करने लगे हैं और उससे उपजा हुआ अनाज गेहूँ, ज्वार, चावल, अरहर की दाल, लाखोरी दाल उनके भोजन में मुख्य रूप से देखने को मिलते हैं।

भाषाः

'गोंड' समुदाय द्वारा बोली जानेवाली भाषा को 'गोंडी भाषा' कहा जाता है। न्यायमूर्ति रानाडे, कल्डवेल और फादर हेरास इन विद्वानों ने गोंडी को प्राचीन तमिल कहा है। (Proto Dravidian language) इससे गोंडी भाषा द्रविड़ समूह की भाषाओं की जननी कहे तो कुछ गलत न होगा। प्रसिद्ध भाषाशास्त्री डॉ. ग्रियर्सन ने भी अपने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' ग्रंथ में लिखा है कि, 'दी गोंडी इज दी मदर ऑफ तमिल, तेलुगु, कन्नड एंड मलयालम' अर्थात् गोंडी तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम की जननी है। साथ ही यह प्राचीन काल में गोंडवन साम्राज्य की राजभाषा थी जिससे इसकी प्राचीनता का पता चलता है। साथ ही इस भाषा की अपनी लिपि होने के प्रमाण भी आज मिल चुके हैं। मोहेनजोदारो, हड़प्पा में मिली चित्रलिपि गोंडी लिपि ही है ऐसा व्यंकटेश आत्राम ने भी कहा है। डॉ. विनायक तुमराम अपनी किताब 'आदिवासी और उनका निसर्ग धर्म' में लिखते हैं कि, ''अलग–अलग आदिवासी समुदायों की भिन्न–भिन्न बोली भाषाएँ अस्तित्व में हैं। संताली भाषा की ओलचिकी लिपि और गोंडी भाषा की गोंडी लिपि आज उपलब्ध है। मोहनजोदारो, हड़प्पा में प्राप्त चित्रलिपि से आदिवासी समुदायों की लिपि होने के प्रमाण उपलब्ध हुए है।''[4] डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर, महात्मा गांधी और भारतीय भाषा आयोग, साथ ही कोठारी आयोग ने 1964–66 और अब नई शिक्षा नीति 2020 में प्राथमिक शिक्षा मातृभाषा में हो, ऐसा कहा गया है। इसकी शुरूआत भी महाराष्ट्र में विदर्भ से की गई थी लेकिन उसको तो उतनी सफलता नहीं मिल पाई जितनी उसको मिलनी चाहिए थी।

धर्मः

विश्व में क्रिश्चन, इसलाम, हिंदू, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिख प्रमुख धर्म हैं। आदिवासी निसर्ग पूजक, प्रकृति पूजक होते हैं और प्रकृति का नियमानुसार चलना ही मानव और पशु–पक्षियों का धर्म है। आदिवासियों का भी स्वतंत्र धर्माचरण है जिसका मूल आधार संस्कृति है। 'गोंड समुदाय' भी इससे अछूता नहीं है, वह जिस धार्मिक मार्ग के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करता है, उसे गोंडी धर्म अथवा कोयतूर, कोया धर्म कहा जाता है। पहांदी कुपार लिंगो इस धर्म के संस्थापक माने जाते हैं। इस धर्म का केंद्र स्थल दर्रेकसा जि. गोंदिया माना जाता है। अहिंसा सिंद्धात इस धर्म का आधार तत्व है। परंतु लिंगो ने प्राकृतिक नियमों को प्रमाण मानकर मांसभक्षण पूर्णतः वर्जित नहीं माना है। इनके अनुसार जीवों के मन को दुखाना नहीं चाहिए परंतु हिंसक प्राणियों को बचाना भी नहीं चाहिए ऐसा उनका धर्म कहता है।

देवी–देवताः

गोंड समुदाय के लोग प्राचीन काल से ही फडापेन शक्ति की उपासना करते हैं। इस शक्ति को अलग–अलग नामों से पहचाना जाता है, जैसे फडापेन, सजोर पेन, बड़े

पेन, पेरसा पेन, हजोर पेन, कोरूक पेन, मारांग बुरू पेन, सिंगा बोंगा पेन, भिलोटा पेन आदि नामों से जाना जाता है। इनका निवास स्थान पहाड़ों की चोटी, नदियों के किनारे या एकांत स्थल में सरई या महुए के पेड़ के नीचे होता है। इनके अलावा काली कंकाली, शंभु जिसे (महादेव) भी कहते हैं, भिमाल पेन (वर्षा करनेवाली), रावण, मेघनाद, वाघाई, शितला (माता) दाई पूजा (रोगमुक्त करनेवाली माता) सूरज (पोत्तू) चाँद (नलेंज) भुजंग (नाग) जंगो और लिंगों पूजा, हीरासुका (भुमकाल) इन सबको 'गोंड समुदाय' में भगवान मानकर इनकी पूजा की जाती है। इनके अलावा कछुआ, गरूड़ पक्षी, बाघ, सारस, तोता, काक, रावेनपिट्टे इनकी भी पूजा की जाती है। साथ ही मानकोदेवी की पूजा की जाती है। गाँव को संभालनेवाला और पुत्र प्राप्ति के लिए मारूती (हनुमान) की पूजा की जाती है। इनके अलावा गोंड समुदाय में हर्रे कुमरे, मडावी गोत्र के लोग बकरे को अपना कुल देवता मानकर उसकी पूजा करते हैं। ज्यादातर आदिवासी समुदाय के लोग भगवान को प्रसन्न करने के लिए नैवेद्य के रूप में बकरे की बली चढ़ाते हैं। इनके अलावा प्रकृति में पाए जाने वाले बहुत सारे वृक्ष जैसे शाल वृक्ष, वट, बेल, महुआ, बेर, शमा, बांबू, नीम का पेड़, पर्वत, पक्षी इन सबकी पूजा 'गोंड समुदाय' में की जाती है।

विवाह पद्धतिः

'गोंड समुदाय' में एक से लेकर बारह सगा होते हैं। उंदीवेन, रंडवेन, मूंदवेन, नालवेन, सैवेन, सार्वेन, येर्वेन, अर्वेन, नर्वेन, पदवेन, पार्वूद और पारंड (पहले तीन जंगो रायताड चार स्वयंम और शेष पाँच भुमका के नाम) इसमें सम सगा, विषम सगा, विषम गोत्र और विषम कुलचिह्न धारक सगा के इन सगाओं में वैवाहिक संबंध स्थापित किए जाते हैं। सम–विषम सगादेव नियम के अनुसार ही यह विवाह तय होते हैं। गोंड समुदाय में विवाह योग्य आयु के लड़के की बीस और लड़की की अठारह वर्ष बताई गई है। रिश्ता जोड़ने हेतु दोनों पक्षों में रोटी स्वीकारने पर आगे की प्रक्रिया शुरू होती है। विवाह तिथि निश्चित करने के लिए गाँव के पंच और वर तथा वधु के माता–पिता तथा भूमका मिलकर तय करते हैं। गोंड समुदाय में साल वृक्ष का अनन्य महत्व है। इस वृक्ष के बिना उसका मंडप ही तैयार नहीं होता। विवाह संबंधी एक गीत में कहा भी गया है कि,

''सालेका डेरीरे डेरी जामूव का साया।।
होने का कोने वो मेरा मंडवा सजायो।''[5]

विवाह के समय घर के सामने पांडाल होता है और वह साल के वृक्ष के पत्तों से बनाया जाता है। भुमका द्वारा वर वधु की लग्न गाँठ (मळमी गट्टी बाँधी जाती है और (पेरसा पेन) शक्ति पीठ मुंडा (शाल वृक्ष का मुंडा) को दाएँ से बाएँ फेरे लेकर विवाह संपन्न किया जाता है। इसके बाद भुमका वर–वधु को सात प्रतिज्ञाएँ दिलवाता

है जो कि मोतीरावण कंगाली की किताब में भी बताई गई है, वह इस प्रकार है–

1. ''अमोट पेरसा पेनतुन शाखाते इरसी कवयता कुटमार जीवा उचिहकोम।
2. अमोट उंदीमुंदीतुन सानालवेरी हिले सुटे कीकोम।
3. अमोट सगा नेंगताल ताकीकोम।
4. आमेट मावोर पंडताल यायाल बाबोना सेवा कीकोम।
5. अमोट सगा पुनेमतुन पोयसीकोम
6. अमोट सगा बिडार ता सेवा कीकोम
7. अमोट सगा पोयपाटाता सेवा कीकोम''[6]

इस तरह वर–वधू द्वारा ली जाती हैं प्रतिज्ञाएँ जिसका निम्न अर्थ हम बता सकते हैं कि हम पेरसापेन को साक्षी मानकर सुंदर–सजीला सांसारिक जीवन बसाएँगे, हम एक–दूसरे को मरते दम तक नहीं त्यागेंगे, हम सगा नियमावली के अनुसार चलेंगे, हम हमारे बूढ़े माता–पिता की सेवा करेंगे, हम सगा पुनेम का विस्तार करेंगे, हम सगा गणों के राजपाट की सेवा करेंगे। ये प्रतिज्ञाएँ लेने के बाद विवाह संपन्न हो जाता है।

पंचायत व्यवस्थाः

'गोंड समुदाय' में उनकी खुद की अपनी पंचायत व्यवस्था रहती है। वे गाँव के झगड़े गाँव में ही सुलझाने निपटाने का प्रयास करते हैं, साथ ही शादी ब्याह हो या अन्य कार्यक्रम हो इन सबकी पूर्वसूचना इस पंचायत के माध्यम से सब लोगों तक पहुँचाई जाती है। यह पंचायत सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक आदि से संबंधित सभी मामले गाँव में ही निपटाने का प्रयास करते हैं। पंचायत तीन प्रकार के होते हैं; गाँव पंचायत, मुंडेदार पंचायत, गढा पंचायत। उक्त तीनों पंचायतों की नियुक्ति 'गोंड समुदाय' के लोग करते हैं। पंचों के द्वारा जो भी न्याय किया जाता है, उसका सभी को मान रखकर परिपालन करना पड़ता है।

गोंडी संस्कृति, नृत्य, गीत, संगीतः

'गोंडी समुदाय' अपने रीति–रीवाज, प्रथा परंपराओं से बँधा हुआ है, जन्म से लेकर मृत्यु तक वह कई तरह की परंपराओं को निभाता है। यही कारण है कि, वह अन्य संस्कृतियों से अपनी अलग पहचान बनाए हुए है। इनकी संस्कृति की झलक हमें शादी समारोहों, अलग–अलग कार्यक्रमों, गीतों के माध्यम से देखने को मिलती है। उनका जीवन नृत्य–गान से ओतप्रोत होता है। पहांदी पारी कुपार लिंगों आदय संगीतज्ञ हैं। वे एक साथ अठारह वाद्य बजाया करते थे। सभी सामुदायिक और धार्मिक कार्यो में नृत्य आवश्यक होता है। इसके बिना कार्यक्रम नीरस बन जाता है। गोंडी वाद्यों की धुन से ही पैर थिरकने लगते हैं और हाथ लहराने लगते हैं। मनुष्य अपनी सारी थकान भूलकर नृत्य करने लगता है। कीकरी, ढुसीर, डुमिर, गोगा, तुडूम या तुडवूडी, ढोल, मांदर, टिंडोरी, घुंगरू या घंटी, झनेरा या मंजरी आदि इनके वाद्य

हैं। करमा यह गोंडों का मुख्य नृत्य है। सिर पर मोर पँख वाली टोपी (कलगी) और हाथ में डंडा या फारसा इस नृत्य का मुख्य अस्त्र होता है।

गोटूल (घोटूल)

हर समुदाय में बच्चों की शिक्षा एक महत्वपूर्ण विषय होता है। लेकिन आजकल शिक्षा का अर्थ केवल किताबी शिक्षा से लिया जाता है। लेकिन आदिवासी समुदायों में शिक्षा का अर्थ व्यापक लिया गया है। उनके अनुसार शिक्षा सिर्फ आजीविका चलाने या नौकरी करने के लिए नहीं बल्कि जीवन को स्वस्थ, सुंदर और संतोषदायी बनानेवाली है। यह शिक्षा देने का माध्यम था गोटूल। 'गोटूल' एक संयुक्त गोंडी शब्द है जो गो + टूल इन दो शब्दों के मेल से बना हुआ है। गो याने दुःख एवं क्लेश निवारक शक्ति याने विद्या और टूल यानी स्थल, इस तरह गोटूल यानी विद्या देनेवाला स्थल हम कह सकते हैं। मिलिंद बोकिल अपनी किताब 'कहानी मेंढा गाँव' में गोटूल की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि, ''गोटूल यानी अच्छे नागरिक गढ़नेवाली पाठशाला''[7] अर्थात् गोटूल यानी मानव मन, शरीर तथा बुद्धि का पूर्ण विकास। इस गोटूल में दस–ग्यारह से लेकर बीस–पच्चीस वर्ष तक के अविवाहित लड़के तथा लड़कियाँ शाम को इकट्ठा होते हैं। विवाहित लोगों तथा शिशुओं का वहाँ पर प्रवेश निषिद्ध है। गोटूल का सारा प्रबंध कुँवारे युवक–युवतियों द्वारा ही किया जाता है। दोनों समूहों के एक–एक नेता नियुक्त किए जाते हैं। 'गोटूल' में लड़के को चेलीक और लड़की को मोटयारी कहा जाता है। 'गोटूल' में लड़के–लड़कियाँ साथ रहते हैं। इसीलिए उनमें शारीरिक संबंध स्थापित होने की संभावनाओं को नकारा नहीं जा सकता है। ऐसा हुआ भी तो उनका विधिवत तरीके से विवाह किया जाता है। यहाँ पर लड़के और लड़कियों को अपना जीवन साथी चुनने का पूर्ण अधिकार है। लिंगभाव समानता का यह दृष्टिकोण ही 'गोटूल' की बुनियाद में है। इस तरह मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक विकास के साथ सामाजिक, सांस्कृतिक और पुनेमी मूल्यों (गोंडी मूल्यों) का पाठ पढ़ाकर संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास का साध्य इस 'गोटूल' में किया जाता है।

इस तरह 'गोंड समुदाय' की धर्म, भाषा, रीति रिवाज, संस्कृति, संगीत आदि का परिचय इस शोध आलेख में दर्शाने का एक छोटा–सा प्रयास किया गया है। 'गोंड समुदाय' में अधिकतर स्वतंत्र रहने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। साथ ही वे अपनी संस्कृति और परंपराओं को साथ लेकर चलते हुए हमें दिखाई देते हैं।

संदर्भ सूची–

1. (संपा) गुप्ता रमणिका, (छठा संस्करण 2019), आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृ. क्र. 29

2. आत्राम व्यंकटेश, (द्वितीय संस्करण 2007) गोंडी संस्कृति चे संदर्भ] सुधीर प्रकाशन, वर्धा, पृ.क्र. 107

3. कंगाली चंद्रलेखा तिरूमाय, (द्वितीय संस्करण 2011) गोंडवाना जीव जगत की उत्पत्ति, तिरूमाय चंद्रलेखा कंगाली, जयतला रोड़, नागपुर, (प्रस्तावना से)
4. तुमराम विनायक (2016), आदिवासी और उनका निसर्ग धर्म, सुधीर प्रकाशन, वर्धा, पृ. क्र 15
5. आत्राम व्यंकटेश, (द्वितीय संस्करण 2007) गोंडी संस्कृति चे संदर्भ, सुधीर प्रकाशन, वर्धा, पृ. क्र. 128
6. कंगाली मोतीराम, (चतुर्थ संस्करण 2011) पारी कुपार लिंगो गोंडी पुनेम दर्शन, चंद्रलेखा कंगाली, नागपुर, पृ. क्र. 274
7. बोकिल मिलिंद, अनुवाद चोलकर पराग, (पहला संस्करण 2018) कहानी मेंढा गाँव की, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, नई दिल्ली, पृ.क्र. 47

संपर्क

गजानन सुरेश वानखेड़े–बलीराम पाटील कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, किनवट,महाराष्ट्र–431811फोन–9921264654, ई मेल–wankhede222@gmail.com

संपर्क

सतिश शामराव मिराशे– मु.पोः दहेगाँव, तहसील–किनवट, जि–नांदेड, महाराष्ट्र–431804, फोन–9011168606, ई मेल–satishmirashe1994@gmail.com

❑❑❑

भाषाई समस्या से जूझते प्रवासी भारतीय (अमरीकी हिंदी कहानियों के संदर्भ में)

प्रकाश चंद बैरवा

'सुधा ओम ढींगरा का साहित्य' तथा 'प्रवासी स्त्री लेखनः विमर्श के विविध आयाम' नामक दो पुस्तकों का संपादन। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं व पुस्तकों में आलेख प्रकाशित। वर्तमान में 'अमेरिकी प्रवासी हिंदी कहानियों में जीवन–संघर्ष' विषय पर शोधरत।

हिंदी मात्र भाषा ही नहीं, संस्कार भी है। शताब्दियों से हिंदी का संस्कार होता रहा है और अपने उदारवादी स्वभाव के कारण वह भारत ही नहीं अपितु भारतेतर देशों में भी बोली और समझी जाती है। क्योंकि ईसा पूर्व से ही भारतीय विभिन्न कारणों से भारत से बाहर विश्व के अन्य देशों में जाते रहे हैं और यह प्रक्रिया आज भी निरंतर जारी है। वर्तमान समय में भारतीय अपने बेहतर भविष्य (प्रमुखतः आर्थिक उन्नति) की कामना लिए पश्चिमी देशों की ओर अधिक अग्रसर दिखाई पड़ते हैं। इस प्रक्रिया में अपनी जन्मभूमि को छोड़कर किसी मेजबान देश में जाने वाले व्यक्ति को प्रवासी की संज्ञा दी जाती है। प्रवासी भारतीय आज विश्व के लगभग सभी देशों में फैले हुए हैं। उन्होंने विदेशों को अपनी कर्मभूमि बनाया है और विदेशों में रहते हुए अपनी अस्मिता को जीवित रखने तथा स्वयं को मातृभूमि से जोड़े रखने हेतु अपनी मूल भाषा अर्थात् हिंदी में सृजनात्मक लेखन किया है, जिसे प्रवासी साहित्य कहा जाता है। मूलतः प्रवासी साहित्य, प्रवास में रह रहे भारतीयों के जीवनानुभवों का लेखा–जोखा है; जिसमें प्रवासी भारतीयों ने अपने जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हुए अपने संघर्षों को बयाँ किया है।

भारत से अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने हेतु पश्चिमी देशों में गए भारतीयों के लिए वहाँ की परिस्थितियाँ कम संघर्षपूर्ण नहीं होती। अपितु सर्वप्रथम उनके सामने जो चुनौती उभरकर आती है, वह है भाषा की समस्या। पश्चिमी देशों में मुख्य रूप से अंग्रेजी भाषा को अधिक महत्व दिया जाता है और यही कारण है कि उन देशों में प्रवासी भारतीयों के सम्मुख यह समस्या उत्पन्न होती है क्योंकि अधिकतर भारतीयों को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान कम ही होता है। इनमें कुछ भारतीय तो ऐसे भी है जो अंग्रेजी भाषा को समझते तो अवश्य है किंतु उसका उचित उच्चारण नहीं कर पाते। यथा अपनी बात को स्पष्ट करने हेतु टूटी–फूटी अंग्रेजी का सहारा लेते हैं। डॉ. रामजी दास सेठी 'महताब' कृत कहानी 'तलाश' में इस समस्या को स्पष्टतः देखा जा सकता

है। कहानी में ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक स्वयं उपस्थित है। वह अपने किसी दोस्त के भरोसे पर जब अमेरिका पहुँचते हैं तो वही दोस्त एयरपोर्ट पर उन्हें लेने नहीं आता। ऐसे में उनके पास अपने दोस्त का पता तो होता है पर जिसे ढूँढने में उन्हें इस समस्या से गुजरना पड़ता है। जब वह उस पते को ढूँढ़ पाने में असमर्थ होते हैं तो ''फिर हिम्मत करके एक लड़के से पूछा टूटी फूटी अंग्रेजी में ही मेरी बात उसको शायद कुछ कम ही समझ आई और बात तो उसकी भी मुझे पूरी नहीं समझ आई। मगर इतना जरूर पता लग गया कि उस लड़के को पते का पता था। और यह भी जानता था कि टैक्सी वाला दस डॉलर से कम नहीं लेगा और नए आदमी को थोड़ी मुश्किल आने का भी अनुमान रहता है।''[1] यहाँ अपने दोस्त के घर जाने हेतु लेखक द्वारा टूटी–फूटी अंग्रेजी का प्रयोग उनके अंग्रेजी भाषा के ज्ञान को दर्शाता है। इन परिस्थितियों में जहाँ एक ओर उनका दोस्त उनसे कन्नी काट जाता है वही एक अनजान व्यक्ति इनसानियत व आपसी सहयोग का परिचय देते हुए उनकी मदद करता है। पश्चिमी देशों में किसी अपने का इस तरह विमुख हो जाना कुछ नया नहीं है, अपितु यह तो उस व्यक्तिवादी समाज की विशेषता है जिसमें व्यक्ति रिश्तों को ज्यादा महत्व नहीं देता।

भाषा की यह समस्या डॉ. शालीग्राम शुक्ला कृत कहानी 'दो बेटियाँ' में भी नीति नामक पात्र के माध्यम से देखने को मिलती है; जिसे अंग्रेजी का ज्ञान बिलकुल न के बराबर ही था किंतु किसी भी देश में रहने के लिए वहाँ की भाषा का ज्ञान होना अति आवश्यक है; जिससे व्यक्ति उस समाज या देश से अपना तालमेल बैठा सके। इसीलिए नीति अपने नए परिवेश यानि कि अमरीका में रहने के लिए अंग्रेजी भाषा को सीखने का प्रयास करती है– ''नीति जिसके जीवन के बीस साल बनारस के पास लमही में बीते थे, यहाँ आई तो अंग्रेजी नहीं के बराबर जानती थी। रात में किसी स्कूल में अन्य विदेशियों के साथ अंग्रेजी सीखने जाती। आते ही अपने सरल और मधुर स्वभाव से उसने अपनी बहन का मन जीत लिया और वह उसे जो कुछ जानती थी सिखाने को तैयार रहती।''[2] ऐसा नहीं है कि भाषा की यह समस्या केवल प्रवासी भारतीयों के सम्मुख ही आती है अपितु अन्य देशों के प्रवासी भी इस समस्या से जूझते नजर आते हैं। जिसे सौमित्र सक्सेना की कहानी 'पहली चीनी की मिठास' में चीन से अमेरिका आए ची के माध्यम से देखा जा सकता है। कहानी में, मिस्टर सक्सेना रिसर्च के दौरान जब ची से बात करते हैं तो वह उनकी इस समस्या से अवगत हो जाते हैं ''पहली बार ची से बात की थी तो वो सारे वक्त, हवा को मुँह में गोल–गोल घुमाते हुए टूटी–फूटी अंग्रेजी के बीच ढ़ेर सारे लब्ज़ चीनी के बोल गया था।''[3] इस प्रकार ची और मिस्टर सक्सेना के बीच हुए वार्तालाप में ची द्वारा टूटी–फूटी अंग्रेजी बोलना तथा उसमें चीनी शब्द भी घोल देना उनके भाषाई ज्ञान को उजागर करता है। ऐसी स्थिति में किसी भी व्यक्ति के लिए प्रवासी व्यक्ति द्वारा बोली गई बात को समझ

पाना बेहद कठिन हो जाता है। इसी कारण, प्रवासी व्यक्ति उस नए परिवेश में स्वयं को ढाल पाने में पूर्णतः समर्थ नहीं हो पाता तथा वहाँ सामंजस्य बैठाने में भी उसे कई प्रकार की समस्याओं से रू–ब–रू होना पड़ता है। अतः प्रवासी व्यक्ति के लिए उस देश की भाषा का ज्ञान होना अति आवश्यक हो जाता है जहाँ वह प्रवास ग्रहण करता है जिससे कि वह उस समाज से उचित तालमेल बैठा सके।

पश्चिमी देशों में प्रवास के दौरान प्रवासी भारतीय अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए संघर्षरत दिखाई पड़ते हैं। क्योंकि वे जिन मूल्यों को पीछे छोड़ आए हैं और जिन्हें वे अब अपना रहे हैं, उनमें समन्वय बैठा पाना उनके लिए आसान नहीं होता। जिससे उनके अस्तित्व के खो जाने का खतरा भी बना रहता है। इस संदर्भ में सुषम बेदी अपने लेख 'प्रवासी साहित्य : एक विकास यात्रा' में लिखती हैं कि ''पहचान का सवाल हर देश के प्रवासी साहित्य में बहुत अहम है। खासकर यूरोप–अमरीका में जहाँ ब्रॉउन रंग का होने की वजह से आप दोयम दरजे के तो हो ही जाते हैं। अपने मूल देश में आप जितने भी अभिजात रहे हों, बाहर आकर सबसे पहले आप खोते हैं तो अपनी पहचान।''[4] यही कारण है कि प्रवासी भारतीय अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए पश्चिम में भी भारतीयता को जीवंत रखना चाहते हैं; जिसका एक माध्यम भाषा है। डॉ. शालिग्राम शुक्ला कृत कहानी 'दो बेटियाँ' में इस स्थिति को सजीव रूप में देखा जा सकता है। कहानी में, नीति की बहन तथा उसके पिता अनंग अमरीका में अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए हिंदी की महती भूमिका मानते हैं। नीति जो हाल ही में अमरीका आई थी उसे अपनी विदेशी बहन की हिंदी तथा उसका प्रेमचंद की कृतियों की जानकारी पर वह हैरान होती है क्योंकि वह स्वयं केवल प्रेमचंद के नाम से ही परिचित थी। दूसरी ओर अनंग स्वयं स्वीकारते हैं कि अमरीका के परिवेश में हिंदी भाषा या कहे कि मुंशी प्रेमचंद की साहित्यिक कृतियों के माध्यम से ही वे अपनी रक्षा कर पाए हैं– ''अनंग कहीं प्रेमचंद की कोई कहानी पचासवीं बार पढ़ते रहते। जिस भारत को वे जानते थे इससे जुड़े रहने का उनका यह तरीका था। ''प्रेमचंद ने मेरी रक्षा की है,'' वे प्रायः कहते। उन्हें पूरा विश्वास था कि बिना प्रेमचंद के वे इस विदेश में अपना अस्तित्व खो चुके होते और उनका मानसिक सर्वनाश हो गया होता।''[5] इस प्रकार भारतेतर देशों में प्रवासी भारतीयों के लिए हिंदी उनकी सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक है। विभिन्न भाषा बोलने वाले भारतीयों के लिए उन देशों में हिंदी उनके लिए एक सामान्य भाषा है और हिंदी में अपने देश के लोगों से बातचीत करने मे वे आत्मीयता का अनुभव करते हैं। यही कारण है कि जहाँ कहीं भी संभव होता है, प्रवासी भारतीय अपनी मातृभाषा में ही बात करना उचित समझते हैं।

भाषा के साथ–साथ सांस्कृतिक आयोजनों में शामिल होकर भी प्रवासी भारतीय अपने बच्चों में अपनी भारतीय संस्कृति को जीवित रखने का प्रयास करते हैं। जिसे उमेश अग्निहोत्री कृत कहानी 'एक काली तस्वीर' में इस प्रकार देखा जा सकता है,

''मेरी कोशिश रहती है कि अमित को इस तरह के सांस्कृतिक आयोजनों में ले जाता रहूँ ताकि उसमें भारतीय संस्कृति की विरासत का एहसास बनाए रख सकूँ।''[6] प्रवासी भारतीयों द्वारा इन सांस्कृतिक आयोजनों में जुड़ने का प्रयोजन यह होता है कि उनके बच्चे भारतीय संस्कृति को इनके माध्यम से जान–समझ सकें और उससे उनका जुड़ाव बना रहे।

वर्तमान समय में भारतीय बेहतर जीवन की लालसा लिए काफी संख्या में पश्चिम जाने लगे हैं और पहले की अपेक्षा अब उन्हें अंग्रेजी भाषा का बोध भी होता है। इसी कारण उन देशों की मेल्टिंग पॉट वाली सभ्यता में वे अब आसानी से घुलने भी लगे हैं। किंतु उनका रंग–रूप, नस्ल, रहन–सहन तथा भारतीयता से जुड़ाव उन्हें पूर्ण रूप से नई संस्कृति में घुलने से बचाए रखता है। इस संदर्भ में सुषम बेदी लिखती हैं कि, ''घर से बाहर चाहे वे जो भी बोलें, पर घर की चारदीवारी में उनकी अपनी भाषाएँ पनपती रहीं। भारतीयों के आपसी मिलने–जुलने वाले दूसरे भारतीयों के बीच भी। चूँकि हमारे परिवार काफी हद तक संश्लिष्ट बने रहते हैं, इसलिए नानी–दादी से बात करने के लिए नई पीढ़ी के बच्चे भी इन भारतीय भाषाओं को बोलते–बोलते ही बड़े होते हैं। हाँ कई परिवार ज्यादा अमरीकीकृत होते हैं, उतना ही हिंदी या दूसरी भाषाओं का प्रयोग वहाँ कम मात्रा में होता है।''[7] स्पष्टतः भारतीय मूल के अमेरिकी परिवार जो हिंदी को लेकर जागरूक हैं उनमें जो बच्चे हैं वो अपने माता–पिता के आग्रह, दबाव या उनके समर्पण के कारण बचपन में थोड़ी बहुत हिंदी सीख लेते हैं, लिख और बोल भी लेते हैं। जिससे वे अपने दादा–दादी या नाना–नानी से तो बात कर ही पाते हैं साथ ही भारतीय संस्कृति से भी उनका जुड़ाव बना रहता है। डॉ. भूदेव शर्मा कृत कहानी 'प्रवासी की माँ' में विनय अपने बचपन में ही दादा–दादी से बात करने के लिए थोड़ी बहुत हिंदी सीख लेता है– ''विनय भोला था, वह मेरे पास आ जाता था। वह मेरे साथ प्रसन्न रहता था, बार–बार खिलखिला उठता था। पानी, दूध आदि शब्द वह बहू के न चाहने पर भी बोलने लगा था। और कितनी ही बार हिंदी के छोटे–छोटे वाक्य बोलकर हम दोनों का मनोरंजन करता था''[8] यहाँ एक ओर तो विनय अपनी दादी से बात करने के लिए हिंदी भाषा को सीखने का प्रयास करता हुआ दिखाई पड़ता है वहीं दूसरी ओर उसकी माँ जो भारतीय संस्कृति के प्रति उदासीन हो चली है वह नहीं चाहती कि विनय हिंदी सीखे; क्योंकि अमरीकी संस्कृति को अपनाने की होड़ में वह अपनी मूल संस्कृति से पूर्णतः कटती चली गई है।

पश्चिमी देशों में प्रवासी भारतीयों की भाषा को लेकर जो सबसे बड़ी समस्या है, वह है उनकी अगली पीढ़ी भी हिंदी भाषा का ज्ञान अर्जित करे किंतु अमरीकी परिवेश में जन्मे तथा पले–बढ़े उनके बच्चे हिंदी को कम ही ग्रहण कर पाते हैं; क्योंकि जिस समाज में वह रह रहे होते हैं उसकी मुख्य भाषा अंग्रेजी है। प्रवासी भारतीय स्वयं उस परिवेश में वहाँ के नियमों का अनुसरण करने लगते हैं। बेशक घर में परिवार के साथ

बातचीत के दौरान वे हिंदी या अपनी क्षेत्रीय भाषा का ही प्रयोग करते हो किंतु बाहर वह अंग्रेजी ही बोलते हैं और वहाँ जन्मे बच्चे तो अंग्रेजी भाषी हो ही जाते हैं। डॉ. अशोक कुमार सिन्हा कृत कहानी 'होम–सिक्यूरिटी' में जब अनुराग अपने पोते संजय को हिंदी सिखाने का प्रयास करते हैं तो वह उनसे नजरें चुराकर निकल जाता है। ''संजय अपने पितामह की इच्छा, इसे हिंदी सिखाने की, अच्छी तरह जानता था। पर फिलहाल इस अकस्मात परीक्षा में शरीक होने से कन्नी काटता गया।... अनुराग जानता था कि संजय को हिंदी के नए–नए शब्द सीखने की जिज्ञासा थी, हालाँकि वह हिंदी बोलना चतुराई से टाल जाता है।''[9] स्पष्ट है कि संजय को हिंदी के नए शष्द सीखने की चाह अवश्य थी किंतु उसका जन्म अमरीकी परिवेश में हुआ है जहाँ मुख्यतः अंग्रेजी भाषा का ही प्रयोग किया जाता है ऐसे में हिंदी का महत्व उसके जीवन में कम ही होता है। ऐसा हो भी क्यों ना जब उसके माता–पिता तक अकेले में अंग्रेजी भाषा में ही बात करते थे। लगभग यही स्थिति हमें डॉ. भूदेव शर्मा कृत कहानी 'प्रवासी की माँ' में देखने को मिलती है, जिसमें गंगाधर द्विवेदी अपनी पोती विनीता को हिंदी सीखने के लिए कहते हैं ताकि वह अपनी दादी से बात कर सके। किंतु अमरीकी परिवेश में पली–बढ़ी उनकी बहू को यह मंजूर नहीं था। ''विनीता से एक बार आशीष के पिताजी ने कहा कि यदि वह एक शब्द प्रतिदिन भी हिंदी का सीखती तो अपनी दादी से हिंदी में आसानी से बोलने लगती। विनीता ने यह बात नीता को बतलाई। तो जानते हो नीता ने विनीता से क्या कहा?'... 'बहू ने विनीता से कहा तुम्हारी दादी भी तो अंग्रेजी का एक शब्द प्रतिदिन सीखकर तुमसे अंग्रेजी में बोलना आरंभ कर सकती थी।''[10]

पश्चिमी देशों में रहते हुए प्रवासी भारतीय जब अमरीकी परिवेश में रमने लगते हैं तो उनका अपनी मातृभाषा हिंदी से जो लगाव होता है वह भी धीरे–धीरे कम होता जाता है और वे हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी के शब्दों को ग्रहण करने लगते हैं। ऐसा होना लाजमी भी है क्योंकि व्यक्ति जिस भी परिवेश में रहता है उसका प्रभाव उस पर अवश्य ही पड़ता है। इस कारण उनमें भाषिक परिवर्तन भी देखने को मिलता है। डॉ. अशोक कुमार सिन्हा अपनी कहानी 'होम–सिक्युरिटी' में इस ओर संकेत करते हैं। कहानी में, तरुण के माध्यम से इस स्थिति को लेखक ने बयाँ किया है, जहाँ वह अपने विवाह की सूचना देने हेतु अपने माता–पिता को पत्र लिखता है और पत्र में अपनी प्रेमिका का नाम टारा बताता है। जिस पर उसके माता–पिता का संवाद इस प्रकार है– ''हाँ, मैं जानती हूँ: तरुण ने चिट्ठी में लिखा है 'टारा'। अब इतने सालों से अमरीका में रहते हुए सिर्फ़ अंग्रेजी में पढ़ना–लिखना–बोलना होता होगा। तो अगर पहले जैसा हिंदी का अभ्यास नहीं रह गया, और उसे 'त' और 'ट' में थोड़ा कंफ्यूजन हो गया लिखने में, तो तुम्हें अपने बेटे का मजाक उड़ाने की सूझी है।''[12] वास्तव में तरुण की प्रेमिका

का नाम कहानी में टारा ही होता है किंतु उसके माता–पिता को लगता है कि 'त' के स्थान पर उसने गलती से 'ट' लिख दिया है क्योंकि भारत में तारा नाम तो प्रचलन में देखा जा सकता है पर टारा शायद ही देखने को मिले। इस प्रकार कहानी में यह संकेत मात्र में ही देखने को मिलता हो पर अमरीकी परिवेश में रह रहे कुछ भारतीयों की भाषा में धीरे–धीरे यह परिवर्तन होने लगता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आज विश्व के लगभग सभी देशों में फैले प्रवासी भारतीयों के कारण हिंदी एक प्रमुख विश्वभाषा बनती जा रही है। भारतेतर देशों में रह रहे भारतवासियों के लिए हिंदी उनकी सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक है; जिसके जरिए वे अपनी मातृभूमि से जुड़े रह पाते हैं। पिछले कुछ दशकों से भारतीय अपने बेहतर भविष्य के लिए प्रमुखतः पश्चिमी देशों की ओर अग्रसर दिखाई पड़ते हैं। जहाँ उन्हें सर्वप्रथम भाषाई समस्या से जूझना पड़ता है; क्योंकि वहाँ की प्रमुख भाषा अंग्रेजी है और हिंदी भाषी भारतीयों के लिए उसमें तालमेल बैठा पाना आसान नहीं होता। वहीं दूसरी ओर जो भारतीय पहले ही अंग्रेजी भाषा का ज्ञान अर्जित कर उन देशों में जाते हैं उन्हें इस समस्या से रू–ब–रू नहीं होना पड़ता और वे कुछ हद तक वहाँ सामंजस्य बैठा लेते हैं। किंतु उनका रंग, नस्ल, रहन–सहन और अपनी संस्कृति से जुड़ाव के कारण वे पूर्णतः उस परिवेश से जुड़ नहीं पाते या कहें कि वहाँ के मूल निवासी उन्हें स्वीकार नहीं करते; इसीलिए उनके सम्मुख अपने अस्तित्व को बचाए रखने का संघर्ष वहाँ उत्पन्न होता है। प्रवासी भारतीयों के लिए पश्चिमी देशों में अपने अस्तित्व को बचाए रखने में भाषा की महती भूमिका होती है। यही कारण है कि उन देशों में हिंदी उनके लिए सामान्य भाषा बन जाती है और जब कभी संभव हो पाता है भारतीय आपस में अपनी मातृभाषा हिंदी में ही बात करना पसंद करते हैं, जिससे उन्हें आत्मीयता का बोध होता है। वहाँ रहते हुए अब उनके सामने जो सबसे बड़ी समस्या उभर रही है, वह है अपनी अगली पीढ़ी को अपनी मूल संस्कृति अथवा हिंदी भाषा से जोड़े रखना। पर पश्चिमी देशों में जन्में, पले–बढ़े बच्चे हिंदी की अपेक्षा अंग्रेजी को अधिक महत्व देते हैं, वे केवल अपने दादा–दादी या नाना–नानी से बात करने हेतु ही कुछ हिंदी सीख लेते हैं। लेकिन अब कुछ भारतीय जो पश्चिमी संस्कृति का अनुसरण करने लगे हैं वे नहीं चाहते कि उनके बच्चे हिंदी भाषा सीखें। जिससे अब धीरे–धीरे पश्चिमी देशों में हिंदी का अस्तित्व खतरे में दिखाई पड़ने लगा है; जो कि हिंदी के लिए अच्छा संकेत नहीं है। प्रवासी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में इन सभी स्थितियों का यथार्थ रूप में वर्णन किया है और वे अपने सृजनात्मक लेखन के माध्यम से अपनी मातृभाषा हिंदी के विकास में अपनी महती भूमिका निभा रहे हैं, जो सराहनीय है।

संदर्भ सूची

1. भाषा विज्ञान प्रवेश एवं हिंदी भाषा, भोलानाथ तिवारी पृष्ठ 15
2. प्रवासी आवाज़, डॉ. अंजना संधीर (संपा.), पृष्ठ 285–286
3. वही, पृष्ठ : 470
4. वही, पृष्ठ 454
5. प्रवासी हिंदी, आत्माराम शर्मा (संपा.), पृष्ठः 89–90
6. प्रवासी आवाज़, डॉ. अंजना संधीर (संपा.), पृष्ठः 470
7. वही, पृष्ठः 152
8. हिंदी भाषा का भूमंडलीकरण, सुषम बेदी, पृष्ठः129–130
9. प्रवासी आवाज़, डॉ. अंजना संधीर (संपा.), पृष्ठः 274
10.वही, पृष्ठः 98.–99
11.वही, पृष्ठः 274–275
12.वही, पृष्ठः 91

संपर्क

मकान न. 184, गली न.03, मंगलापुरी फेस–1, पालम, नई दिल्ली–110045
फोन– 8178729580, ई मेल– prakash.n.4193@gmail.com

❑❑❑

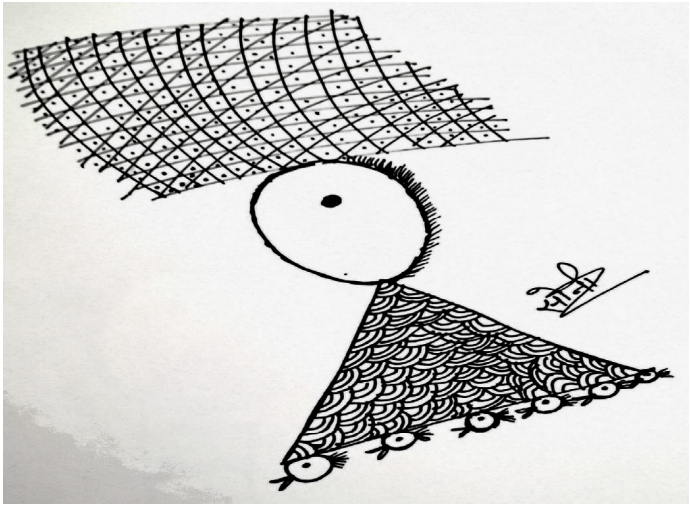

राष्ट्रीय चेतना के कविः बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

राजेंद्र परदेसी

'हताश होने से पहले', 'हिंदी की विश्वयात्रा','पूर्वोत्तर की काव्ययात्रा', आदिकाव्य–संग्रह और 'दूर होते रिश्ते' आदि कहानी संग्रह, 'शब्द शिल्पियों के सानिध्य में' आदि साक्षात्कार संग्रह एवं 'सृजन के पथिक' आदि निबंध संग्रह प्रकाशित। संप्रति–स्वतंत्र लेखन।

राष्ट्रीय एवं सामाजिक आंदोलनों में अनेक साहित्यकारों ने योगदान दिया है, उनमें से बालकृष्ण शर्मा नवीन के योगदान का विशेष उल्लेख है। उनकी कविता पर राष्ट्रीय आंदोलनों, सामाजिक घात–प्रतिघातों, दार्शनिक अनुभूतियों स्वच्छंदतावादी काव्य एवं प्रगतिवाद के अनेक प्रभाव पड़े हैं, किंतु हिंदी जगत में इनकी प्रतिष्ठा क्रांतिकारी कवि के रूप में अधिक है, आरंभ में इनके काव्य में छायावादी काव्य की जो प्रवृत्तियाँ उद्‌बुद्‌ध हुई थी, वह यथेष्ट रूप में विकसित न हो सकी।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म मध्यप्रदेश राज्य के सुजालपुर परगने भयाना ग्राम में 8 दिसंबर 1897ई. को हुआ था। आपके पिता जमुनादास शर्मा अत्यंत सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। वे पाखंड एवं अहंकार के घोर विरोधी थे जिसका प्रभाव बालकृष्ण शर्मा पर भी पड़ा।

'नवीन' जी का जन्म ताऊ जी के गायों के बाँधने के एक बाड़े में हुआ था। पिताजी ने अपनी कृष्णानुरागी वृत्ति तथा बालक के गोशाला में जन्म लेने के कारण पुत्र का नाम 'बालकृष्ण' रखा। शर्मा जी का बचपन अत्यंत आर्थिक कठिनाइयों में व्यतीत हुआ। शैशव अवस्था में उन्हें दुग्ध तक नसीब नहीं हुआ। माँ अपने हाथों से चक्की पीसकर किसी प्रकार बालक के लिए दूध जुटा पाती थीं।

बालकृष्ण शर्मा जी की शिक्षा का प्रारंभ ग्यारहवें वर्ष में 'शाजापुर' में हुआ। माँ ने अनाज पीस–पीस कर उन्हें पढ़ाया। शर्मा जी निर्धनता के कारण नंगे पाँव रहते थे। शाजापुर से अंग्रेजी मिडिल स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् वे हाईस्कूल की शिक्षा ग्रहण करने हेतु उज्जैन गए। वहाँ उन्होंने माधव महाविद्‌यालय से हाईस्कूल की परीक्षा सन् 1917 में उत्तीर्ण की।

इसके पूर्व नवीन जी का परिचय गणेश शंकर विद्‌यार्थी से हो गया था। अस्तु मैट्रिक करने के बाद वे कानपुर आए तथा गणेश शंकर विद्‌यार्थी जी के सहयोग से

उन्होंने क्राइस्ट चर्च कालेज से इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण की। जिस समय आप बी.ए. द्वितीय वर्ष के छात्र थे, गाँधी जी के असहयोग आंदोलन के कारण उन्होंने शिक्षा समाप्त कर दी। यहीं से नवीन जी के विद्यार्थी जीवन की इतिश्री हो गई और सक्रिय रूप से स्वतंत्रता संग्राम एवं साहित्य–सृजन के काम में लग गए।

लखनऊ के एक आयोजन में जिन व्यक्तियों से शर्मा जी का परिचय हुआ था उनमें प्रमुख थे– माखनलाल चतुर्वेदी, गणेश शंकर विद्यार्थी तथा मैथिलीशरण गुप्त। इन तीनों का 'नवीन' जी के व्यक्तित्व निर्माण में यथेष्ठ प्रभाव पड़ा। चतुर्वेदी जी यदि उनके वंदनीय रूप में समाहत हुए तो विद्यार्थी जी ने उनके जीवन का निर्माण किया। गुप्त जी उनके जीवन में अग्रज तथा 'दद्दा' के रूप में प्रसिद्ध हुए।

प्रारंभ से नवीन जी के हृदय में माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं के प्रति एक विशेष आकर्षण था। नवीन जी जिस समय 'माधव कालेज उज्जैन में पढ़ते थे। उस समय उनकी काव्य प्रतिभा से सभी परिचित हो गए थे। सर्वप्रथम उनकी कविता 'तारा' सरस्वती पत्रिका में 'नवीन' उपनाम से प्रकाशित हुई। द्विवेदी जी ने इसे मुखपृष्ठ पर स्थान दिया था। इसके उपरांन्त उनकी कविताएँ एवं कहानियाँ अन्य पत्र–पत्रिकाओं में 'नवीन' के नाम से प्रकाशित होने लगीं।

'विद्यार्थी' जी के संपर्क में आते ही यह मेधावी एंव प्रतिभा संपन्न कवि परिष्कृत हो उठा। कानपुर की 'प्रताप' पत्रिका के माध्यम से इनकी साहित्यिक कीर्ति प्रसारित होने लगी।

'विद्यार्थी' जी के बलिदान के उपरांत 'नवीन' जी कानपुर के ही नहीं, संपूर्ण प्रांत के नेता के रूप में लोकप्रिय हो उठे, किंतु 'नवीन' जी के कवि पर राजनीति कभी हावी नहीं हो सकी, यद्यपि वह विवादास्पद है, जैसा कि डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने लिखा है– ''यह कहना मुश्किल है कि नवीन जी को राजनीति साहित्य क्षेत्र में ले आई थी या उनकी साहित्यिक प्रतिभा उन्हें राजनीति में ले आई। इनके लिए देश सेवा और साहित्य सेवा में फर्क नहीं था।

जिस समय 'नवीन' जी का अभ्युदय हुआ, देश में स्वतंत्रता संग्राम छिड़ चुका था। उस युग के प्रायः सभी कवि एवं साहित्यकार इससे अप्रभावित न रह सके। देश के कोने–कोने में नवजागरण के बोल फूट पड़े थे। देशवासियों ने स्वतंत्रता को अपना जन्मसिद्ध अधिकार स्वीकार किया और उनकी संप्राप्ति में अपने प्राणों को उत्सर्ग करने के निमित्त वे क्रांतिकारी पथ पर भी अग्रसर हो उठे, जिन्हें अनुप्रेरित करने वाले थे, राष्ट्रीय कवि माखनलाल चतुर्वेदी के अधोलिखित स्वर जन–जन के जागरण–गीत बन चुके थे।

''बलि होने की परवाह नहीं, मैं हूँ कष्टों का राज्य रहे,
मैं जीता, जीता, जीता हूँ, माता के हाथ स्वराज रहे।

इसी समय 'नवीन' जी की रण–दुंदुभी बज उठी–

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल–पुथल मच जाए,
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए,
प्राणों के लाले पड़ जाए, त्राहि–त्राहि स्वर नभ में छाए,
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाए,
बरसे आग, जलद जल जाए, भस्मसात भूधर हो जाए,
पाप पुण्य सद्सद भावों की धूल उठे दाएँ–बाएँ,
नभ का वक्षस्थल फट जाए, तारे टूक–टूक हो जाए।

'नवीन' जी ने सक्रिय रूप से स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। अनेक बार कारागार के सीरचों में वे बंद किए गए। फलस्वरूप वह प्रखर अनुभूति ओजस्वी–स्वर में ललकार उठी–

प्राणों के तड़पाने वाली हुंकार से जल–थल भर दे,
अनाचार के अंबारों में अपना ज्वलित पलीता धर दे।

नवीन जी की कविताओं में जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान है, वहीं उनमें मानव–मन की सूक्ष्म प्रवृत्तियों का अंकन भी है। छायावादी युग में जन्म लेने के उपरांत भी नवीन जी काव्य में कोरी कल्पना के घोर विरोधी थे। वे काव्य को यथार्थ की भूमि पर संचरित करने के पक्षधर थे। इसी प्रकार नवीन जी काव्य में दुरूहता के स्थान पर स्पष्ट कथन के अत्यधिक हिमायती थे। उन्होंने लिखा है– ''हमें इस बात का ख्याल रखना पड़ेगा कि हम अपनी अभिव्यक्ति में दुरूह न हो जाएँ। यदि हमारी अनुभूति में कोई विडंबना नहीं है, तो हमारा वर्णन भी स्वच्छ एवं निर्धूम होगा। बौद्धिक उजबकथन (Intellectual Vulgarism) भी एक बड़ा बुरा दोष है। हमारे वर्तमान बुद्धि से संपंन कवियों में यह दोष आ गया है कि वे कल्पनाओं और रंगकेजियों के घटाटोप में असली बात छिपा जाते हैं।''

नवीन जी की कविताओं में लेशमात्र भी अभिव्यक्ति का दुरूहपन नहीं दृष्टिगोचर होता। वे राष्ट्रीय काव्य की प्रेरणाओं में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं।

नवीन जी के गीतों में जीवन दर्शन है– यह कहना यहाँ प्रासंगिक नहीं होगा। उन्होंने जहाँ राष्ट्रीयता के स्वर को निनादित किया है, वहीं वे मनुष्य के शाश्वत एवं चिरंतन मूल्यों का भी विस्मरण नहीं कर सके। उन्होंने लिखा है– 'ये आपके कविगण, जिनका मखौल पुराने और नए के सर्जनावादी, हालाप्यालावादी, रहस्यवादी, छायावादी एवं अर्थहीन बकवादी कहकर उड़ाया गया है, आपके साहित्य के आभूषण हैं। स्मरण रखिए भविष्य में इतिहासवेत्ता इस काल को प्रसाद, पंत, माखनलाल, महादेवी, भगवतीचरण, निराला, सुभद्रा, दिनकर, बच्चन, अज्ञेय आदि के नाम से भी स्मरण करेगा। इनका कसूर यह था और यह है कि इन्होंने गतानुगतिक परंपरा के बंधनों का

निरादर किया और व्यक्ति की समष्टि–मूलक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की। इनके पहले आपकी कविता क्या थी, जरा सोचिए तो।''

उपरोक्त कथन से स्पष्ट होता है कि नवीन जी साहित्य में न तो प्राचीन अभिव्यक्ति के कायल थे और न तथ्य के ही। वे मानव–मन की उस छटपटाहट की अभिव्यक्ति देने के पक्षपाती थे, जो आदर्शवादी के कटघरे में असहाय तड़प रही थी। इस प्रकार नवीन जी को हम राजनीति एवं साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में एक विद्रोही के रूप में देखते हैं।

राष्ट्रीय कविताओं के अतिरिक्त नवीन जी ने प्रणय–परक कविताओं की संरचना की है, किंतु विप्रलंभ उनका प्रधान गुण है। इनके गीतों में माँसलता के भी दशर्न होते हैं। यथा–

प्राण, तुम्हारी हँसी लचीली।
ग्रीव में वह तब मृदु भुजमाल,
स्मरण–कंटक बन आयी वाल।

इसके अतिरिक्त प्रेम एवं छायावादी कविताएँ भी इन्होंने लिखी हैं, जिन्हें हिंदी साहित्य की निधि स्वीकार किया जा सकता है। यथा–

''मेरी आराधना परिधि का केंद्र बिंदु सुकुमार सखी,
सहसा टपक पड़ा और आँखों की पुतली से उस वार सखी।
उत्कंठा ने सीमा को उल्लंघित करके किया प्रणाम,
कँपे अधर, रह गया सिसक कर हिय का विमल दुलार सखी।

नवीन जी की प्रकाशित कृतियाँ हैं– 'कुसुम', 'रश्मिरेखा', 'अपलक', 'क्वासि', 'विनोबा–स्तवन', 'हमविषपायी जनम के'।

इसके अतिरिक्त इनके दो प्रबंध काव्य– 'उर्मिला' तथा 'प्राणार्पण हैं। इन्होंने काव्य लोक में विचार करते हुए पाँच सौ कविताओं का सृजन किया। इन्होंने उज्जैन, कानपुर, लखनऊ जेल, गाजीपुर जेल, रेलवे पथ–कानपुर, इलाहाबाद, झाँसी रेलपथ, इलाहाबाद रेल पथ, चिरगाँव रेलपथ कानपुर, उरई रेलपथ, हरदोई, लखनऊ, नैनी जेल, काशी से कानपुर रेलपथ, फफूँद से कानपुर रेलपथ, उन्नाव जेल, नई दिल्ली एवं रेलपथ बंबई आदि विभिन्न स्थानों पर रहकर अनेकानेक विषयों को अपने काव्य में सँजोया है।

'कुसुम' में कवि की 38 कविताएँ संकलित हैं। इसका प्रकाशन काल 1939 है। इसमें कवि की देश–भक्ति–परक रचनाएँ ही अपना प्राधान्य रखती हैं। 'विप्लव–गायन' तथा 'पराजयगीत' इस संकलन की श्रेष्ठ कविताएँ हैं। इसके अतिरिक्त इसमें शृंगार प्रधान रचनाएँ भी संगृहीत हैं। इससे कवि की काव्यधारा राष्ट्रीय तथा प्रेम के युगल कूलों का स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती है। 'रश्मिरेखा' नवीन जी का दूसरा काव्य संकलन है, जिसका प्रकाशन 1951 में हुआ था। इसमें सत्ताईस कविताएँ संकलित हैं।

'अपलक' कवि का तृतीय संकलन है। इसका प्रकाशन अगस्त सन् 1951 में हुआ। यह मूलतः गीत काव्य है 'क्वासि' कवि नवीन का चतुर्थ काव्य संग्रह है। इसमें कवि की रहस्यात्मक कविताओं का संकलन है। 'विनोबास्तवन' कवि का अंतिम प्रकाशित काव्य संग्रह है। इसमें जैसा कि नाम से स्पष्ट है विनोबा जी को श्रद्धांजलि अर्पित की गई है।

'उर्मिला' हिंदी साहित्य की उत्कृष्ट कोटि की प्रबंध कृति है। इसका प्रकाशन सन् 1957 में हुआ था। इसके लेखन में लगभग बारह वर्ष लगे थे। उपेक्षिता उर्मिला के जीवनवृत्त को शब्द देकर 'नवीन' ने 'रामकथा' की परंपरा को एक नवीन आयाम प्रदान किया है।

नवीन जी का निधन अगस्त सन् 1967 को हुआ था। उनके अंतिम समय का जीवन अत्यंत दुखों से घिरा रहा। उनके अंतिम जीवन के क्षणों की झाँकी 'हम विषपायी जनम के' काव्य कृति से प्रबुद्ध लोग जान सकते हैं। उस समय उनकी वाणी रुद्ध हो गई थी। तब वह गणेश शंकर के तिलक नगर निवास स्थान में रहते थे। जब उनका मन एकाकीपन से ऊबने लगता था तब वे अपनी काव्य कृति 'हम विषपायी जनम के' डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल के सम्मुख उस कृति की रचित कविताओं को खोलकर रख देते थे तथा सांकेतिक भाषा में उन कविताओं को सुनाने को कहते। जब डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल उनकी रचित कविताओं का पाठ करते जाते तो उनके नेत्रों से अविरल अश्रु–धारा प्रवाहित होने लगती है।

संपर्क

136, मयूर रेजीडेंसी, फरीदीनगर, लखनऊ, उत्तरप्रदेश–226015

फोन–9415045584, ई मेल– falcon.bh@gmail.com

❑❑❑

नरेश मेहता कृत 'शबरी' खंडकाव्य का विश्लेषण (वाल्मीकि रामायण के संदर्भ में)

दीपशिखा
विभिन्न पत्रिकाओं में शोधपत्र प्रकाशित। पोस्ट डॉक्टोरल फैलोशिप प्राप्त। गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर सम्मान से सम्मानित। संप्रति–जगतगुरु नानकदेव पंजाब राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, पटियाला में कार्यरत।

हिंदी साहित्य आधुनिक काव्यधारा नई कविता के यशस्वी कवि नरेश मेहता, जिन्होंने साहित्य की सभी विधाओं में अपने विचारों, सामाजिक सरोकारों, मानवीय अस्तित्व एवं उससे संबंधित प्रश्नों को अभिव्यंजित किया है, द्वारा रचित खंडकाव्य 'शबरी' की कथा का मूल आधार वाल्मीकि रामायण है, किंतु कवि ने शबरी की कथा को पूर्णतः नवीन एवं मौलिक रूप देते हुए समाज में व्याप्त भेदभाव एवं वर्णव्यवस्था का चित्रण करते हुए समाज को यह संदेश दिया है कि व्यक्ति की पहचान उसके कर्म से हैं, उसकी जाति से नहीं। शबरी, जो भील जाति से संबंधित है, के मन में अपनी जाति–कृत्य (पशु–हिंसा) के प्रति घृणा है, निराशा है। इस कार्य को करते समय वह मन ही मन पश्चाताप करती हुई ईश्वर से प्रार्थना करती है कि उसे इस घृणित कार्य करने से मुक्ति दे। उसकी यह सोच उसे मानवता के उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करती है। कवि नरेश मेहता जी ने रामकथा में से शबरी के प्रसंग को लेकर समाज को नव दिशा एवं नव संदेश तो दिया ही है, शबरी को भी अमरत्व प्रदान किया है। जन्म से निम्न होने पर शबरी की वैचारिकता उसे अपने अस्तित्व की स्थापना हेतु प्रेरित करती है। वह सोचती है नारी रूप में जन्म लेना ही उसका अस्तित्व नहीं है, वास्तविक अस्तित्व उसके होने से है। अपने इसी अस्तित्व को पाने के लिए शबरी अंततः घर–परिवार को त्याग देती है। यहाँ शबरी का चरित्र, उसका व्यक्तित्व समाज के लिए प्रासंगिक हो जाता है। कवि के शब्दों में, "शबरी अपनी जन्मगत निम्नवर्गीयता को कर्मदृष्टि द्वारा वैचारिक ऊर्ध्वता में परिणत करती है। यह आत्मिक या आध्यात्मिक संघर्ष व्यक्ति के संदर्भ में मुझे आज भी प्रासंगिक लगता है। सामाजिक मूढ़ता, परिवेशगत जड़ता तथा अपने युग के साथ संलापहीनता की स्थिति में व्यक्ति

केवल अपने को ही जागृत कर सकता है और अपने को ही संबोधित कर सकता है। इसी संघर्ष के माध्यम से 'स्व' 'पर' हो सकता है; व्यक्ति, समाज बन सकता है। शबरी अपने वर्ण, वर्ग, समाज, युग सबसे ऊपर स्थापित इसी प्रक्रिया द्वारा हो सकी।"

शबरी जो सोचती है, जो करती है, यह भावना, यह कर्म व्यक्ति को 'स्व' के बंधन से मुक्तकर 'पर' में स्वयं की प्राप्ति के स्तर पर पहुँचा देते हैं। इसी स्तर की प्राप्ति में ही सार्थक अस्तित्व निहित है। जिसे शबरी अपने कर्मों के माध्यम से प्राप्त करती है। कवि ने शबरी को अपनी अस्मिता बोध के लिए प्रयासशील व्यक्ति के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है। अपनी अस्मिता को जागृत कर, स्थापित कर कोई मानव अपने आंतरिक आलोक से या अंतरात्मा को प्रकाशित कर प्रत्येक लक्ष्य को सहज ही प्राप्त कर सकता है।

सर्वप्रथम खंडकाव्य के 'त्रेता' सर्ग में हम देखते हैं कि कवि ने त्रेतायुग की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया है कि तत्कालीन समय में लोग जीवनयापन कैसे करते थे, वर्ण व्यवस्था कैसी थी, प्रत्येक जाति के अपने अलग–अलग कार्य एवं व्यवसाय थे–

रक्षक औ पालक क्षत्रिय/थे वैश्य बने व्यापारी
श्रमिक शूद्र थे, थी समाज/की यही व्यवस्था सारी।
वन्य जातियाँ अब भी थीं/आखेट आदि ही करतीं,
पशु–पक्षी–मछली पर/अपना जीवनयापन करतीं
....ऐसी ही थी शबर जाति/भी विंध्यवनों में रहती,
....श्रमणा नामक शबरी वह/ऐसा ही जीवन जीती,
उसे घृणा थी पशु हिंसा से/पर क्या कर सकती थी।

उक्त प्रसंग में कवि शबर जाति एवं उसके आजीविका के साधनों का वर्णन करते हुए श्रमणा नामक शबरी से पाठकों को परिचित करवाते हैं। वहीं वाल्मीकि रामायण में 'कबंध' पंपा सरोवर की सुंदरता एवं उसके आसपास के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करते हुए श्रीराम से कहता है कि उस सरोवर के समीप श्रमणा शबरी चिरजीवनी रहती है जो सदैव धार्मिक अनुष्ठान में व्यस्त रहती है, मतंग आदि ऋषि और उनके शिष्य अब वहाँ नहीं हैं, के माध्यम से शबरी के चरित्र की ओर संकेत करते हुए कवि ने पाठकों को उससे परिचित करवाया है–

श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी।।

आगे नरेश मेहता जी ने शबरी के जीवन वर्णन में शबरी द्वारा अपने 'श्रमणा' नाम तथा पारिवारिक कृत्य (पशुवध) के विषय में सोचकर विषादग्रस्त होना, इस कृत्य को मानवजाति के लिए सबसे बड़ा पाप मानना तथा निवासस्थल एवं उसमें व्याप्त घृणित, जुगुप्सित वातावरण का सशक्त एवं सजीव चित्रण करते हुए बीभत्स रस की

अभिव्यंजना की है। वहीं अपनी आत्मिक उन्नति में इस घृणित कृत्य से संबंधित परिवार को सबसे बड़ी बाधा मानना आदि तथ्यों के माध्यम से शबरी के उदात्त चरित्र को प्रकट किया है–

कौन जन्म का पुण्य जगा/श्रमणा शबरी के मन में–
पाप–कर्म ही लिखा हुआ है/क्या मेरे जीवन में?'
पर मनुष्य यह कितना पापी/बैर सभी जीवन से
...पर इस बंधन में रहते/संभव क्या उन्नत जीवन?
'पता नहीं किस साधु ने,/यह नाम दिया था श्रमणा
..श्रमणा जैसा नाम, किंतु/रहना तो घोर नरक में।

आगे 'पंपासर' अध्याय में कवि ने शबरी के पंपासर में पहुँचने तथा मतंग ऋषि के शिष्यों द्वारा किए जाने वाले दैनिक कृत्यों एवं धार्मिक वातावरण का स्वाभाविक चित्रण किया है। आश्रम के आध्यात्मिक एवं पवित्र वातावरण में पहुँचकर शबरी का मन पूर्णतः शांत हो जाता है। स्नान आदि से निवृत्त होकर शबरी वैदिक मंत्रों के पाठ से पवित्र आश्रम के द्वार के समीप ही बैठ जाती है, मन में ऋषि मिलन की आशा लेकर–

प्रातःकाल हुआ ही था/सब स्नान ध्यान में रत थे
..कोई क्यारी छाँट रहा था/सींच रहा जल कोई
...गीले आंगन में हिरणों के/खुर उभरे पड़ते थे
...यज्ञ वेदियाँ सुलग चुकी थीं/वेदपाठ था जारी,
...हरसिंगार, चंपा, कनेर/कदली, केला थे फूले,
...पहुँची वह मतंग ऋषि–आश्रम/यज्ञ–धूम था पावन
दिव्य–गंध से युक्त हवा थी/सामगान मन भावन
जाकर स्नान किया पोखर में/...सार्थक हो दर्शन से।

वाल्मीकि रामायण में कबंध राम–लक्ष्मण को पंपासर तक पहुँचने का मार्ग बताते हुए कहता है कि पश्चिम दिशा में अनेक मनोहर तथा सुंदर वनों, पर्वतों से गुजरते हुए आप पंपा नामक पुष्करिणी के तट पर पहुँच जाएँगे–

दर्शयित्वा तु रामाय सीतायाः परिमार्गणे।
वाक्यमन्वधर्मर्थज्ञः कबन्धः पुनरब्रवीत्।।
एष राम शिवः पन्था यत्रैते पुष्पिता द्रुमाः।
प्रतीचीं दिशमाश्रित्य प्रकाशन्ते मनोरमाः।।

अन्यत्र

चङ्कमन्तौवारञ्शैलाञ्शैलाच्छैलं वनाद् वनम्।
ततः पुष्करिणीं वीरौ पम्पां नाम गमिष्यथः।।

आगे पंपासर के जल में विचरण करने वाले हंस, क्रौंच, कारंडव आदि पक्षियों की स्वाभाविक क्रियाओं का वर्णन, पर्वतों, वृक्षों, उत्पल, कमलादि पुष्पों का सजीव वर्णन किया है। इसी शृंखला में ऋष्यमूक पर्वत का वर्णन आता है जिसपर बनी गुफा में सुग्रीव के निवास की पुष्टि की गई है–

ऋश्यमूकस्तु पंपायाः पुरस्तात् पुश्पितद्रुमः।
...तस्या वसति धर्मात्मा सुग्रीवः सह वानरैः।
कदाचिच्छिखेर तस्य पर्वतस्यापि तिष्ठति।।

आगे 'तपस्या' सर्ग में कवि ने शबरी द्वारा तपोवन की कुछ दूरी पर जंगल में कुटिया बनाकर रहने का चित्रण किया है–

कुछ दूर तपोवन से हट/पंपासर के कोने में
शबरी ने कुटिया छायी/निर्जन जंगल सूने में।

वाल्मीकि रामायण में भी पंपा नामक पुष्करिणी के तट पर शबरी के आश्रम होने का वर्णन मिलता है–

तौ पुश्करिण्याः पम्पायास्तीरमासाद्य पश्चिमम्।
अपश्यतां ततस्तत्र शबर्या रम्यमाश्रमम्।।

अपनी कुटिया में रहती हुई शबरी ऋषि की आज्ञा का धर्मपूर्वक पालन करती है। गौशाला की देखभाल निष्ठा एवं कर्त्तव्य भाव से करती है–

सूर्योदय के पहले ही/गुरु–गोशाला में होती,
दाना–पानी दे सबको/तब गायें दुहतीं होतीं।

नित्य कर्म करते हुए तथा रात्रि प्रभु स्मरण एवं पूजा में व्यतीत करती शबरी प्रभुमिलन की इच्छा रखकर ईश्वर के समक्ष अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए कहती है कि न तो मैं गरुड़, न हँसी जो दूरी पारकर तुमसे मिल सकती है, न ही मेरे प्रारब्ध कर्म इतने शक्तिशाली हैं कि उसके फलस्वरूप तुम्हें पा सकूँ, हे ईश्वर! तुम इस शूद्र शबरी जो घास–पात के सदृश है, के तुम्हीं तप एवं बल हो–

मैं गरुड़, ना हँसी/जो लाँघ दूरियाँ जाऊँ,
प्रारब्ध नहीं है इतना/जो यज्ञ–याग कर पाऊँ।।

मतंग ऋषि आते–जाते शबरी के पुण्यकर्म और तपस्या और प्रभुमिलन की तीव्र इच्छा को देखते, अनुभव करते तब उसे प्रभु दर्शन का आशीर्वाद देते हुए कहते हैं–

जो स्वयं तपस्या है अब/क्या वेद–मंत्र हैं उसको।
यह क्षार झाड़ जिस दिन भी/ज्योतित होगी तेजस बन
त्रैलोक्य छोड़ तब प्रभु ही/आएँगे देने दर्शन।

वाल्मीकि रामायण में शबरी राम से कहती है कि धर्मज्ञ महर्षियों ने जाते हुए मुझसे कहा था कि राम लक्ष्मण के साथ तेरे अतिथि होंगे और तुझे दर्शन देंगे–

तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञर्महाभागैर्महर्षिभिः।

आगमिष्यति ते रामः सुपुण्यमिममाश्रमम्।।
... तं च दृष्ट्वा वरांल्लोकानक्षयांस्त्वं गमिष्यसि।।

आगे 'परीक्षा' सर्ग में कवि ने शबरी की दिनचर्या में परिवर्तन किया है, पहले वह गौशाला की देखभाल करती थी किंतु अब उसकी तपस्या एवं निष्ठा के प्रभावस्वरूप ऋषि उसे पूजा–पाठ की व्यवस्था का कार्य सौंप देते हैं। साथ ही कभी–कभी वह प्रवचन करती एवं उपदेश देती थी। कल के समय की दया–पात्र शबरी आज आश्रम की पवित्र तुलसी की पदवी प्राप्त कर चुकी थी–

शबरी की दिनचर्या अब/पूजा–प्रबंध था करना
....अब कभी–कभी प्रवचन में/उल्लेखित होती शबरी।
थी दया–पात्र जो सबकी/अब वह आश्रम की तुलसी।

शबरी यद्यपि आश्रम की पवित्र तुलसी बन चुकी है किंतु जनपरिवाद से वह बच नहीं पाई। नित्य, नैमित्तक एवं धार्मिक, आध्यात्मिक साधना में रत शबरी की जाति एवं उसके आश्रम में रहने पर आश्रमवासी आक्षेप जताते हैं। उनके मन में शबरी के प्रति इतनी कटुता, वैर–भाव भर उठता है कि जिस जल का उपयोग शबरी करती है उस जल का स्पर्श वह गौहत्या के पाप सदृश मानते हैं–

दूषित है पंपासर का/जल, शूद्रा के छूने से,
गो–हत्या पाप लगेगा/इस जल को अब छूने से।

वे सभी लोग शबरी को आश्रम से निष्कासित करने का समर्थन करते हैं। मतंग ऋषि मन ही मन उनके इस नियम को सुनकर उदास हो जाते हैं। वे सोचते हैं कि समाज की सोच, उसका मन कब बदलेगा। यहाँ कवि, समाज की भेदभाव वाली प्रवृत्ति की ओर संकेत करता है। समाज के लोग वेशभूषा से साधु–सज्जन प्रतीत होते हैं किंतु वास्तव में उनके अंतर्मन में दंभ, अहंकार भरा है, वर्णभेद की आग भड़क रही है। ऐसी स्थिति में क्या धर्मतत्व से ऊँची वर्णाश्रम की मर्यादा है, क्या केवल उच्च जाति का होना ही अनिवार्य है, जो स्वभाव से सात्विकता की मूरत है, क्या वह आर्य नहीं है। यहाँ ध्वनित है कि जिस मानव का आचरण सात्विक है, जो सत्वगुण का दृष्टांत है, वह जाति से कितना भी निम्न क्यों न हो, वास्तव में वही आर्य कहलाने का अधिकारी है–

अपने को श्रेष्ठ समझना/यह दंभ नहीं तो क्या है?
जिसका जीवन है सात्विक/वह आर्य नहीं तो क्या है?

मतंग ऋषि आश्रमवासियों से शबरी के कठिन व्रत, साधना के बारे में बताते हुए उसे तपस्या की पराकाष्ठा, देवी, शक्ति आदि नामों से संबोधित करते हुए उसे पूज्य बताते हैं–

अब वह है नर से भी ऊपर/है शक्ति, देवी, नारायण
पूछो कुश–दुर्वाओं से/किसकी जपते हैं माला?

आश्रमवासियों द्वारा इस बात को अस्वीकार करने पर कवि ने समाज एवं मानव की स्वार्थी प्रवृत्ति का निर्भीक चित्रण करते हुए इस यथार्थ से परिचित करवाया है कि युगों–युगों से मानव ईर्ष्या–द्वेषवश या उच्चकुल अभिमान के कारण सदैव अपने से अच्छे सभ्य, मर्यादित जन को तिरस्कृत कर उसे नीचा दिखाने के लिए उसके मार्ग में सदैव बाधाएँ पैदा करता रहा है–

पर समाज तो सभी युगों से ऐसा ही होता है,
अच्छे जन के मार्ग में यह कंटक बोता है।

समाज की इस स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण अंततः मतंग ऋषि और शबरी को आश्रम छोड़ना पड़ा–

और त्यागना पड़ा तपोवन/ऋषि को, शबरी को भी
कुटी जला, सब नष्ट किया/शूद्रा की स्मृति को भी।

शबरी की कुटिया जलाने के बाद भी लोगों के मन में उसके प्रति इतना वैर–भाव पनप रहा था कि वे 'योगी' नाम से प्रसिद्ध हो चुकी शबरी को किसी भी तरह नीचा दिखाने चाहते थे, उसे वहाँ से भेजना चाहते थे। अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु वे लोग शबरी के पति के घर की तलाश कर उसे भड़काते हैं। उनके वचन सुनकर शबरी का पति शाबर दल सहित रात में छिपकर उसे लेने के लिए कुटिया पर आते हैं किंतु तपस्विनी शबरी के मुख की पवित्रता को देख उसका पति विस्मित हो जाता है, जैसे ही वह शबरी को दबोचने के लिए आगे बढ़ता हैं तभी आग का कुंडल शबरी का रक्षक बन उसे घेर लेता है, जिसका ताप शाबर–दल सहन नहीं कर पाता–

गोला बना कर बढ़ा दो कदम/आगे तब शाबर–दल/
तभी दिखा शबरी के चारों/ओर आग का कुण्डल।

तभी मतंग ऋषि के आने पर शाबर–दल उनसे क्षमायाचना कर वापस चला जाता है।

वाल्मीकि रामायण में शबरी की ऐसी दिनचर्या एवं समाज द्वारा उसका विरोध करने का प्रसंग प्राप्त नहीं होता।

कवि नरेश मेहता ने शबरी के इस प्रसंग के माध्यम से समाज द्वारा शूद्र व्यक्ति से किए जाने वाले भेदभाव का जीवंत चित्रण कर एक सामाजिक कुरीति को हमारे सामने रखा है जिसे खत्म करना प्रत्येक मानव का कर्तव्य है।

आगे 'दर्शन सर्ग' में कवि ने प्रारंभ में सीता–हरण की जानकारी दी है। तत्पश्चात् वन–वन भटकते राम–लक्ष्मण का आश्रम में आना आदि सभी क्रियाओं को मतंग ऋषि दिव्य दृष्टि से पहले ही देख लेते हैं। राम–लक्ष्मण के आश्रम में आने पर कोलाहल मच जाता है किंतु शबरी इन सबसे बेखबर महाभाव में निमग्न प्रभुभक्ति में लीन रहती है।

संध्या–वंदन आदि कर्म से निवृत्त होकर मतंग ऋषि राम–लक्ष्मण को सादर आश्रम के भीतर ले जाते हैं तथा उनके वहाँ आने का प्रयोजन पूछते हैं तब राम बताते हैं कि वह पंपासर में गऐ थे। वहाँ पहुँचने पर उन्हें पता चलता है कि मुनियों ने आपके और शबरी के वहाँ रहने का विरोध किया है। वह ऋषि की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि ज्ञान–भक्ति के साधक मतंग ऋषि जैसा चौदह भुवनों में कोई नहीं है–

...है क्या मतंग के जैसा/चौदह समस्त भुवनों में?

जबकि वाल्मीकि रामायण में राम सबसे पहले पुश्करिणी पश्चिम तट पर पहुँच कर शबरी का आश्रम देखते हैं और उससे मिलते हैं–

तौ तमाश्रममासाद्य द्रुमैर्बहुभिरावृतम्।
सुरम्यमभिवीक्षन्तौ शबरीमभ्युपेयतुः।।

आगे राम ऋषि को बताते हैं कि उन्हें शबरी का समस्त वृत्तांत ज्ञात हो चुका है। शबरी तो इस धरा पर शक्ति रूप, तेज रूप तथा शिव–शक्ति है। उसे वर देते हुए राम कहते हैं उसकी तपगाथा के श्रवण मात्र से ही मानव जाति कृतार्थ हो जाएगी–

शबरी अंत्यज है तो क्या/ वह शक्ति रूप है शूद्रा।
है तेज रूप वह केवल/शिव–शक्ति रूप है शूद्रा।।

तभी शबरी भीड़ में से निकलकर पूजा–प्रसाद लेकर आती है तथा ऋषि के सम्मुख प्रसाद रूप में जंगली बेर रखते समय अचानक शबरी को ध्यान में आता है कि यहाँ कोई अन्य (राम) भी उपस्थित है। श्रीराम को देखकर शबरी के आनंद–अश्रु बहने लगते हैं। उसकी समस्त इंद्रियाँ रसलीन हो जाती है। वह विचलित हो उठती है कि प्रभु श्रीराम का सत्कार कैसे करे, कहाँ बिठाए, किन मंत्रों का उच्चारण करे, कौन सी माला पहनाए, प्रभु को क्या कहकर बुलाए, कौन सा संबोधन दे, कैसे चरण धोए आदि आदि–

प्रभु को कैसे बैठाए/परिधान कौन–सा लाए?
किन मंत्रों से आवाहन/वह गान कौन–सा गाए।।

कवि नरेश मेहता जी ने अपने काव्य में राम को देखकर शबरी की ऊहापोह स्थिति का वर्णन किया है जबकि वाल्मीकि रामायण में राम शबरी से स्वयं पूछते हैं कि क्या तुमने सारे विघ्नों पर विजय प्राप्त कर ली है तुम्हारे मन में सुख शांति तो है न तुमने जो गुरुजनों की सेवा की है, वह सफल हुई है? राम के पूछने पर वृद्धा एवं सिद्धा शबरी कहती है कि आपके दर्शन से मुझे अपनी तपस्या में सिद्धि प्राप्त हुई है। आज मेरा जन्म सफल हुआ है और गुरुजनों की उत्तम पूजा भी सार्थक हो गई–

रामेण तापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता।
शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता।।
अद्य प्राप्ता तपःसिद्धिस्त्व संदर्शनान्मया।
अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः।।

कवि नरेश मेहता ने वर्णित किया है कि शबरी को ऊहापोह की स्थिति में देखकर मतंग ऋषि राम को उसे मुक्ति प्रदान करने के लिए कहते हैं–

तुम इसे मुक्ति दो प्रभु। अब/है पाद–पद्म अनुरागी
इस कुलकलंकिनी शूद्रा/को कर दो तुम बड़भागी।।

ऋषि की बात सुनकर राम शबरी से प्रसाद खाने की इच्छा प्रकट करते हैं। यह सुनकर शबरी चिंतित हो उठती है तथा मन में सोचती है कि वह जंगली बेर प्रभु को कैसे दे दे क्योंकि इनमें कुछ कड़वे तो कुछ मीठे बेर होंगे। अंत वह निर्णय लेती है, कि वह प्रभु श्रीराम को स्वयं चखकर वही बेर देगी जो मीठे होंगे–

प्रभु को देगी वह चखकर/होंगे रसाल जो मीठे
वह प्रभु की जिह्वा बनकर/चक्खेगी कड़वे–मीठे
वह सहज भाव से चखती/मीठे प्रभु को दे देती
प्रभु सहज भाव से खाते/आँखों में कृपा बरसती।

वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि राम–लक्ष्मण के आश्रम में आने पर शबरी पहले उनके चरणों में प्रणाम करती है तत्पश्चात् पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय आदि सामग्री (जिसमें बेर नहीं हैं) समर्पित कर दोनों का सत्कार करती है। इसके बाद शबरी और राम में हुए संक्षिप्त संवाद का वर्णन है–

पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद् यथाविधि।
तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम्।।
मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ।
तवार्थे पुरुषव्याघ्र पंपायास्तीरसंभवम्।।

नरेश मेहता द्वारा रचित खंडकाव्य में शबरी के सत्कार से प्रसन्न होकर राम जनसामान्य को संबोधित कर कहते हैं कि त्रेता युग में शबरी से श्रेष्ठ भक्त कोई नहीं है। सभी मंत्र, यज्ञ आदि इसकी पूजा करने से ही सिद्ध हो जाएँगे–

है, अन्य कौन त्रेता में/जो श्रेष्ठ भक्त, शबरी से
है मंत्र, यज्ञ यह सब कुछ/सब सिद्ध इसी शबरी से।

राम के इस कथन को जब शबरी ये कहती है कि हे प्रभु एक क्षण के लिए भी वियोग असहनीय हो गया है, तभी उसकी देह से योगाग्नि की पुण्यज्वाला प्रज्वलित हो उठती है तथा दिव्यमुख वाली शबरी भागवत रूपी आकाश में प्रथम श्लोक के समान अंकित होकर स्वर्गलोक को कृतार्थ करने हेतु धरा से प्रस्थान कर जाती है–

थीं सुलग उठी शबरी में/योगाग्नि पुण्य–ज्वालाएँ,
था दिव्य तेज उस मुख पर/सूरज की स्वर्ण–प्रभाएँ।
आकाश–भागवत की वह/थी प्रथम श्लोक सी–शबरी
करने कृतार्थ जाती थी/अब स्वर्ग लोक शबरी।

वाल्मीकि रामायण में शबरी स्वयं राम से आज्ञा माँगती है कि वह अपनी देह का परित्याग करके पवित्रात्मा महर्षियों के पास जाना चाहती है–

तदिच्छाम्यभ्यनुज्ञाता त्यक्ष्याम्येतत् कलेवरम्।
तेशामिच्छाम्यहं गन्तु समीपं भावितात्मनाम्।
मुनीनामश्रमो येषामहं च परिचारिणी।।

शबरी के धर्मयुक्त वचनों को सुनकर श्रीराम उसे उसके अभीष्ट लोक जाने की आज्ञा दे देते हैं। आज्ञा प्राप्तकर जटाधारी एवं शरीर पर चीर एवं काला चर्म धारण करने वाली शबरी स्वयं को अग्नि को सौंप देती हैं तथा प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी देह प्राप्त कर दिव्य वस्त्र, आभूषणों, माला, अनुलेपन से युक्त हो स्वर्ग लोकगमन करती है जहाँ उसके गुरुजन महर्षि विहार करते थे–

यत्र ते सुकृतात्मानो विहरन्ति महर्षयः।
तत् पुण्यं शबरी स्थानं जगामात्मसमाधिना।।

उक्त समस्त विश्लेषण उपरांत कवि नरेश मेहता कृत 'शबरी' खंडकाव्य तथा वाल्मीकि रामायण में वर्णित शबरी प्रसंग संबंधी साम्य, वैषम्य एवं नवीन उद्‌भावना संबंधी कुछ बिंदु प्रस्तुत हैं–

साम्य

1. दोनों में शबरी नामक पात्र तथा उसके श्रमणा एवं शबरी नाम का वर्णन मिलता है
2. दोनों काव्यों में पंपासर की शोभा का वर्णन किया गया है।
3. मतंग ऋषि एवं उनके शिष्यों का होना।
4. शबरी का आश्रम में रहना एवं मुनियों की सेवा करना।
5. मतंग ऋषि का शबरी को आशीर्वाद देना कि वह राम के दर्शन से अक्षय लोक को प्राप्त करेगी।
6. शबरी के तेज एवं तपस्या, योग–समाधि का वर्णन अर्थात् योगिनी रूप का चित्रण।
7. राम–लक्ष्मण दोनों का मतंग ऋषि के आश्रम में पहुँचना।
8. आश्रम में रहते हुए शबरी द्‌वारा राम की प्रतीक्षा करना।
9. शबरी द्‌वारा राम का आदर–सत्कार करना।
10. शबरी द्‌वारा देह का परित्याग करना।

वैषम्य

1. वाल्मीकि रामायण में शबरी की वृद्‌धावस्था का चित्रण तथा श्रमणा एवं सिद्‌ध दो नामों का वर्णन मिलता है।

नरेश मेहता के काव्य में केवल श्रमणा नाम का वर्णन है किंतु शबरी के वैशिष्ट्य हेतु कवि ने अन्य कई विशेषणों का प्रयोग अवश्य किया है।

2. पंपा सरोवर एवं उसके आसपास के वातावरण का विस्तृत वर्णन वाल्मीकि रामायण में मिलता है जबकि नरेश मेहता के खंडकाव्य में संक्षिप्त वर्णन है।

3. वाल्मीकि रामायण में राम शबरी से कहते हैं कि कबंध के मुख से उन्होंने मतंग ऋषि का प्रभाव सुना है। अतः शबरी यदि तुम स्वीकार करो तो मैं उनके प्रभाव को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। तब शबरी श्रीराम को आश्रम के विभिन्न स्थानों जैसे प्रत्यकस्थली नामक वेदी, सप्तसागर तीर्थ आदि के दर्शन करवाती है। नरेश मेहता रचित शबरी खंडकाव्य में ऐसा कोई प्रसंग नहीं है जब शबरी ने मतंग ऋषि के विभिन्न स्थानों की जानकारी या दर्शन श्रीराम को करवाए हों।

4. वाल्मीकि रामायण में शबरी देह परित्याग की आज्ञा राम से माँगती है। आज्ञा मिलने पर स्वयं अग्नि को सौंप शबरी तेजस्वी देह प्राप्त करती है और दिव्य वस्त्रों, दिव्य आभूषणों, दिव्य पुष्पमाला से अलंकृत हो स्वर्गलोक की ओर जाती है। नरेश मेहता जी के शबरी खंडकाव्य में ऐसा नहीं है। वहाँ शबरी की देह से योगाग्नि को प्रज्वलित होते दिखाया गया है तथा उसके स्वर्गलोक प्रस्थान करने के समय वहाँ उपस्थित जन उसकी अनन्य भक्ति एवं तपस्या के समक्ष नतमस्तक हो जय जयकार करते हैं तथा मतंग ऋषि अविचल भाव से सब देखते हैं। उनके मन को अत्यंत संतोष मिलता है कि आज शूद्रा शबरी ने शक्ति रूप धारण कर अंततः अपने लक्ष्य को प्राप्त कर ही लिया।

5. वाल्मीकि रामायण में दिखाया गया है कि मतंग ऋषि एवं उनके शिष्य स्वर्गलोक गमन कर चुके हैं। जबकि कवि नरेश मेहता जी ने अपने खंडकाव्य में उन्हें जीवित दिखाया है।

6. वाल्मीकि रामायण में वर्णित है कि राम–लक्ष्मण दोनों शबरी के आश्रम में आते हैं तथा शबरी उनका सत्कार करती है। कवि नरेश मेहता ने अपने खंडकाव्य में चित्रित किया है कि मतंग ऋषि स्वयं राम–लक्ष्मण को आदरसहित आश्रम लेकर जाते हैं।

7. वाल्मीकि रामायण में शबरी राम–लक्ष्मण के खाने के लिए जंगली फल–मूलों को एकत्रित करके उनके सामने परोसती है। कवि नरेश मेहता जी ने अपने खंडकाव्य में राम के सत्कार हेतु शबरी को जंगली बेर परोसते हुए चित्रित किया है। साथ ही दिखाया गया है कि प्रभु प्रेम से ओतप्रोत शबरी प्रत्येक बेर को पहले स्वयं चखती तथा जो बेर मीठा होता, वही श्रीराम को खाने के लिए देती। यह सब देखकर लक्ष्मण विस्मित हो जाते हैं।

8. वाल्मीकि रामायण में राम को शबरी के आश्रम में पहुँचते हुए चित्रित किया गया है तथा नरेश मेहता के काव्य में शबरी की कुटिया एवं मतंग ऋषि के आश्रम का वर्णन मिलता है।

9. वाल्मीकि रामायण में चित्रित है कि शबरी अकेले राम–लक्ष्मण के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है किंतु शबरी खंडकाव्य में शबरी को मतंग ऋषि के साथ रहते हुए आश्रम की देखभाल करते हुए तथा राम की प्रतीक्षा करते चित्रित किया गया है।

10. नरेश मेहता द्वारा शबरी को विवाहित दिखाया गया है यद्यपि वाल्मीकि रामायण में उसके पारिवारिक जीवन का कोई संकेत नहीं मिलता।

11. कवि ने शबरी के परिवार की वेशभूषा में लंगोट आदि पहनने का वर्णन तो किया है किंतु शबरी की वेशभूषा का वर्णन नहीं मिलता यद्यपि वाल्मीकि रामायण में शबरी को मस्तक पर जटा एवं शरीर पर चीर तथा काला मृग–चर्म धारणकर चित्रित किया गया है।

नवीन उद्भावनाएँ

1. कवि नरेश मेहता जी ने त्रेता सर्ग में तत्कालीन समय की वर्ण व्यवस्था, उसके कृत्यों एवं परंपराओं का वर्णन किया है।

2. तत्कालीन जातियों की आर्थिक व्यवस्था, जीवनयापन के स्त्रोत यथा–ब्राह्मणों द्वारा तपस्या करना, क्षत्रियों को रक्षक तथा वैश्य लोगों को व्यापारी रूप में चित्रित किया गया है।

3. वन्य/शबर जाति का वर्णन करते हुए उनके कार्य (पशु बलि), आखेट तथा भोजन (मांस पकाना) द्वारा घृणित एवं जुगुप्सित वातावरण की सृजना कर बीभत्स रस की सशक्त व्यंजना की गई है।

4. शबरी द्वारा स्वयं को पशुबलि कार्य हेतु धिक्कारना, घृणा करना पारिवारिक मोह–बंधन का त्यागकर घर छोड़कर चले जाना।

5. त्रेता सर्ग में ही शबरी द्वारा कवि ने संकेत किया है कि किसी साधु ने उसे श्रमणा नाम दिया था परंतु किस साधु ने किस समय यह नाम दिया, यह वृत्तांत प्राप्त नहीं होता।

6. शबरी की तपस्या, भक्ति का मूर्तरूप चित्रित है।

7. पंपासर सर्ग में कवि ने पंपासरोवर का संक्षिप्त वर्णन कर शबरी को मतंग ऋषि की प्रतीक्षा करते एवं उनसे मिलने पर अपनी जाति एवं अपने आने का प्रयोजन बताते हुए दिखाया है। शबरी के अंत्यज एवं अस्पृश्य होने के कारण जब ऋषि उसे आश्रम में स्थान देने में संकोच करते हैं तब शबरी कहती है कि क्या आत्मिक विकास, आध्यात्मिक साधना पर केवल उच्चजाति का ही अधिकार है। वह प्रभु सभी का पिता है फिर भेदभाव क्यों उसका यह उत्तर सुनकर मतंग ऋषि उसे गौशाला की देखभाल सौंप देते हैं।

8. तपस्या सर्ग में शबरी की दिनचर्या, उसकी प्रभु मिलन की इच्छा, रात में प्रभु विरह में आँसू बहाना, ऋषि द्वारा उसे प्रभु दर्शन का आशीर्वाद देने का विस्तृत विवरण मिलता है।

9. आगे परीक्षा सर्ग कवि की नवीन कल्पना है जो सामाजिक यथार्थ की बोधक है, का सशक्त प्रमाण है। इस सर्ग में कवि ने सामाजिक उच्छृंखलता, मानव/समाज की स्वार्थी एवं ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का सजीव चित्रण किया है। किसी मानव को उन्नति के पथ पर बढ़ता देखकर चाहे वह उच्च हो या शूद्र हो, दूसरा व्यक्ति कैसे बौखला जाता है, वह उसे नीचा गिराने के लिए हर प्रत्येक संभव प्रयास करता है। इसका सशक्त प्रमाण है आश्रमवासी, जो शबरी को वहाँ से निकालने के लिए उसके पति को उसके विरुद्ध भड़का देते हैं, किंतु सच्चे मन एवं सात्विकता के समक्ष कोई बुराई टिक नहीं पाती, इस सत्य को उद्घाटित किया है कवि ने शबरी के आचरण, तेज एवं पवित्रता के माध्यम से। जब शाबर दलसहित उसका पति उसे दबोचने लगता है तो शबरी की तपस्या के तेज से वह दग्ध हो मतंग ऋषि से क्षमा माँग शबरी को छोड़ वापस चले जाते हैं। शबरी तपस्या में इतनी लीन होती है कि उसे बाहर हो रही इस घटना का किंचित भी आभास मात्र नहीं होता।

10. 'दर्शन' सर्ग के प्रारंभ में ही आश्रमवासियों के विरोध को जारी रखते हुए पाठकों को सीताहरण की जानकारी कवि द्वारा दी गई है। सीता की खोज हेतु राम–लक्ष्मण का वन–वन भटकते हुए आश्रम में पहुँचना, मतंग ऋषि द्वारा स्वयं उनको आश्रम में लेकर आना, शबरी का उनके सम्मुख बेर रखना, चखकर देना, राम का भक्तप्रेम के वशीभूत होकर जूठे बेर खाना, भक्त एवं प्रभु के अनन्य प्रेम संबंध को दर्शाता है। तत्पश्चात् शबरी की देह से योगाग्नि का प्रज्वलित होना, उसका स्वर्गगमन करना, जिसे देखकर मतंग ऋषि के मन में संतोष भाव की उत्पत्ति पूर्णतः नवीन एवं मौलिक प्रसंग है। जो इस बात का संकेत है कि व्यक्ति के कर्म, चरित्र, व्यवहार ही उसकी पहचान एवं अस्तित्व का मूल कारण हैं।

11. शबरी के चरित्र की अभिव्यक्ति हेतु कवि द्वारा उसके लिए अनेक विशेषणों यथा– प्रथम श्लोक, योगी, तुलसी, जगजननी, शिव–शक्ति रूप, मंत्र, यज्ञ, कृष्ण–कमल, नभ–अरूणा, श्यामा, शिव, तपस्या, परम–सती आदि का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त उसके उच्च व्यक्तित्व एवं अस्तित्व को चित्रित करते समय कवि ने शबरी की तुलना चंदन की सुगंध से, मंदार–पुष्प से, दूज के चाँद से उसके नैनौं की तुलना, उसकी हँसी से धूप की तुलना करते हुए उसे महाभाव की परिभाषा एवं योग–अग्नि कहा है जो समाज में व्याप्त भेदभाव का पूर्णतः खंडन एवं निष्कासन करते हुए मानव को संदेश देती है कि जन्म से शूद्र मानव भी अपने शुभकर्मों द्वारा श्रद्धेय एवं पूजनीय हो सकता है।

निष्कर्ष रूप में नरेश मेहता जी द्वारा रचित 'शबरी' खंडकाव्य की वाल्मीकि रामायण से तुलना करने पर जो समानताएँ, असमानताएँ एवं नवीन उद्भावनाएँ हमारे समक्ष आती हैं, वह कवि की नवीन मौलिक विलक्षण प्रतिभा का सशक्त प्रमाण है। शबरी के प्रसंग को काव्य रूप में प्रस्तुत कर कवि ने जनसामान्य के समक्ष शुभ एवं

सेवाभाव से परिपूर्ण कर्मों एवं पवित्र भावों का उच्च दृष्टांत तो प्रस्तुत किया है साथ ही भेदभाव दमन की बलवती इच्छा भी समाज में जागृत करते हुए अपने अधिकारों के प्रति मानव को सजग किया है। वाल्मीकि रामायण में वर्णित शबरी प्रसंग भी इसी प्रयोजन की अभिव्यक्ति है। आश्रम के प्रति शबरी का समर्पण भाव तथा राम के प्रति शबरी की निष्काम भक्ति, उसका संतोष, धैर्य यह संदेश देता है कि सामाजिक एवं नैतिक मान्यताओं का आधार व्यक्ति के कर्म है, आचरण हैं, उसकी जाति नहीं। राम द्वारा शबरी का आतिथ्य स्वीकार करना भी भेदभाव की भावना पर तीक्ष्ण प्रहार है। राम का व्यक्तित्व इस बात का साक्षी है कि व्यक्ति को कभी भी किसी के जन्म को लेकर उससे भेदभाव भरा व्यवहार नहीं करना चाहिए। सात्विक गुणों की प्रतीक शबरी एक ऐसा पात्र है जो वर्तमान के विसंगतिपूर्ण वातावरण में भटके हुए व्यक्तित्व के पुनःसंस्कार हेतु अत्यधिक प्रासंगिक है।

संदर्भ–ग्रंथ

1. श्री नरेश मेहता 'शबरी', दिल्ली, लोकभारती प्रकाशन, 2012, त्रेता सर्ग– पृ. 15–18, पंपासर सर्ग–पृ. 17–22, तपस्या सर्ग– पृ. 27–34, परीक्षा सर्ग–34–47, दर्शन सर्ग 53–60।

2. वाल्मीकि रामायण, अध्याय 73 एवं 74, गीता प्रेस, गोरखपुर।

संपर्क

बसंतपुरा मोहल्ला, नीयर अमरदीप अस्पताल, नाभा, जिला–पटियाला, पंजाब–147201, फोन–8288008754, ई मेल–deep.nav0506@gmail.com

❑❑❑

दलित आत्मकथाओं में 'स्व' का बदलता चरित्र और प्रतिनिधित्व का सवाल

दिनेश कुमार वर्मा
विविध पत्र–पत्रिकाओं में लेखन। संप्रति–शोधार्थी, अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

आज दलित साहित्य प्रचुरता से लिखा और पढ़ा जा रहा है। दलित साहित्य निरंतर परंपरावादी साहित्यिक मानदंडों से टकराते हुए व तमाम नकार, उपेक्षा, तिरस्कार से लड़ते–भिड़ते हुए ही वर्तमान में अपनी पहचान स्थापित कर सका है। आत्मकथा को दलित साहित्य की सबसे सशक्त विधा माना गया है। जहाँ एक लेखक अपने सुदूर अतीत से लेकर अपने निकट अतीत (समकाल) की घटनाओं को समेटता है, लेकिन आत्मकथा लेखक के अतीत और समकाल के बीच क्या कोई परिस्थितिजन्य भेद होता है? क्या यह भेद आत्मकथा में चित्रित लेखक के 'स्व' पर कोई प्रभाव डालता है? परिस्थितिजन्य भेद होने या न होने का क्या आत्मकथा के रूप और अंतर्वस्तु पर कोई प्रभाव पड़ता है? परिस्थितिजन्य भेद के बावजूद भी क्या लेखक स्वानुभूति को अपनी अभिव्यक्ति का आधार बना सकता है? या फिर जिस अनुभूति को वह स्वानुभूति कहकर संबोधित कर रहा है, वह परिस्थितिजन्य भेद के बाद क्या अब उसकी स्वानुभूति न रहकर अपने भूतकाल के प्रति सहानुभूति मात्र ही तो नहीं है? इसका अध्ययन हम लेख के अग्रिम अंशों में करेंगे।

दलित साहित्य में आत्मकथा प्रमुखता से लिखी गई है, जिसके संबंध में श्यौराज सिंह 'बेचैन' लिखते हैं कि ''जो लोग सच में दलितों की समस्याएँ समझना चाहते हैं, कुछ समाधान देना चाहते हैं। उनके लिए आत्मवृत्तों से बढ़कर कोई माध्यम नहीं हो सकता।''[1] सामान्यतः दलित लेखक आत्मकथा को दलित जीवन के यथार्थ–अभिव्यक्ति की सबसे सशक्त व प्रमाणिक विधा मानते हैं। उनका मानना है कि एक दलित लेखक का 'मैं' केवल लेखक का 'मैं' नहीं होता बल्कि इस 'मैं' के माध्यम से वह संपूर्ण दलित समुदाय के 'हम' का प्रतिनिधित्व करता है। जिसके बारे में ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, ''दलित रचनाकार अपने परिवेश और समाज के गहरे सरोकारों से जुड़ा है। वह अपने निजी दुःख से ज्यादा समाज की पीड़ा को महत्व देता है। जब वह 'मैं'

शब्द का प्रयोग कर रहा होता है तो उसका अर्थ 'हम' ही होता है।''[2] किंतु क्या प्रतिनिधित्व का सवाल इतना सहज, सरल और स्पष्ट है कि एक लेखक दलित जाति में पैदा होने भर से ही दलित समाज का प्रतिनिधि बन सकता है? संपूर्ण दलित समाज का प्रतिनिधित्व करने के दावे को 'दलित–स्त्री' लेखिकाओं और दलितों में भी नीच समझी जाने वाली अन्य दलित जातियों के लेखकों द्वारा ख़ारिज कर दिया गया है। इसी तरह एक दलित लेखक जो समाज में दलित होने के साथ–साथ दरिद्रता के दंश–भूख, बीमारी, बेकारी को भी झेलता है, लेकिन अपने भविष्य के निर्माण–क्रम में वह क्रमशः दरिद्रता के दंश से बाहर आता हुआ दिखलाई पड़ता है, तो क्या ऐसे में एक दलित लेखक जो वर्तमान में दरिद्रता के दंश से बाहर आ चुका है। क्या अब वह 'मैं' के माध्यम से समाज के 'हम' यानी उस बहुसंख्यक दरिद्र–दलित आबादी की वेदनाओं, पीड़ा व उसके दंश–भूख, बीमारी, बेकारी को अभिव्यक्ति दे सकने में सक्षम होगा? यह सघन जाँच की अपेक्षा रखता है।

दलित आत्मकथाओं के बारे में प्रायः कहा जाता है कि यह 'स्व की विलक्षणता' को स्थापित करने वाली परंपरागत आत्मकथाओं से भिन्न दलित समाज के 'हम' की दारुण पीड़ा को उकेरने वाली आत्मकथा है। लेकिन इन आत्मकथाओं में मध्यमवर्गीय दलित लेखक का 'स्व' अपने भूत में दलित समाज के 'हम' के नजदीक व समकाल में उससे दूर दिखलाई पड़ता है। श्यौराज सिंह 'बेचैन' की आत्मकथा में आए अंशों के आधार पर समझने की कोशिश करें तो इस तर्क की पुष्टि हो जाती है। श्यौराज के सौतेले पिता जब भट्ठे के एक ठेकेदार से पेशगी यानी एडवांस रूपया लेकर दोनों बहन–भाइयों को भट्ठे पर भेजना तय करते हैं, तब श्यौराज सिंह भट्ठे की कार्यदशा का जिक्र करते हुए कहते हैं, ''भट्ठों पर मिट्टी के लौंदे बनाने, मिट्टी काटने, सुखाने, चट्टा लगाने, ईटं के ऊपर ईंट एक पंक्ति में लगाने के लिए बच्चों के श्रम का बहुत उपयोग होता था। ठेकेदारों का फायदा था। आधी–मजदूरी देनी पड़ती थी। इससे बच्चों का स्वास्थ्य चौपट हो जाता था। भारी श्रम और भागदौड़ करने से बच्चे थक कर चूर हो जाते थे।''[3] लेकिन वर्तमान में जब 'लेखक' श्यौराज सिंह 'बेचैन' पाली का दौरा करते हैं, तो भट्टों पर कार्यरत लोगों के आँकड़े भर इकट्ठा करते हैं। वह लिखते हैं– ''बीस को मैंने पाली का दौरा किया यहाँ से भट्टे पर गए लोगों की सूची तैयार की। एक सौ चार जाटव सदस्य हैं।''[4] 'बेचैन' अपने बचपन में दलित पात्रों की दशा और अनुभव को बहुत गहराई से व्यक्त करते हैं खासकर; ईट भट्टे के इर्द–गिर्द की जिंदगी के बारे में। वहीं जब वह वर्तमान में ईंट–भट्टे का वर्णन करते हैं तो आँकड़े भर इकट्ठा करते हैं, जबकि वहाँ पर कार्यरत मजदूरों की कार्यदशाएँ, उनके शोषण, उत्पीड़न को अपने 'स्व' का अंग नहीं बना पाते हैं, जिसके चलते वह उनकी आत्मकथा का अंग नहीं बनते हैं। दरअसल, ऐसा लेखक के परिस्थितिजन्य विभेद के फलस्वरूप हुआ है।

'मुर्दहिया' के लेखक तुलसीराम को मुर्दहिया के उजड़ने की बात सुनकर अत्यधिक दुःख महसूस होता है। तुलसी राम 'मुर्दहिया' की भूमिका में लिखते हैं कि ''सबसे ज्यादा दुखित करने वाली बात दिल्ली में रह रहे मेरे गाँव के कुछ प्रवासी मजदूरों से मालूम हुई। पचास–साठ साल पहले की जिस 'मुर्दहिया' का वर्णन मैंने किया है, वह पूर्णरूपेण उजड़ चुकी है।''[5] इसी क्रम में वह आगे लिखते हैं कि ''प्रवासी मजदूरों से ही पता चला कि 'मुर्दहिया' से होकर जाने वाली एक सरकारी सड़क ने हमारे गाँव को तीन जिलों– आजमगढ़, गाजीपुर तथा बनारस से जोड़ दिया है। उस पर टैंपो भी चलने लगे हैं। जिस तरह हमारे गाँव से बड़ी संख्या में मजदूरों का पलायन बड़े शहर में हो चुका है, संभवतः 'मुर्दहिया' से सड़क निकल जाने के कारण वहाँ से भूत–पिशाचों का भी पलायन अवश्य हो गया होगा।''[6] तुलसीराम को 'मुर्दहिया' के उजड़ने की सूचना प्रवासी मजदूरों से मिलती है, जिसका अर्थ है कि लेखक का गाँव से कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं रहा है। संभव है कि जिस 'मुर्दहिया' के उजड़ने से लेखक ग़मगीन है, वहीं गाँव के स्थानीय निवासी 'मुर्दहिया' के उजड़ने और वहाँ से शहर के लिए सड़क निकलने को लेकर खुश हों, क्योंकि सड़क निकलने और उसका तीन शहरों से जुड़ने का अर्थ गाँव के लोगों का शहर तथा शहरी रोजगार तक पहुँच का बढ़ना है। गाँव की पूरी संरचना जातिवाद की पोषक रही है। ऐसे में गाँव के दलितों का शहर तक पहुँचना जातीय–संरचना के शिकंजे से मुक्त होने का संकेत देता है। जब एक दलित आर्थिक मसलों को लेकर गाँव की अर्थसंरचना से आत्मनिर्भर होता है, तब वह प्रकारांतर से जातिवाद की शोषणकारी व्यवस्था से भी एक हद तक मुक्ति हासिल कर लेता है। तुलसीराम 'मुर्दहिया' के उजड़ने से दुखी हैं क्योंकि यह 'मुर्दहिया' लेखक के अतीत जीवन व उनकी अनेक यादों का अभिन्न हिस्सा रही है। 'मुर्दहिया' अगर कहें तो स्थानीय दलितों के लिए जातीय शोषण व अपमान का प्रतीक रही है लेकिन इसके बावजूद भी तुलसीराम 'मुर्दहिया' के उजड़ने पर दुखी होते हैं, क्या ऐसा दलित लेखक के जीवन में आए परिस्थितिजन्य भेद या वर्गांतरण के फलस्वरूप हुआ है? यही नहीं तुलसीराम वर्गीयविभेद के कारण ही इन प्रवासी मजदूरों को अपनी स्वानुभूति का अंग नहीं बना सके और इसीलिए वह उनकी जीवन स्थितियों, उनकी कार्यदशा, उनकी जातीय स्थिति व आर्थिक दुर्दशा का कोई ब्यौरा नहीं देते हैं।

'जूठन' को दलित समाज की पीड़ा का आत्मकथात्मक महाकाव्य माना गया है। लेकिन 'जूठन' में आए अनेक उदाहरणों से ऐसा लगता है कि जैसे अब शोषण काम के स्थान और काम के आधार पर न रहकर जैसे प्रेमसंबंधों के विच्छेद, ड्रांइग रूम व सरकारी कार्यालयों तक ही सिमटकर रह गया है। उदाहरणार्थ– ''मैंने साफ़ शब्दों में कह दिया था कि मैंने उत्तरप्रदेश के चुहड़ा परिवार में जन्म लिया है।

सविता गंभीर हो गई थी। उसकी आँखें छलछला आई। उसने रुआंसी होकर कहा, झूठ बोल रहे हो न?

नहीं सवि... यह सच है... जो तुम्हें जान लेना चाहिए.... मैंने उसे यकीन दिलाया था।

वह रोने लगी थी। मेरा एस.सी. होना जैसे कोई अपराध था व काफी देर सुबकती रही। हमारे बीच अचानक फासला बढ़ गया था। हजारों साल की नफरत हमारे दिलों में भर गई थी। एक झूठ को हमने संस्कृति मान लिया था।''[7]

'जूठन, भाग–2' में अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जहाँ लेखक मध्यमवर्गीय सवर्ण 'अन्य' द्वारा अपमानित होने पर ही समाज में मौजूद क्रूर जातिगत–संरचना की स्थिति को महसूस करता हुआ दिखलाई पड़ता है, जिससे लगता है कि लेखक जाति की मौजूदगी को गाँव में नहीं, खेतों में नहीं, दलित मजदूरों के कार्यस्थलों में नहीं बल्कि सरकारी कार्यालयों में, मध्यमवर्गीय आवासीय कॉलोनियों में ही देख पाता है। ओमप्रकाश देहरादून निवास के दौरान किराए पर घर न मिलने के प्रसंग के बारे में लिखते हैं, ''जहाँ भी गया वहाँ पहले जाति पूछी गई। मकान मालिक साफ़ शब्दों में कहते थे, ना जी,किसी चूहड़े–चमार को मकान नहीं देंगें।''[8] इसी तरह ओमप्रकाश सरकारी कार्यालय में उच्च अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले जातीय दुर्व्यवहार का जिक्र करते हुए लिखते हैं,'' उस समय वहाँ महाप्रबंधक के पद पर पी.के.मिश्रा थे और संयुक्त महाप्रबंधक (प्रशासन) ए.के. वार्ष्णेय जी थे।... शायद यह सब मेरे 'वाल्मीकि' सरनेम की बदौलत ही मुझे दिया गया था। मेरा तकनीकी ज्ञान इस सरनेम के कारण, एक बार फिर से कहीं पीछे धकेल दिया गया था। एक ऐसा अनुभाग जो पूरी आवासीय कॉलोनी की साफ़–सफाई से लेकर सीवेज आदि के काम को देखता था। उस अनुभाग में सौ से ज्यादा सफाईकर्मी और इतने ही श्रमिक थे।''[9] यह उद्धरण देश के सरकारी कार्यालयों में पसरे जातिवादी माहौल को दिखाता है, लेकिन प्रश्न बनता है कि आत्मकथा में जातिवाद, जातीय उत्पीड़न की अभिव्यक्ति केवल उसी समय क्यों दिखाई पड़ती है, जब लेखक के साथ ऐसा कुछ घटित होता है।

इस्टेट अनुभाग में कार्यरत किसी एक सफाई कर्मचारी के नाम का भी जिक्र लेखक ने आत्मकथा में नहीं किया है, जबकि वह आत्मकथा में अपने अधिकारियों व सवर्ण समाज के मित्रों का नाम अनेकों बार लेते हैं। क्या इसका कारण ओमप्रकाश के अधिकारी पद पर नियुक्त होने को माना जा सकता है? उन्होंने लगभग 100 सफाई कर्मचारियों के साथ मिलकर काम किया लेकिन वह इनमें से किसी भी पात्र को अपनी स्वानुभूति का अंग नहीं बना पाते, जिससे यह कर्मचारी उनकी आत्मकथा में केवल आँकड़े के तौर पर ही दर्ज होते हैं।

दलित लेखक जिस समय आत्मकथा लेखन में प्रवृत्त होता है, उस समय वह मध्यमवर्ग का हिस्सा बन चुका होता है। यह वर्ग–परिवर्तन उसकी चेतना में परिवर्तन

का कारण भी बनता है, जिसका उदाहरण दया पवार की आत्मकथा 'अछूत' में भी देखने को मिलता है। वह लिखते हैं, ''ऐसी काली पत्नी मेरे विचारों के बाहर थी। गोरी लड़कियों के सपने आते, एक ही सपना था कि बच्चे बनिए–ब्राह्मणों से हों।''[10] इसी तरह का एक और उदाहरण 'अछूत' में देखने को मिलता है जहाँ लेखक अपनी पत्नी को गोल साड़ी पहनाने की इच्छा का वर्णन करते हुए कहते हैं, ''गोल साड़ी में सई (लेखक की पत्नी) कैसी ब्राह्मणों, सवर्णों सी दिखेगी, यह मेरी कल्पना होती। परंतु मैं यही कभी नहीं कर सका।'[11]

दलित लेखकों की आत्मकथाओं से उद्धत विभिन्न प्रसंगों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि दरिद्रता से मुक्त लेखक के जीवन में आया वर्गीय परिवर्तन यथार्थ के प्रति उसके दृष्टिकोण व उसकी समझ को बदल देता है। लेखक गतिमान दलित यथार्थ व वर्तमान में मौजूद दलित उत्पीड़न के विविध रूपों को वर्ग–परिवर्तन के कारण अब समझने में असफल रहता है, इसलिए दलित आत्मकथाओं में सामान्यतः यह देखा गया है कि दलित लेखक के अतीत में दलित समाज सघन रूप से मौजूद रहता है, लेकिन लेखक जैसे–जैसे अपने समकाल की ओर बढ़ता जाता है, वैसे–वैसे ही उसकी आत्मकथा में दलित पात्रों की संख्या अपेक्षतया कम होने लगती है और सवर्ण 'अन्य' की मौजूदगी क्रमशः बढ़ती जाती है। अब लेखक सवर्ण 'अन्य' के साथ ही ज्यादा संबंध बनाए हुए दिखलाई पड़ता है। वर्गीय परिवर्तन के बाद अब एक मध्यमवर्गीय दलित लेखक जब भी दलित समाज को समझने की कोशिश करेगा, जब वह दरिद्रता से मुक्त हो चुके एक बाहरी व्यक्ति की हैसियत से ही दलित समाज को समझेगा।

वहीं, जब एक दरिद्र–दलित लेखक रचनात्मक कार्य या आत्मकथा लेखन में अनुरक्त होता है तो वह दलित समाज को एक बाहरी व्यक्ति के तौर पर नहीं देखता। वह उस दलित समाज का अभिन्न हिस्सा है, जो जिंदगी में दरिद्रता–दलित्ता से त्रस्त है, जो भूख से पीड़ित है, जो बीमारी, बेकारी, लाचारी, शोषण अपमान को झेलने को मजबूर है। उसका इर्द–गिर्द सामान्यतः इन्ही दलित पात्रों व ऐसी ही समान वीभत्स परिस्थितियों में जीने वाले अन्य दरिद्र पात्रों से भरा रहता है। उसकी आत्मकथा की घटनाएँ भी इन्हीं दरिद्र–दलित पात्रों से ही संबंधित होती है। जिसे हम मनोरंजन व्यापारी की आत्मकथा 'इंटेरोगेटिंग माई चाण्डाल लाइफ' में आए ऐसे ही अनेक प्रसंगों के माध्यम से समझने की कोशिश करेंगे।

मनोरंजन व्यापारी का 'स्व' चूँकि अपने अतीत से लेकर अपने लेखनकार्यों में संलग्न होने तक लगभग एक–सी वर्गीय स्थिति में मौजूद रहता है जिससे लेखक का 'स्व' उसकी आत्मकथा में समय के प्रवाह में विभक्त होता दिखाई नहीं पड़ता है। लेखक दलित पात्रों के साथ–साथ समान दरिद्र स्थितियों में जीवनयापन करने वाले पात्रों को भी अपनी आत्मकथा का अंग बनाता हैं। हालाँकि लेखक को प्रत्यक्ष और

अप्रत्यक्ष रूप से अनेक बार जातीय–उत्पीड़न से अभिशप्त होना पड़ा है, लेकिन दरिद्रता ने लेखक को निरंतर व प्रत्यक्ष रूप से जीवन की एक दीर्घ समयावधि तक प्रभावित किया है। यही कारण है कि मनोरंजन के जीवन में दलित्ता और दरिद्रता विभक्त होकर नहीं, बल्कि युग्म की तरह आती है। दरिद्रता और दलित्ता के इसी युग्मबंधन के कारण दलित लेखक अपने समकाल में भी दलित समाज से विछिन्न नहीं होता है, उससे दूर नहीं होता है, जिसके चलते लेखक यथार्थ को उसकी गतिमयता में अत्यधिक निकटता और स्पष्टता से देख–समझ सका है।

लेखक आत्मकथा में मात्र अपनी ही कथा नहीं कहता बल्कि अपने समकाल में कमोबेश समान दरिद्र स्थितियाँ झेलने वाले पात्रों की आर्थिक स्थिति, कार्य–स्थिति, उनके परिवार व उनके अतीत के संघर्ष की कथा का बयान भी करता है। चाहे फिर वह पात्र दलित हो या न हो, यह लेखक के लिए मायने नहीं रखता। ऐसा ही एक उदाहरण हमें नरेश ठाकुर के जीवन, उसके अतीत के बारे में लेखक द्वारा दिए गए व्यापक वर्णन में मिलता है, लेखक ने लिखा है, ''नरेश ठाकुर की पत्नी उसे दो लड़कों और दो लड़कियों के साथ छोड़कर मर गई थी। वह एक महीने कभी इस मकान तो कभी उस मकान में रहता और कभी फुटपाथ पर भी। वह अनपढ़ था और कोई हस्तशिल्प भी नहीं जानता था। साथ ही उसका शरीर किसी भी तरह के शारीरिक श्रम से जुड़े कार्यों को करने में असमर्थ था। उसे क्यों जीना चाहिए था? कुछ दिनों बाद बेटों व बेटियों ने उसको छोड़ दिया।''[12] नरेश ठाकुर की तरह ही लेखक अनिल, बिल्लू, बासु, रिक्शावालों, जेल के कैदियों की स्थिति के बारे में (कि कुछ कैदियों से मिलने उनके परिवार के लोग इसलिए नहीं आते थे कि उनके पास पैसे की कमी होती थी, कई कैदी पैसे की कमी के कारण जमानत नहीं ले पाते थे जिससे उन्हें अपराध के लिए निर्धारित सजा से भी कई ज्यादा वर्षों तक जेल में गुजारने पड़ते थे।) तथा अन्य ऐसे कई पात्रों के बारे में जिक्र करता है, जो उसके जैसे ही दरिद्र परिवेश से आते हैं।

लेखक समाज में व्याप्त वर्गीय–भेद को अपनी त्रासदियों के माध्यम से बखूबी समझ सका है, लेखक का कहना है कि ''यह एक अभिशाप जीवन है। माँ इस क्रूर संसार में हमारे लिए कुछ भी बाकी नहीं है। हमारे पैदा होने से पहले ही संसार की सारी संपत्ति और संसाधन हड़प लिए गए है। वे हमें कुछ भी देने को तैयार नहीं हैं। वे हमारे आँसुओं, हमारे श्रम को कोई महत्व नहीं देते हैं।... हम यहाँ बकरी और कुत्ते से भी कमतर है।''[13] यही कारण है कि लेखक इस दरिद्रता के खिलाफ और बराबरी के लिए लड़ने की जरूरत को महसूस करता है। उसका कहना है, ''हमारे दिमाग में यही आता है और कुछ नहीं आता। हमको इस समाज में बराबरी का अधिकार है। आपसे हम छोटे नहीं हैं। हमको स्वीकार करो और आपके लिए जो रास्ता खुला है, हमारे लिए भी वह सब रास्ता खुला होना चाहिए। कोई रुकावट आनी नहीं चाहिए;

बस यही हमारी इतनी ही माँग है अगर कोई रुकावट आएगी तो उसको तोड़ने के लिए हम मार्क्सवाद, अंबेडकरवाद, जरूरत पड़ने पर और किसी वाद जो हम नाम नहीं लेना चाहते, वह सब हम कर सकते हैं और करेंगे।''[14]

लेखक मनोरंजन किराए पर कमरा न मिलने के बारे में लिखते हैं, ''एक निम्नआय वाले इलाकों और इसके इर्द–गिर्द के इलाकों में, अकेले आदमी खासकर; जब वह रिक्शावाला हो तो मकान मालिक उस पर विश्वास नहीं करते थे।''[15] लेखक को कमरा मिलने में आने वाली दिक्कतों का कारण जाति की अपेक्षा उसकी दरिद्रता व पेशा अधिक है।

मनोरंजन व्यापारी की आत्मकथा में आए पात्र, घटनाएँ, स्थितियाँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि मनोरंजन के जीवन में दलित्ता और दरिद्रता विभक्त नहीं है, वह एक साथ जीवन के हर मोड़ पर लेखक के जीवन का हिस्सा रही है। लेखक का 'स्व' बदलता नहीं हैं। यही वजह है कि लेखक जिन पात्रों को अपनी आत्मकथा का अंग बनाता है, वह मध्यमवर्गीय नहीं, बल्कि मनोरंजन की तरह ही दरिद्रता व गरीबी के शिकार हैं। वहीं ओमप्रकाश वाल्मीकि, तुलसीराम, श्यौराज सिंह 'बेचैन' आदि प्रमुख दलित साहित्यकारों की आत्मकथाओं में लेखक के अतीत का 'स्व' निम्नवर्गीय परिस्थितियों के बीच निर्मित होता है, वहीं उसका वर्तमान 'स्व' मध्यमवर्गीय स्थितियों के बीच। जिसके कारण इन लेखकों की आत्मकथा में यह पाया गया है कि लेखक के समकाल में दरिद्र–दलित पात्रों की अपेक्षतया कमी रहती है और वह अब दलित मध्यमवर्गीय पात्रों या सवर्ण 'अन्य' से ही ज्यादा संबंध स्थापित करता है।

दरअसल जब एक लेखक आत्मकथा लिखता है, तो वह 'स्वत्व के क्षणों' को बटोरने का काम करता है, जो समय के प्रवाह में बिखरा होता है। ऐसे में लेखक की वर्तमान स्थिति 'स्व' के क्षणों के संकलन में मध्यस्थता का कार्य करती है। प्रायः देखा गया है कि लेखक जिस समय लेखन कार्य करता है तब वह दरिद्रता से बाहर आकर मध्यमवर्ग का हिस्सा होता है और अपनी उसी सामाजिक स्थिति में उपस्थित रहकर वह भूत के आत्म को बटोरता है और उसे एक विशिष्ट रूप में प्रस्तुत करता है। इस कार्य में वह जिन क्षणों को बटोरता है अगर हम उनको पूर्णतया प्रमाणिक माने और इस बात को भी स्वीकार कर लें कि लेखक ने अपने जीवन के कटु जातीय यथार्थ को भोगा है, फिर भी लेखक के आत्मवृत्त को पढ़ते हुए यह प्रश्न सहज ही उठता है कि लेखक या दलित समुदाय के लोग जिस भेदभाव को भोगते हैं, वह क्या अतीत की बात हो गई है और समकाल में क्या यह जातीय उत्पीड़न समाप्त हो गया है? जबकि मनोरंजन व्यापारी की आत्मकथा में लेखक के समकाल में भी दरिद्र–दलित पात्र अपने विभिन्न उत्पीड़न के साथ मौजूद रहते हैं, जो वर्तमान की भौतिक परिस्थितियों के संदर्भ में जाति व जातीय उत्पीड़न को प्रस्तुत करते हैं। मनोरंजन की

आत्मकथा में यह शायद इसलिए संभव हो सका क्योंकि उनका 'स्व' अतीत और समकाल में एक ही वर्गीय स्थिति में रहता है।

आत्मकथाओं के विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से हमने देखा कि मध्यमवर्गीय दलित लेखक के समकाल के देशवृत्त (space) में दलित पात्रों की उपस्थिति संख्यात्मक रूप से कम होती है और गुणात्मक रूप में 'अन्य दलित' दलित लेखक के अतीत में दलित पात्रों से अलग दिखाई देते हैं। समकाल के देशवृत्त में ज्यादा उपस्थिति बनाए दिखते हैं। अतीत में लेखक का 'स्व' अन्य दलित पात्रों के साथ इस तरह संलग्न दिखता है कि लेखक का 'मैं' और सामुदायिक 'हम' समरूपी दिखाई देते हैं। लेखक का बचपन तमाम तरह के जातीय उत्पीड़न और शोषण का शिकार होता है जैसे बाकि दलितों का होता है। किंतु इस अतीत के 'स्व' और वर्तमान के 'स्व' में क्या कोई समानता है? क्या दोनों 'स्व' एक ही व्यक्ति के जीवन के क्षण होने के बावजूद भी एक ही हैं? इस विचार को और अधिक स्पष्टता से समझने के लिए रत्नकुमार सांभरिया के मत को देखा जा सकता है,'' स्वानुभूति का यह स्वर दलित साहित्य में राजनीति का शगूफा है। राजनीति को इतिहास बनते सालों लग जाते हैं, लेकिन स्वानुभूति किस पल इतिहास में परिणत हो जाए, भरोसा नहीं है। स्वानुभूति समय सापेक्ष होती है और कालखंड ही उसका निमित्त होता है। बतौर उदाहरण एक मोची का पढ़ा–लिखा मेधावी लड़का गरीबी और अपनी बेरोजगारी के कारण चौराहे पर बैठकर जूतियाँ सीने का अपना पैतृक धंधा करता है। यह काम उसकी नई स्वानुभूति उसकी दिनचर्या का अंग बन जाती है और पुरानी स्वानुभूति सहानुभूति। अब बैठकी पर बैठा कोई मोची उसके लिए सहानुभूत है, स्वानुभूत नहीं। समूचे दलित साहित्य जगत में एक भी लेखक नज़र नहीं आता जो कबीर और रैदास की तरह अपनी जातिगत स्वानुभूतियों को जीता हुआ ज़िंदगी बसर कर रहा है।''[16]

रत्नकुमार सांभरिया अपने लेख में आगे लखीमपुर खीरी में अक्टूबर 1998 में हुए साहित्यिक सम्मेलन का जिक्र करते हुए कहते हैं कि– ''आयोजकों की ओर से दूसरे दिन दुधवा नेशनल पार्क में कार्यक्रम रखा गया था। इस पार्क में कार्यक्रम रखने के दो उद्देश्य थे। वहाँ की प्राकृतिक छटा के बीच सूचीबद्ध कार्यक्रम भी संपन्न हो जाएँगे और देश के कोने–कोने से आए साहित्यकार हाथियों पर बैठकर दुधवा नेशनल पार्क का लुत्फ़ भी उठा लेंगे। इस लुत्फ़ में मुख्य रूप से दुधवा नेशनल पार्क में स्वच्छंद विचरण करते शेरों को देखने का संयोग से सौभाग्य पाना भी था। मैं, शिवमूर्ति तथा अन्य चार–पाँच साहित्यकार एक हाथी पर बैठकर शेर दिख जाने के अपने संयोग को आजमाने जंगल में घूम रहे थे। गजराज पर बैठकर जंगल की घाटीनुमा राहों पर चलना डरावना, लेकिन रोमांचक था।

इस घटना का जिक्र यहाँ उल्लेख करने का मेरा आशय स्वानुभूति से जुड़ा है। वह यह है कि एक समय मेरे स्व. पिताजी लखीमपुर खीरी के इन्हीं जंगलों में ठेका

मजदूर के रूप में वन काटने का काम करते थे। वे हम बालकों को अपने अनुभव बताया करते थे। शेर आकर चोटिल कर जाए, इसलिए पूरी रात उन झोपड़ियों के सामने मोटी–मोटी लकड़ियों का ढेर जलता रहता था। दो आदमी रात भर पहरा दिया करते थे। कई बार ऐसे वाकिए आए जब हम काम कर रहे होते और शेर उनके पास से भेड़िए की तरह लपक कर निकल जाता था। शेरों से रक्षा के लिए मेरे पिताजी का उन जंगलों में जलती लकड़ियों के घेरों में सोना और पल–पल मौत के साये में रहना और मेरा उन्हीं जंगलों में हाथी पर बैठकर शेर की झलक मात्र पाने के लए घूमना– दो निकटवर्ती पीढ़ी की स्वानुभूति में जो अंतर है, वह दो अलग–अलग युग है।''[17]

स्पष्ट है कि अधिकतर आत्मकथाओं में वर्तमान का 'स्व' लेखक के मध्यमवर्ग की अभिव्यक्ति होता है जिसके फलस्वरूप दलित पात्रों को वह वर्तमान में कम देखता है या जब देखता भी है तो दलित पात्रों की जिंदगी वह उसी तरह व्यक्त करता हुआ नहीं दिखता। अब ये पात्र लेखक की जिंदगी से पृथक बस 'सांख्य' मात्र है। इन पात्रों का 'स्व' हकीकत में लेखक का 'अन्य' बन चुका है, अब लेखक उनकी जिंदगी को व्यक्त करेगा तो इस 'स्व' का उन 'अन्य' की जिंदगी में परकाया प्रवेश के तौर पर ही संभव हो सकेगा। क्या हम अब यह कह सकते हैं कि लेखक का वर्तमान 'स्व' अपने अतीत के 'स्व' – जोकि किसी और वर्ग में मौजूद है– में भी परकाया प्रवेश करके ही उस अतीत की अनुभूति को व्यक्त कर रहा है।

यहाँ पर वर्तमान मनोस्थिति के आधार पर दलित जीवन की अंतर्वस्तु का प्रक्षेपण अतीत के 'स्व' में कर, अतीत के 'स्व' का केवल निर्माण ही नहीं किया जा रहा है बल्कि यह भी भाव प्रस्तुत किया जा रहा है कि काल परिवर्तन और वर्गांतरण के बावजूद भी 'वर्तमान 'स्व' के बीच एक सामुदायिक एकता है, पर फिर क्यों नहीं यह एकता वर्तमान 'स्व' और अपने अतीत के पात्रों के समतुल्य वर्तमान दलित पात्रों के साथ आत्मवृत्त की अंतर्वस्तु के तौर पर दिखती है? सहानुभूति और स्वानुभूति अब इस अंतर्वस्तु के रूप विश्लेषण के बाद द्वैत नहीं लगते।

सहानुभूति की क्रिया के अंदर हमें 'स्व' के अपने 'अन्य' में परकाया–प्रवेश की क्रिया दिखती है और इस संदर्भ में दलित लेखक के 'मैं' और सामुदायिक 'हम' के बीच का रिश्ता एक समरूपी अनुभव का नहीं रह जाता और साथ ही साथ प्रतिनिधित्व का सवाल और भी जटिल हो जाता है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची

1 श्यौराज सिंह 'बेचैन,'पत्नी और भेड़िया, दोनों ने किसी को क्या दिया, अपेक्षा, जुलाई–दिसंबर, 2010, पृष्ठ 43

2 ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ 40

3 श्यौराज सिंह 'बेचैन', मेरा बचपन मेरे कंधों पर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ 71
4 वही, पृष्ठ 68
5 तुलसीराम, मुर्दहिया, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ 5–6
6 वही, पृष्ठ 6
7 वही, पृष्ठ 119
8 ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन–2, राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली, 2015, पृष्ठ 29
9 वही, पृष्ठ 83
10 दया पवार, अछूत, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,1996, पृष्ठ 112
11 वही, पृष्ठ 198
12 वही, पृष्ठ 112
13 वही, पृष्ठ 73
14 साक्षात्कार, मनोरंजन ब्यापारी, 3/11/19
15 वही, पृष्ठ 224
16 रत्नकुमार सांभरिया, 'मैं दलित आत्मकथाओं का विरोधी हूँ', हंस, अगस्त 2004, पृष्ठ 84–85
17 वही, पृष्ठ 85

संपर्क

मकान सं– सी–204/4, नजदीक एम.एस पब्लिक स्कूल, लक्ष्मी पार्क, नांगलोई, दिल्ली–110041, फोन–9313343753, ई मेल–dkverma.pp@gmail.com

❑❑❑

समतुल्यता और सममूल्यता की अवधारणा

श्रीराम हनुमंत वैद्य

दो किताबें प्रकाशित। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। संप्रति–श्री शिवाजी महाविद्यालय बार्शी, सोलापुर, महाराष्ट्र में अध्यापन।

अनेक अनुवाद चिंतकों ने सममूल्यता (Equivalence) से संबंधित व्यापक विचार विमर्श किया है। स्त्रोतभाषा की पाठ्सामग्री को लक्ष्यभाषा में अंतरित करते समय अनुवादक से अपेक्षा की जाती है कि मूल पाठ में जो कुछ कहा गया है, उसे भाषा एवं शैली स्तर पर सुरक्षित रखा जाए या मूल कथ्य एवं शैली को लक्ष्य भाषा में अंतरित किया जाए। किंतु स्त्रोत भाषा के कथ्य एवं शैली को लक्ष्यभाषा में पूर्ण रूप से अंतरित नहीं कर सकते हैं तब अनुवादक से अपेक्षा की जाती है कि स्त्रोत भाषा में कही हुई बात का जो प्रभाव स्त्रोत भाषा के पाठकों पर पड़ा है, वही प्रभाव लक्ष्यभाषा में अनूदित पाठ से लक्ष्यभाषा के पाठकों पर पड़े। इसी अनुवाद प्रक्रिया के बीच अनुवाद को भाषिक, सामाजिक–सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं संदर्भपरक आयामों से गुजरना पड़ता है ताकि स्त्रोतभाषा पाठ्यसामग्री का समग्र रूप लक्ष्यभाषा में समान अभिव्यक्ति स्तर पर अनूदित हो सके। यह समान अभिव्यक्ति ही समतुल्यता सिद्धांत की अवधारणा को जन्म देती है। इस अवधारणा को प्रमुख मानकर अनेक विद्वानों ने अनुवाद सिद्धांत को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। कृष्ण कुमार गोस्वामी अनुवाद की परिभाषा को स्पष्ट करते समय लिखते हैं कि ''स्त्रोतभाषा में व्यक्त पाठ्य सामग्री का पुनर्सृजन लक्ष्य भाषा की पाठ्य सामग्री में निकटतम समतुल्यता के आधार पर करना अनुवाद है।''[1] डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार ''एक भाषा में व्यक्त विचारों को यथासंभव समतुल्य और सहज अभिव्यक्ति द्वारा दूसरी भाषा में व्यक्त करने का प्रयास ही अनुवाद है।''[2] यहाँ स्त्रोत भाषा पाठ्य सामग्री का लक्ष्य भाषा में अर्थ निर्धारण करते समय मूल के समान सहज अभिव्यक्ति की खोज की जाती है। यह सामान अभिव्यक्ति दो प्रकार की होती है। 1. मूल सामग्री का वही अर्थ देने वाली अभिव्यक्ति। 2. मूल सामग्री के निकटतम अर्थ देने वाली अभिव्यक्ति। अर्थात् अनुवाद के माध्यम से हम जिन दो भाषाओं को निकटतम लाना चाहते हैं, उसमें समानता के कई तत्व मिल सकते हैं लेकिन हर भाषा की अपनी एक निजी संरचना होती है, अपनी प्रतीक व्यवस्था होती है। साथ ही सामाजिक सांस्कृतिक भिन्नता के विभिन्न रूप

समतुल्यता स्थापित करते समय कठिनाइयाँ पैदा करती हैं। इस विभिन्नता के बीच समतुल्यता असंभव ही लगती है।

पाश्चात्य विद्वानों ने समतुल्यता सिद्धांत का सूक्ष्म चिंतन किया है। प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान यूजीन ए. नाइडा के अनुसार "Translation consists in producing in the receptor language the closest natural eunivalent to the message of the source language, first in meaning and second in style अर्थात् ''अनुवाद का आशय स्त्रोत भाषा के संदेश का अर्थ और शैली के धरातल पर संग्राहक भाषा में निकटतम सहज समतुल्यों द्वारा पुनर्सृजन करना है।''[3] इस प्रकार नाइडा ने मूल पाठ में निहित अर्थ एवं शैली के समतुल्य प्रस्तुतीकरण पर बल दिया है। वह मानते हैं कि स्त्रोतभाषा पाठ्यसामग्री का लक्ष्यभाषा में शत प्रतिशत अनुवाद संभव नहीं है। इसीलिए उन्होंने लक्ष्य भाषा के स्थान पर receptor language (संग्राहक भाषा) शब्द का प्रयोग किया है, तो Translation (अनुवाद) के स्थान पर Translating (अनुवादिता) शब्द का प्रयोग किया है। कैटफर्ड के अनुसार– ''the replacement of textual material in one language''अर्थात् ''अनुवाद एक भाषा (स्त्रोत भाषा) के पाठपरक उपादानों का दूसरी भाषा (लक्ष्य भाषा) के पाठपरक उपादानों के रूप में समतुल्यता के सिद्धांतों के आधार पर प्रतिस्थापन है।''[4] कैटफर्ड ने पाठपरक उपादानों (material) के स्तर पर समतुल्यता स्थापित करने पर बल दिया है जिससे संप्रेषणपरक प्रकार्य की स्थिति निर्मित हो सकती है। यहाँ पाठपरक उपादानों का अर्थ है– स्त्रोतभाषा पाठ और लक्ष्य भाषा पाठ के विषय, भाव और शैली के स्तर पर एकसंघ। यही पाठपरक उपादान स्त्रोतभाषा से लक्ष्यभाषा में अंतरण होते समय प्रासंगिक परिस्थितियों में सममूल्यता सिद्धांत के आधार पर समानता स्थापित करने का प्रयास करते हैं। कैटफर्ड मानते हैं कि अनुवाद में समतुल्यता तभी स्थापित हो सकती है जब स्त्रोतभाषा पाठ और लक्ष्यभाषा पाठ, भाषा प्रक्रिया की दृष्टि से समान स्तर पर जुड़े हो। जुलियाना हाऊस के अनुसार Translation is the replacement of a tet in the source language by semantically and pragmatically equivalent text in the target language अर्थात ''अनुवाद स्त्रोत भाषा की पाठ्यसामग्री का लक्ष्य भाषा के अर्थ तथा व्यवहार की दृष्टि से समतुल्य पाठ्य सामग्री से प्रतिस्थापन है।''[5]

सममूल्यता

अंग्रेजी के Equivalent शब्द का अर्थ है– equal in value/ mount or importance वास्तव में समतुल्यता शब्द गणित से आया है, जिससे समानता की खोज की जाती है। यहाँ सममूल्यता का अर्थ– equal in value के रूप में महत्वपूर्ण है। पाश्चात्य विद्वान कैटर्ड, जूलियाना हाउस ने समतुल्यता को equivalent शब्द का प्रयोग किया है। नायडा ने Closest Natural Equivalent में निकटतम प्राकृतिक समतुल्यता की बात

की है, जिससे मूल्यता से संबंधित अर्थ ध्वनित होता है। अर्थात् ''स्त्रोतभाषा के पाठकों के लिए मूल रचना का जो 'मूल्य' हो, लक्ष्यभाषा में अनुवाद का भी लगभग वही मूल्य होना चाहिए। अन्य पश्चिमी विचारकों ने भी equivalent और equivalence का प्रयोग सममूल्य एवं सममूल्यता के ही अर्थ में किया है पर हिंदी में इनके लिए समतुल्य एवं समतुल्यता रुढ़ हो गए है।''[6]

डॉ. सुरेश कुमार ने 'समतुल्यता' के स्थान पर 'सममूल्यता' शब्द का प्रयोग किया है। वे मानते हैं कि ''अनुवाद कार्य में हम मूलभाषा पाठ के लक्ष्यभाषागत पर्यायों से जिस समानता की बात करते हैं वह मूल्य (वैल्यू) की दृष्टि से होती है। यह मूल्य का तत्वभाषा के शब्दार्थ तथा व्याकरण के तथ्यों तक सीमित नहीं होता, अपितु प्रायः उनसे कुछ अधिक तथा भाषाप्रयोग के संदर्भ (आंतरिक और बाह्य दोनों) से उद्भूत होता है। वस्तुतः यह एक पाठ संकेतीय संकल्पना है तथा संदेश स्तर की समानता से जुड़ी है। भाषा के भाषावैज्ञानिक विश्लेषण में अर्थ के स्तर पर पर्यायता या अन्वयांतर संबंध पर आधारित होते हुए भी सममूल्यता संदेश का गुण है जिसमें पाठ का उसकी समग्रता में ग्रहण होता है।''[7] डॉ. सुरेश कुमार अनुवाद कार्य में पाठ संकेतविज्ञान के संप्रेषण सिद्धांत की मान्यताओं को स्वीकार करते हुए अनुवाद कार्य को एक संप्रेषण व्यापार मानते हैं। जैसे संप्रेषण शतप्रतिशत संभव नहीं है वैसे ही अनुवाद भी शतप्रतिशत संभव नहीं हो सकता है इसलिए सममूल्यता के आधार पर संदेशस्तरीय समानता स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। यही सममूल्यता लक्ष्यभाषा पाठ को स्त्रोतभाषा पाठ के निकटतम लाने का प्रयास करती हैं।

समतुल्यता/सममूल्यता के भेदः–

अनेक भारतीय और पाश्चात्य अनुवाद चिंतकों ने सममूल्यता के भेदों का वर्गीकरण किया है। पाश्चात्य विद्वान नायडा ने समतुल्यता को दो भागों में विभाजित किया है। 1. रूपात्मक (Formal) समतुल्यता 2. गत्यात्मक (Dynamic) समतुल्यता।

उन्होंने रूपपरक समतुल्यता के अंतर्गत तीन प्रकारों की चर्चा की है।

1. शाब्दिक समतुल्यता 2. भाव–प्रति–भाव समतुल्यता 3. शैली–प्रति–शैली समतुल्यता। गत्यात्मक समतुल्यता के अंतर्गत प्रकार्य–प्रति–प्रकार्य समतुल्यता की चर्चा की है। डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी ने कैटफर्ड, न्यूबर्ट, नाइडा और पोपोविच के समतुल्यता से संबंधित वर्गीकरण को संशोधित करते हुए समतुल्यता के चार भेदों का विश्लेषण किया है।

1. भाषापरक समतुल्यता 2. भावपरक समतुल्यता
3. शैलीपरक समतुल्यता 4. पाठपरक समतुल्यता आदि।

गोस्वामी जी ने मूलभाषा पाठ और लक्ष्यभाषा पाठ के भाषिक, संप्रेषणात्मक,

गत्यात्मक एवं अभिव्यक्ति के स्तर पर समतुल्यता का वर्गीकरण किया है। डॉ. कुसुम अग्रवाल ने समतुल्यता को छह भागों में वर्गीकरण किया है।

1. शब्दपरक समतुल्यता 2. पदबंधपरक समतुल्यता
3. वाक्यपरक समतुल्यता 4. प्रोक्तिपरक समतुल्यता
5. शैलीपरक समतुल्यता 6. प्रकार्यपरक समतुल्यता आदि

डॉ. कुसुम अग्रवाल ने अर्थ और अभिव्यक्ति पक्ष को प्रमुख मानकर समतुल्यता का विभाजन किया है। डॉ. सुरेश कुमार ने पाठ संकेतविज्ञान के तीन पक्ष (अर्थ विचार, वाक्य विचार तथा संदर्भ विचार) को अनुवाद सिद्धांत के लिए प्रासंगिक मान लिया है। ''सममूल्यता के निर्धारण में पाठ संकेत विज्ञान के तीन घटकों के अधिक्रम का योगदान रहता है– वाक्यस्तरीय सममूल्यता पर अर्थस्तरीय सममूल्यता को तरजीह मिलती है तथा अर्थस्तरीय सममूल्यता पर संदर्भस्तरीय सममूल्यता को मान्यता दी जाती है। दूसरे शब्दों में, यदि दोनों भाषाओं में वाक्यरचना के स्तर पर सममूल्यता स्थापित न हो तो अर्थस्तरीय सममूल्यता निर्धारित करनी होगी और यदि अर्थस्तीय सममूल्यता निर्धारित न हो सके तो संदर्भस्तरीय सममूल्यता को मान्यता देनी होगी।''[8] अर्थात् डॉ. सुरेश कुमार ने सममूल्यता का निर्धारण तीन भागों में किया है।

1. वाक्यस्तरीय सममूल्यता 2. अर्थस्तरीय सममूल्यता 3. संदर्भस्तरीय सममूल्यता

सममूल्यता में समानता एक महत्वपूर्ण बिंदु है। स्त्रोतभाषा और लक्ष्यभाषा पाठ के कुछ संप्रेषणपरक प्रकार्य, कुछ घटक समानस्तर पर रहे तभी सममूल्यता दिखाई देती है। मूल सामग्री के विषय जितने सामान्य, प्रचलित और गैरपारिभाषिक होंगे, सममूल्यता की मात्रा उतनी ही अधिक मिलती है। भौगोलिक संदर्भ, सामाजिक संदर्भ, ऐतिहासिक तथ्यों से युक्त पाठ पारिभाषिक शब्दावली की मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी सममूल्यता की मात्रा घटती है।

1. वाक्यस्तरीय सममूल्यताः

शब्दभाषा की स्वतंत्र इकाई है, किंतु केवल शब्दों से भावों एवं विचारों को पूरी तरह से संप्रेषित नहीं किया जा सकता है। इसलिए एक या एक से अधिक शब्दों को व्याकरणिक नियमों में व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करते हैं, तो वाक्य बनता है और वही हमारे भाव एवं विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अर्थात् शब्द जब वाक्य का अंग बन जाते हैं तो उनमें विशेष अर्थ का संचरण हो जाता है। ''वाक्य भाषा की ऐसी सहज इकाई है, जिसमें एक या अधिक शब्द होते हैं तथा वह इकाई अर्थ की दृष्टि से पूर्ण या अपूर्ण होती है, लेकिन व्याकरणिक दृष्टि से अपने विशिष्ट संदर्भ में अवश्य पूर्ण होती है, साथ ही उसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कम से कम एक समापिक क्रिया अवश्य होती है।''[9] अर्थात् कहा जा सकता हैं कि वाक्य ही भाषा में अर्थ और भावों को संप्रेषित करता है।

स्त्रोतभाषा से लक्ष्यभाषा में अनुवाद करते समय अनुवादक वाक्य को इकाई मानकर अनुवाद करते हैं। अनुवादक मूल पाठ में प्रयुक्त वाक्य संरचना को लक्ष्य भाषा की वाक्य संरचना में प्रयुक्त करते हैं। अर्थात् मूल पाठ खोकर क्या लक्ष्य भाषा में वाक्य प्रचार वाक्य आ जाएगा। वाक्य को इकाई मानकर संवाद करते समय शब्द पद, पदबंध, उपवाक्य वाक्य आदि का लक्ष्यभाषा के वाक्य संरचना में प्रतिस्थापन किया जाता है। सामान्यतः वाक्य के स्वरूप में विधि, निषेध, आज्ञार्थक, इच्छार्थक, संदेहार्थक, प्रश्नार्थक, विस्मयादि, संकेतार्थक आदि प्रवृत्तियाँ होती हैं जिन्हें लक्ष्य भाषा में अनूदित करते समय संभवतः अनुवादक मूल वाक्य की संरचना को सुरक्षित रखते हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि मूलभाषा पाठ की संरचना को ही लक्ष्य भाषा में रूपांतरित किया जाए। यहाँ रूपांतरण सममूल्यता के आधार पर करना अपेक्षित है जो कि मूलअर्थ ध्वनियों एवं भावभंगिमा को सुरक्षित रखे।

जैसे–

मूल मराठी–

बयो

(वसकन अंगावर जात) तातोबा, आता सरळ सांगणार आहेस की–

तातोबा सांगतो. पुंजा पाटलाकडून आश्रमाची ही जमीन खरेदी करण्याच्या वाटाघाटी चालल्या आहेत.

पुरुषोत्तमः आमच्या पैशान?

बयो आश्रमाची जमीन खरेदी करणार?

ततोबा असं आबाजी भागवत केशवजवळ बोलताना मी सहज ऐकले. खरे खोटे देव जाणे.

पुरुषोत्तमरू (कडवटपणे खंदे उडवीत) नानांच्याकडून दुसरी कशाची अपेक्षा करणार? मर्जी

त्यांची (पृ–15)

हिंदी अनुवाद–1

बयो (क्रोध से) तातोबा, अब सीधी तरह बताएगा कि–

तातोबा बताता हूँ। भीमा पाटील से आश्रम की जमीन खरीदने की बातचीत चल रही है। पुरुषोत्तम हमारे पैसे से?

बयो आश्रम के लिए जमीन खरीदेंगे।

तातोबा ऐसा मैंने आबाजी भागवत को केशव से कहते हुए सुना, सच झूठ की तो भगवान जाने पुरुषोत्तम (कंधे झटककर) नाना से और क्या उम्मीद की जा सकती है? मर्जी उनकी। (पृ. 25)

उक्त उदाहरण में मूल वाक्य के प्रकारों को यथासंभव सुरक्षित रखा गया है।

मूल विधि वाक्य के लिए विधि वाक्य, मूल प्रश्नार्थक वाक्य का प्रयोग अनुवाद में वाक्यस्तरीय सममूल्यता का परिचय देता है। अतः नाट्यसंवादों में अधूरे वाक्य भी विशेष अर्थवान रहते हैं। 'यह वाक्य गोपनीयता, तनाव संकोच, अनुभव की अकथनीयता तथा आवेश की चरमस्थिति में अधूरे वाक्य का प्रयोग किया जाता है, जो पूरे वाक्य का स्थान लेता है। मूल मराठी के ऐसे वाक्यों का अनुवादक ने सममूल्यतास्तरीय अनुवाद किया है।

2. अर्थस्तरीय सममूल्यता

अर्थस्तरीय सममूल्यता में अनुवादक स्त्रोतभाषा पाठ्यसामग्री का लक्ष्यभाषा में अंतरण करते समय मूल पाठ के अर्थ के अनुरूप लक्ष्यभाषा में समानता स्थापित करने का प्रयास करते हैं। यह समानता सममूल्यता के आधार पर पाई जाती है। दुरिशिन की मान्यता है कि ''अर्थतत्व का अंतरण मात्र भाषा का अंतरण नहीं है। अंतरण से तात्पर्य साहित्य में एक साहित्यिक कृति का उसके पूरे संदर्भों के साथ दूसरी भाषा में अंतरण समझना चाहिए।''[10] अर्थस्तरीय सममूल्यता निर्धारित करते समय अनुवादक को भाषा का संरचनात्मक एवं अभिव्यक्ति के स्तर पर ध्यान रखना आवश्यक है इसमें मुख्य रूप से स्थान, काल, संदर्भ, लिंग, वचन, समास, उपसर्ग, प्रत्यय, शब्द, शक्ति, व्यंग्य, मुहावरे, बलाघात, अनुतान आदि का महत्वपूर्ण स्थान होता है। भाषा में कई शब्दों के अर्थ निर्धारण स्थान एवं प्रदेश के अनुरूप होता है। अनुवादक उक्त सभी जानकारी को ध्यान में रखते हैं तो लक्ष्यभाषा में मूलपाठ के अर्थ के समान मूल्य की अभिव्यक्ति स्थापित हो सकती है। अर्थस्तरीय सममूल्यता स्थापित करते समय निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

मूल मराठी

राजीवः आमचं कोणाचं तर तुम्ही ऐकत नाहीत, पण डॉक्टर दुभाषीनी

देवदत्तः शू! केवढयांदा? तो खवीस आलाय तिकड़ं तुझा एक शब्द त्यांच्या कानी पडला, तर उद्यापासून माझी कोर्टाला सुट्टी करुन टाकतील. (अखेरचा सवाल–सवंत कानेटकर पृ–10)

हिंदी अनुवाद

राजीव हमारा किसी का कहना तो मानते ही नहीं है, पर डाक्टर दुभाषी का भी.

देवतदत्त हिश! कितने जोर से बोल रहे हो। वह राक्षस आया है वहाँ। तुम्हारा एक शब्द भी अगर उसने सुन लिया तो कल से मेरा कोर्ट जाना ही बंद कर देगा। (आखिरी सवाल–अनुवादक कुसुम तांबे–पृ–21)

उक्त उदाहरण में मूल अर्थ को सुरक्षित रखते हुए अनुवाद किया गया है। मूल

मराठी के अर्धवाक्य 'दुभाषींनी' का अनुवाद 'दुभाषी का भी' करके मूल अर्थ को अधिक स्पष्ट किया है। मूल मराठी के बोधगम्य शब्द 'खवीस', केवढयांदा? कोर्टाला सुट्टी करुन टाकील' आदि दुभाषी के व्यक्तित्व को दर्शाते हैं। इस मूल अर्थबिंदु को अनुवादक ने लक्ष्यभाषा द्वारा अनूदित किया है। मूल 'खविस' शब्द से व्यंग्यार्थ निकलता है। उसका अनुवाद 'राक्षस' किया गया है। यह उदाहरण अर्थस्तरीय सममूल्यता का परिचय देता है।

3. संदर्भस्तरीय सममूल्यता

अनुवाद में अर्थ का निर्धारण करते समय निकटता, समानता का पर्याय शब्द हो सकता है किंतु वास्तव में किसी भी शब्द का समतुल्य दूसरा शब्द लाना असंभव होता है। अनुवाद के माध्यम से हम जिन दो भाषाओं और संस्कृतियों को निकट लाना चाहते हैं, वह कभी–कभी एक दूसरे के निकट लगती भी हैं फिर भी उन भाषाओं की अपनी निजी संरचना और विशेषताओं के कारण उनके बीच निकटतम समतुल्यता स्थापित करना असंभव लगता है। तभी समान मूल्य की अभिव्यक्ति देने वाले शब्द की तलाश की जाती है। डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी लिखते हैं कि ''संदर्भपरक तुलनीयता में एक भाषा के अर्थ को दूसरी भाषा में पूर्णतया प्रतिस्थापित नहीं किया जा सकता अर्थात् स्त्रोत भाषा के संदेश को लक्ष्य भाषा के समान अर्थ देने वाले संदेश के रूप में परिवर्तित किया जाता है। समान अर्थ का तात्पर्य है दोनों भाषाओं के अंश समान स्थितियों में अर्थ कर सके, हालाँकि एक भाषा का कोई दूसरी भाषा के किसी अंश से अर्थ की दृष्टि से समान नहीं होता। अतः पूर्ण अनुवाद संभव नहीं है।''[11] संदर्भस्तरीय सममूल्यता वाक्य तथा अर्थस्तरीय सममूल्यता के ऊपर की सर्वोपरी स्थिति है। अर्थात् संदर्भस्तरीय सममूल्यता जितनी अधिक, अनुवाद उतना ही सफल माना जाता है। उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अनुवाद में जहाँ सममूल्यता स्थापित नहीं की जाती है, वहाँ संदर्भस्तरीय सममूल्य अनुवाद करते हैं।

जैसेः–

मूल मराठी–

बल्लाळ अगं पण आपल्या लग्नाचा वाढदिवस पुन्हा उद्या कसा येईल? मग गेल्या महिन्यात आपण सिंहगडावर जाऊन साजरं केल होतं ते काय? का ती तानाजीची पुण्यतिथी होती?

(प्रेमा तुझा रंग कसा?– वसंत कानेटकर पृ.8)

हिंदी अनुवाद–

वर्मा भई, अपनी शादी की सालगिरह फिर से कल कैसे आ गई? पिछले महिने हम लोग रामगढ़ गए थे, वो क्या था? रामनौमी? (ढाईआखर प्रेम का– अनुवादक–

वसंत देव पृ.06)

उपर्युक्त उदाहरण में ऐतिहासिक संदर्भ आया है। 'सिंहगड़' छत्रपति शिवाजी महाराज का किला है। यहाँ तानाजी मालुसरे के शौर्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। ऐतिहासिक संदर्भ का अनुवाद करना कठिन कार्य है। अनुवादक वसंत देव ने मूल संदर्भ का लक्ष्यभाषा पाठक की सुविधा के अनुरूप स्थानीय धार्मिक संदर्भ में अनुवाद किया है। लक्ष्यभाषा पाठक हिंदी भाषिक है। हिंदी भाषा प्रदेश में मंदिरों की संख्या अधिक है। इसीलिए अनुवादक ने सिंहगड़ का अनुवाद 'रामगढ़' किया है। जहाँ राम का मंदिर है। मूल पाठ के 'पुण्यतिथि' का अनुवाद भी 'रामनौमी' किया है। यह परिवर्तन पहले संदर्भ के अनुसार है। हम कह सकते हैं कि मूलपाठ का भाव एवं अर्थ अनूदित पाठ में सुरक्षित रखा है। यह भी संदर्भस्तरीय सममूल्यता का अच्छा उदाहरण है। उपर्युक्त उदाहरणों की सहायता से कह सकते हैं कि मूलपाठ के ऐतिहासिक, भौगोलिक संदर्भ का अनुवाद वसंत देवजी ने लक्ष्यभाषा प्रकृति के अनुरूप किया है, न कि मूल को थोपने का प्रयास किया है। इससे स्पष्ट होता है कि मूलपाठ के संदर्भ का अनुवाद लक्ष्यभाषा पाठक के अनुरूप हो।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अनेक विद्वानों ने अनुवाद में समतुल्यता, सममूल्यता के महत्व को प्रतिपादित किया है। स्त्रोतभाषा से लक्ष्यभाषा में अनुवाद करते समय जिस समानता, निकटता की बात करते हैं, वह कभी–कभी निकट लगती भी है किंतु अधिकतर जगहों पर दो भाषाओं के, संस्कृतियों के भिन्न–भिन्न रूप मिलते हैं, जिनका अनुवाद असंभव सा लगता है। वहाँ समतुल्यता की अपेक्षा अर्थगत भिन्नता की संभावना अधिक रहती है। अनुवाद में सममूल्यता तभी संभव होती है जब दोनों पाठ प्रकार्य अर्थात् संप्रेषण परक कथ्य की दृष्टि से समान स्थान पर जुड़ा हो। डॉ सुरेश कुमार अनुवाद में मूल पाठ और लक्ष्य भाषा पाठ के संप्रेषण पर मूल्य को अधिक महत्पपूर्ण मानते हैं। उनकी यह संकल्पना पाठ के संदेश स्तर की समानता से जुड़ी हुई है। वे अनुवाद को एक गत्यात्मक सममूल्यता मानते हैं, जिसके निर्धारण में पाठ संकेत विज्ञान के तीन घटक महत्वपूर्ण हैं। सर्वप्रथम वाक्यस्तरीय सममूल्य अनुवाद किया जाता है। जहाँ वाक्यस्तरीय सममूल्य अनुवाद की संभावना ना हो तो अनुवादक मूल में विद्यमान अर्थ को लक्ष्य भाषा में ले जाने के प्रति अधिक सजग होता है। तब अर्थस्तरीय सममूल्य अनुवाद किया जाता है। जहाँ अर्थस्तरीय सममूल्यता निर्धारण की संभावना कम होती है। वहाँ संदर्भस्तरीय सममूल्य अनुवाद किया जाता है।

संदर्भः–

1. अनुवाद की नई परंपरा और आयाम–संपादक– कृष्ण कुमार गोस्वामी, प्रकाशन संस्थान, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–पृ.18

2. अनुवाद शिल्पः समकालीन संदर्भ– डॉ. कुसुम अग्रवाल, साहित्य सहकार

प्रकाशन, दिल्ली, पृ.36
3. अनुवाद की व्यापक संकल्पना– डॉ दिलीप सिंह, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–पृ.26
4. अनुवाद शिल्पः समकालीन संदर्भ– डॉ. कुसुम अग्रवाल, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली–पृ.36
5. वही–पृ.36
6. वही–पृ.37
7. अनुवाद सिद्धांत की रूपरेखा– डॉ. सुरेश कुमार, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली–पृ.31
8. वही–पृ.61
9. अनुवाद शिल्पः समकालीन संदर्भ– डॉ. कुसुम अग्रवाल, साहित्य सहकार प्रकाशन, दिल्ली– पृ.39
10. अनुवाद की व्यापक संकल्पना– डॉ दिलीप सिंह, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली– पृ.26
11. अनुवाद की नई परंपरा– संपादक– कृष्ण कुमार गोस्वामी, लेख– भाषा विज्ञान और अनुवाद– कृष्ण कुमार गोस्वामी– पृ.98

संपर्क

श्री शिवाजी महाविद्यालय, बार्शी, तहसील–बार्शी, जिला–सोलापुर, महाराष्ट्र, पिन–413411
फोन–9657243507, ई मेल–svaidya2012@gmail.com

❑❑❑

मृगतृष्णा

राजनारायण बोहरे

चार कहानी संग्रह, दो उपन्यास और छह बाल उपन्यास प्रकाशित। मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन का 'वागीश्वरी पुरस्कार' एवं साहित्य अकादमी, मध्य प्रदेश का 'सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार' से सम्मानित। संप्रति–स्वतंत्र लेखन।

चूल्हे में लगी लकड़ी बहुत धुँधला रही थी। गैस सिलिंडर कोने में लुढ़का पड़ा था। शहर में गैस की किल्लत होने से हमेशा पंद्रह दिन में नंबर आता है, क्या करे तब तक मिट्टी के चूल्हे और लकड़ी–कंडा से जूझती रहेगी वह। चूल्हे का धुँआ असह्य हो उठा तो उसने अधकटी सब्जी की थाली हाथ में ली और किचन से बाहर चली आई। नौ बजने को है, साढ़े नौ पर रश्मि कॉलेज जाएगी, उसे नाश्ता तैयार चाहिए। चूल्हा जले तो वह जल्दी से पोहा तैयार करे।

खुल्ल खुल्ल खुल्ल!

बाहर के कमरे से फिर खाँसने की आवाज आई है। आज खाँसी बाबूजी को ज्यादा ही परेशान कर रही है। कल मना किया था कि फ्रिज का पानी मत पियो, लेकिन मानते कब हैं किसी की! अव्वल दर्जे के जिद्दी हैं शुरू से। बीड़ी पीना नहीं छोड़ेंगे और जब खाँसी से बेहाल होकर तकलीफ भोगेंगे, तो खुद के अलावा दूसरों को भी कष्ट पहुँचाएँगे। अब भला कौन परमहंस बना रह सकता है ऐसी त्रासद स्थिति में जब घर का पैंसठ साल का बुजुर्ग खाँसी के मारे, बेहाल कमजोर शरीर, अशक्त खटिया पर लेटा हुआ पीड़ा झेल रहा हो। बाबूजी लकवे के शिकार हैं, इसलिए अपने–भर तो उठकर बैठ भी नहीं सकते। जब खाँसी चलती है तो दिवा को ही संभालना पड़ता है। वह कंधों से पकड़कर उठाती है और सीने को सहलाती है तभी थोड़ी राहत मिलती है।

बाबूजी के अलावा दिवा को बाजार का काम भी देखना होता है, उसकी ननद रश्मि तो दिनरात अपनी एम.ए. मनोविज्ञान की किताबों में खोई रहती है। घर की हर छोटी–बड़ी चीज के लिए उसे ही खटना पड़ता है। सास आज जिंदा होती तो कुछ हाथ बँटाती, लेकिन तीन वर्ष पहले वे सुहागिन बनी, सजी–धजी, माँगभर सिंदूर, हाथभर चूड़ी

और पाँवों में तीन–तीन बिछिया पहने स्वर्ग सिधारी हैं, सो घर में दिवा अकेली है। उसका पति विपिन छत्तीसगढ़ में डॉक्टर है। कभी–कभार महीने–दो महीने में उसे छुट्टी मिलती है तो आ पाता है।

यूँ विपिन के बड़े भाई नवीन यहीं हैं, इसी शहर में नहर विभाग के दफ्तर में अपर डिवीजन क्लर्क यानि यू.डी.सी. हैं। अच्छी–खासी कमाई है। चाहें तो बाबूजी और रश्मि को अपने साथ रख सकते हैं, लेकिन उन्हें तो सगों से सड़ांध आती है। वे इन सबसे नाराज हैं। दूर की रिश्ते की एक बूढ़ी विधवा बुआ को साथ रख छोड़ा है। रश्मि ने बताया था उसे। विपिन अपना कोर्स पूरा कर रहा था उन दिनों और एम.बी.बी.एस. के तीसरे वर्ष में था, तब नवीन की पत्नी रूपा के माध्यम से आया रिश्ता, किसी कारणवश बाबूजी ने नहीं स्वीकारा था। तो नवीन भाई चिढ़कर अलग हो गए थे और लौटकर विपिन ने जरा सी बात से हुई खट–पट पर अपना सिर पीट लिया था। अभी शादी ब्याह कहाँ? अभी तो उसे दो साल और पढ़ना था। उसके लाख मनाने पर भी नवीन माने कहाँ थे।

खैर, किसी तरह एम.बी.बी.एस. करके विपिन ने इंटर्नशिप शुरू की थी और एक–एक दिन करके समय गुजारा था। बाबूजी की पेंशन पर इतना भार डालना उसे मुनासिब नहीं लगता था, लेकिन मजबूरी थी, वह कर भी क्या सकता था। जैसे–तैसे करके विपिन ने डिग्री हासिल की फिर घर लौटकर उसे दैनिक चिंताओं से दो–चार होना पड़ा था।

शहर के एक प्राइवेट चिकित्सक डॉ. शर्मा के यहाँ बड़ी अनुनय–विनय करने के बाद वह सहायक बन सका था। फिर वहाँ से उसने कई जगह इंटरव्यू दिए थे। पूरे तीन वर्ष बीत गए पर उसका कहीं चयन नहीं हुआ, लेकिन आशा शेष थी।

अंततः सरकारी नौकरी में चुन लिया गया था वह। मेहनत सफल रही उसकी। छत्तीसगढ़ के धुर जंगली इलाके की पोस्टिंग मिलने पर बाबूजी चिंतित तो हुए, मगर दूरगामी परिणाम सोचकर विपिन ने नौकरी पर जाना ही श्रेयस्कर समझा था। बीच में एक बार वह नवीन के यहाँ भी गया और अपनी अनुपस्थिति में घर की फिक्र करते रहने की गुहार लगाई, तो नवीन भाई बाबूजी के प्रति अनाप–शनाप बोलने लगे थे। खिन्न मन से विपिन ड्यूटी पर चला गया था।

एक दिन टेलीग्राम मिलने पर वापस आया तो पता चला कि बाबूजी पर फ़ालिज गिरा है। बिलकुल लुंज–पुंज होकर बाबूजी खटिया पर लेटे मिले थे। विपिन तो घबरा ही गया था। आनन–फानन में ग्वालियर ले जाकर विपिन ने न्यूरो चिकित्सा के एक बड़े अस्पताल में इलाज आरंभ किया था। एक महीना बाबूजी वहाँ भर्ती रहे। इलाज से फर्क पड़ा। लकवाग्रस्त बायाँ हाथ और पैर सक्रिय हुआ। मुँह से अस्फुट से वाक्य निकलने लगे। घर लौटे तो दो महीने तक विपिन ने ग्वालियर से दवाएँ लाकर उनका

इलाज करवाया और जब बाबूजी थोड़ा चलने–फिरने की स्थिति में हुए तो उसने नौकरी की सुध ली थी। जबलपुर वाली दीदी व जीजाजी को जल्द–से–जल्द विपिन की शादी निपटाने की फिक्र लग गई थी और रिश्ता तय करने के लिए उनके ताबड़तोड़ दौरे शुरू हो गए थे।

उन दिनों दिवा ने दर्शनशास्त्र में एम.ए. की फाइनल की परीक्षा दी थी और रिजल्ट का इंतजार कर रही थी कि एक दिन विपिन और उसके दादी–जीजाजी उसे देखने अचानक आ पहुँचे। दिवा का मन उन दिनों विकट अंतद्र्वंद्व में फँसा था, इसलिए उसे सब अचानक सा लगा था। दिवा तब शरीर और मन के तर्क–युद्ध के बीच निरुपाय सी बैठी थी।

विपिन ने उसे एक नजर देखा और तुरंत ही पसंद कर लिया। वह थी भी ऐसी ही। भला कौन न मर मिटता उसके सौंदर्य पर। डैडी और मम्मी को विपिन अच्छा लगा था। कुछ देर विपिन की कमजोर घरेलू आर्थिक पृष्ठभूमि पर उन दोनों के बीच विचार विमर्श हुआ और अंततः डैडी ने रिश्ता स्वीकार होने की घोषणा कर दी थी। दिवा का मौन उसकी सहमति मान ली गई थी।

कितनी दफा याद आया है दिवा को अपना वह अंतद्र्वंद्व और मन की अबूझ गलियों का मकड़जाल भी कितना चकित करता रहा है उसे। स्मृति की जिस गली से होकर विपिन से उसकी शादी की बात याद आती है, उसके ही पास की गली में बैठा कोई और जैसे उस अंतद्र्वंद्व को कौंच–कौंच कर जगाता है। उसी ने तो पैदा किया था वह द्वंद्व, वह भ्रम, वह अस्थिरता और नैराश्य। विपिन और उसके जीजाजी शादी की तारीख तय करके ही लौटे थे। रस्म के मुताबिक दिवा को विपिन की दीदी ने साड़ी ब्लाउज के साथ सोने की एक चेन और मिठाई भेंट की थी। तब मम्मी ने दीदी के पैर छुआए थे उससे। वह यंत्रवत सब कुछ करती रही थी।

शादी में सब लोग इकट्ठे हुए, खानदान के सभी लोग आए, पर नवीन नहीं आया। विपिन ने बताया था कि शादी के पहले वह खुद उन सबको लेने गया था, मगर रूपा भाभी के मर्मभेदी व्यंग्य वाणों से आहत होकर अंततः निराश ही लौटा। अपनी बीमारी के कारण बाबूजी तो नहीं जा पाए थे– जबलपुर वाले जीजाजी ने ही पिता की सारी रस्में पूरी की थीं। दिवा ने अभी तक पिता का लाड़ देखा था और देखी थी अपने मन के महत्वाकांक्षी परिंदे की असीम उड़ान। यूनिवर्सिटी की क्रिकेट टीम में वह विकेटकीपर के रूप में शामिल रहती थी और इसी कारण उसने प्रदेश ही नहीं देश के कई शहर अपनी टीम के साथ घूम लिए थे। कॉलेज की क्रीम थी वह। शहर की सर्वाधिक मॉडर्न लड़कियाँ उसे कंपनी देने के लिए तत्पर रहा करती थी। इसीलिए अपने आप पर बड़ा नाज था उसे।

ससुराल पहुँचकर वह एकाएक घबरा ही गई क्योंकि हर स्तर पर असमानता थी उसके और विपिन के घर में, रहन–सहन से लेकर मकान तक और खान–पान से

लेकर संस्कारों तक। विपिन का घर तो एक देहाती घर था। दम घुटने लगा उसका। लगता था जैसे आसमान की ऊँचाइयों से पकड़कर किसी धवल हंसिनी को गंदे नाले में पटक दिया गया हो। अपने डैडी के नौकर–चाकरों से भरे घर में उसे कभी एक गिलास पानी भी अपने हाथ से नहीं पीना पड़ा था। जबकि यहाँ हर काम उसे खुद करना था अपना भी और परिजनों का भी। अपनी नीयत पर तड़प उठी थी वह और पहली रात देर तक रोती रही थी।

बाद में जितने दिन रही, अन्यमनस्क ही बनी रही। शादी के चौथे दिन ही उसे रसोई की राह दिखा दी गई, जहाँ प्रविष्ट होते समय वह अपनी मम्मी को बेहताशा याद करती रही थी, जिन्होंने स्त्रियोचित दूरगामी दृष्टि से दिवा को कच्चा–पक्का खाना बनाना सिखा ही दिया था। उसी सीख के सहारे वह किसी तरह रसोईघर के मोर्चे पर भी अपरास्त हो भिड़ ही गई थी चूल्हे–चक्की से और विस्मृत कर दिया था उसने अपने अतीत को... अर्थात् अपनी डिग्री, सक्रिय छात्र जीवन और लोकव्यवहार का प्रच्छन्न अनुभव, अपने परिजन, मित्र तथा और भी बहुत कुछ।

लेकिन इन तमाम बातों के बावजूद–हल्का सा संतोष यह था कि विपिन का स्वभाव बहुत फनी था। एकदम भोला और अबोध बच्चे सा नजर आता विपिन। जब उसके पास होता तो वह आश्वस्त हो उसकी गोद में सिर रखकर गहरी नींद में खो जाती थी। उसे वे क्षण अब भी याद हैं जब झिझकते हुए विपिन ने पहली बार उसको पत्नी की तरह छुआ था। मानव शरीर के राई–रत्ती से परिचित होने के बाबजूद कितनी अनजान और अनाड़ी हरकतें करता था उस रात। वह खुद संकोच में थी। उन रातों में उनकी आधी–अधूरी बातें होती। क्योंकि बगल के कमरे में मौजूद अन्य लोगों द्वारा उनकी बातें सुन लेने का भय उन्हें न सोने देता था, न जगने। 'पापा के घर' लौटकर वह अपने पूरे प्रयास के बाद भी चुप नहीं रह पाई थी। तड़पकर उसने मम्मी से पूछा था क्यों नरक में झोंक दिया मुझे? आपको पता है जो लिविंग–स्टैंडर्ड विपिन के घर का है, वैसा रहन–सहन तो इस घर के नौकरों तक का नहीं है। मम्मी विचलित हो उठी थीं और डैडी भी उसके असंतोष को जान शांत न रह सके थे। वे अकेले में बैठ के बेआवाज रूदन कर रहे थे।

कितने बुद्धिमान थे डैडी। एक दिन अकेले में उसे अपने पास बैठाकर धीरे–धीरे उसे सब कुछ पूछते रहे थे और उन क्षणों में वह भी नन्ही–बच्ची बन गई थी। लाड़ में ठिनकते हुए ससुराल के हर आदमी के बारे में हर घटना के बार में वह डैडी को बताती चली गई थी। डैडी आहिस्ता से बोले– ''देखो बेटा, यह सब तो हमको पहले सोच लेना था। घर–द्वार कौन देखता है आजकल? सब लोग लड़के का जॉब देखते हैं। तुम्हीं बताओ, हमने विपिन के रूप में तुम्हारे लायक सही लड़का ढूँढ़ा है न और फिर रही बात घर की तो तुमको कितने समय रहना है उस घर में? ज्यादा से ज्यादा एक बार कुछ दिन के लिए और जाओगी वहाँ, इसके बाद तो विपिन की नौकरी की जगह पर रहना ही है तुम्हें। वहाँ मेंटेन करना अपना स्टैंडर्ड।''

एक पल चुप रह गए डैडी तो उसकी प्रश्नाकुल निगाहें उनके चेहरे पर जम गई थीं। धीरे–धीरे बोले थे ''और बेटा जो होना था, वह तो हो लिया। पुराना भूल जाओ सब। अब उस घर की लाज, इज्जत, मर्यादा सब तुम्हारी। हम तो पराये हो गए तुम्हारे लिए।''

संजीदा हो गए पिता की गोद में सिर छिपा लिया था दिवा ने।

अगली दफा ससुराल पहुँची तो बाबूजी का आग्रह मानकर विपिन उसे छत्तीसगढ़ ले गया था। प्रकृति प्रेमी दिवा को बड़ी सुखद अनुभूति हुई थी वहाँ। प्रकृति के उन्मुक्त स्वरूप और गगन के प्रच्छन्न वितान–तले फैली हरीतिमा ने उसका मन मोह लिया था। बस अखरी थी तो एक बात। बोलने–बतियाने के लिए अच्छी कंपनी नहीं मिल सकी उसे। गिने–चुने मैदानी परिवार थे उस गाँव में बिलकुल पृथक परिवेश में पोषित थे वे सब। उस दफा जल्दी लौट आई थी दिवा। विपिन फिर ड्यूटी पर चला गया था। यहाँ सब कुछ ठीक–ठीक चलने लगा था। कभी–कभार मन में आ जाने वाली ऊब और अकुलाहट के अलावा। सामान्यतः दिवा अपने आपको उस माहौल में खपाने लगी थी कि एक दिन अचानक अम्माजी की तबीयत बिगड़ गई और उन्हें अस्पताल ले जाना पड़ा था। सीने में दर्द की शिकायत तो उन्हें वर्षों से थी, मगर वह दर्द इस बार ऐसा था कि जानलेवा हो गया था। अस्पताल में ही उनका शरीर छूट गया। तार पाकर तीसरे दिन विपिन आ पाया था तो यह जानकर कितना दुख हुआ था उसे कि नवीन भैया ने बड़ी मान–'मनौब्बल के बाद अंतिम क्रिया संपन्न की थी और तुरंत लौट गए थे। रूपा भाभी तो ऐसे गमगीन माहौल में झाँकने तक न आई थीं इस घर में। शोक और सन्नाटे में डूबे घर में रश्मि और दिवा, अपंग बाबूजी के सहारे उसके इंतजार की एक–एक सेकंड और मिनट गिन रही थीं।

माताजी की तेरहवीं के बाद जिस दिन विपिन अपनी ड्यूटी पर लौटने की तैयारी कर रहा था उस दिन बाबूजी को सुबह से कुछ घबराहट होने लगी। सीने में दर्द और बेइंतहा गर्मी का अनुभव करते बाबूजी का चैक–अप जब खुद विपिन ने किया तो पाया कि उन्हें हार्टअटैक हुआ है। स्थानीय अस्पताल में भर्ती करते–करते बाबूजी पर लकवे का दूसरा हमला हुआ। फिर तो विपिन प्राणपण से उनकी खिदमत में जुट पड़ा था। टैक्सी करके वह फिर ग्वालियर भागा था और बाबूजी को भर्ती करा दिया था।

इस बार सिवियर अटैक था, इस वजह से डॉक्टरों को भी ज्यादा उम्मीद न थी। पंद्रह दिन बाद चिकित्सकों ने निराश मन से उसे घर लौटा दिया था। बाबूजी के हाथ–पाँव हिलाने के लिए कुछ एक्सरसाइज भर उन्होंने बताई थी। किंकर्तव्यविमूढ विपिन दिन–रात बाबूजी की परिचर्या में व्यस्त रहने लगा था। तभी शहर में एक प्राकृतिक चिकित्सक का सात दिन का शिविर लगा था। मरता क्या न करता, विपिन वहाँ जा पहुँचा था। उनके परामर्श से बाबूजी की प्राकृतिक चिकित्सा प्रारंभ हुई थी। चुंबक के पानी की मालिश होती, वही पानी उन्हें पिलाया जाता।

चमत्कार–सा हुआ। बाबूजी अच्छे होने लगे। उनके हाथ–पाँव में हरकत शुरू हुई और मुँह से टूटे–फूटे स्वर निकलने लगे। अब जाकर सबने राहत की साँस ली थी। वे धीरे–धीरे अपनी पुरानी हालत में लौटने लगे थे।

अचानक एक दिन अपने विभाग से विपिन को तार मिला। उसे तत्काल ज्वॉइन करने का आदेश दिया गया था। वह भी जानता ही था कि नई नौकरी में इतनी छुट्टियाँ भला कहाँ मिलेंगी? सो दिवा के जिम्मे सब कुछ छोड़कर वह अपनी नौकरी पर भाग गया।

जब भी विपिन आता वे दोनों अकेले में मिलने को तरस जाते। यदा–कदा ऐसा अवसर आता भी तो चिंतित और व्यग्र विपिन उससे उतावली में मिलता और उसी उतावली में पार हो जाता। वह क्षुब्ध हो उठती। हर बार की अतृप्ति, अनबुझी प्यास, उसके मन में कुंठा बढ़ा जाती। दिवा की कितनी इच्छा होती थी कि वे लोग दुनिया जहान की बातें करें। थियेटर में साथ जाकर फिल्म देखें, बाजार घूमें। क्रिकेट मैच की बात करें। नए फैशन के पकड़ों पर बहस–मुबाहिसा करें। बाजार में नई छपकर आई किताबों और पत्रिकाओं पर चर्चा करें। लेकिन विपिन को इन सब फालतू बातों के लिए शुरू से ही कहाँ समय रहा है। पढ़ने लिखने के नाम पर वह सच्चे किस्से और अपराध–कथाओं तक सीमित था। शायद इसी का असर रश्मि पर रहा है। वह भी उसी टाइप का साहित्य पढ़ती रही है और ज्यादा से ज्यादा हुआ तो महिलाओं के लिए छपने वाली कोई बुनाई विशेषांक या व्यंजन विशेषांक वाली पत्रिकाएँ पढ़ती रही है। रश्मि की नज़र में सारे खेल मर्दों तक सीमित हैं और सारे फ़ैशन अनाप–शनाप कमाने वाले करोड़पतियों के बच्चों के लिए सुरक्षित हैं। कितनी ऊब और अकुलाहट महसूस करती रही थी दिवा उन दिनों।

''आज नाश्ता नहीं बनाना क्या भाभी?'' रश्मि अपने तीखे प्रश्न के साथ उसके सिर पर मौजूद थी। वह झल्ला उठी। रश्मि ने आज तक कभी दो एक दिन को यानी जरूरत के दिनों में भी मजाल क्या किचन का मुँह देखा हो। आदेश ऐसे देती है जैसे दिवा जर–खरीद गुलाम हो उसकी।

दिवा चुपचाप उठी और किचन में घुस गई। लकड़ी धुँधुआकर जलने लगी थी। चूल्हे पर कड़ाही रख दिवा ने गीले रखे पोहे बनाने की तैयारी शुरू कर दी।

नाश्ता करके रश्मि कॉलेज चली गई तो उसने खाना बनाया और बाबूजी को खिलाया, फिर छोटे मोटे कामों में उलझ गई। उसने अभी खाना नहीं खाया क्योंकि आज गुरुवार का व्रत है उसका।

गुरुवार की याद आते ही उसकी स्मृति का दूसरा दरवाजा धड़ाक से खुल गया। अरे बाप रे! आज तो दीपू आयेगा उसे झटपट तैयार हो जाना चाहिए। नहीं तो उसे बागड़ बिल्लो बनी देख, जाने क्या–क्या सुनाने लग जाएगा। जहाँ का काम तहाँ छोड़कर उसने बाल खोले और कंघी फेरने लगी।

दीपू! दीपू! दीपू!

वह नाम उसके दिल–दिमाग में पिछले कई बरसों से ताजगी भर देता है, क्षण–क्षण। याद आई उसे दीपू से हुई मुलाकात। शादी के पहले की बात थी वह। दिवा को टायफायड बुखार हुआ था। हाल ही में एम.ए की परीक्षा से निपटी थी। वह उन दिनों अपने कमरे में एकाकी लेटी घड़ी की चाल को कोसा करती थी। बढ़ते–घटते बुखार में भयानक नैराश्य और अवसाद की मानसिकता में डूबी। उन दिनों वह छत की फर्सियों को मापती, उनकी ऊँची–नीची सतहें नापती दीवारों के पलस्तर के बीच बने छोटे–छोटे सूराखों को गिनती और पुताई की पर्तों में से उभरते अक्शों के बीच कोई आकृति तलाशते–तलाशते जब बोर हो जाती तो बाहर निकलने को बहुत मन करता था। लेकिन डॉक्टर की सख्त हिदायत और डैडी का कठोर अनुशासन उसे कमरे में कैद किए रहता था। ऐसे में वह मन ही मन कष्ट और पीड़ा में तिल–तिल घुलते हुए बड़ा एकाकी और उपेक्षित महसूस करने लगी थी खुद को। शुरू–शुरू में सब उसके पास बने रहते थे मगर लंबी खिंचती बीमारी के कारण घर के सब लोग अपने–अपने कामों में व्यस्त रहने लगे थे। हालाँकि सुबह–शाम तो सब लोग उसके इर्द–गिर्द का इकट्ठा होते थे पर पहाड़–सा दिन प्रायः उसे अकेले ही गुजारना होता।

दिवा की बड़ी दीदी शिल्पा उन्हीं दिनों मायके आई थीं। शिल्पा के साथ एक अजनबी अल्हड़–सा युवक भी था, जो जान–पहचान की परवाह किए बगैर हर आदमी से बात–बे–बात मजाक और छेड़खानी किया करता था। पूछने पर पता चला कि वह था, शिल्पा का देवर– दीपू।

बार रे! बचपन का वह दुबला–पतला और शर्मिला दीपू अठारह–उन्नीस पार करते–करते कैसा खूबसूरत और जिंदादिल युवक निकल आया था। खुद शिल्पा परेशान रहा करती थी उसकी हरकतों से, लेकिन इसी कारण प्यार भी उसे बहुत ज्यादा करती थी। बचपन से शिल्पा के ही ज्यादा निकट रहा था दीपू। दिवा का मन बहल गया। घंटे दो घंटे में वह समझ गई कि दीपू ऊपर से जितना मस्त और लापरवाह है भीतर से उतना ही भावुक और गंभीर भी है। कम उम्र में उसकी दृष्टि उतनी साफ और स्पष्ट थी कि दिवा जैसी गंभीर व पढ़ाकू नवयुवती उसके सामने नन्हीं बच्ची बनी टुकुर–टुकुर ताकती रह जाती थी।

दीपू का अड्डा दिवा के कमरे में जमा। उसका उदास व नीरस कमरा गुलजार हो उठा। हमेशा दिवा को हँसाता गुदगुदाता दीपू ढेर सारे चुटकुले छितराता रहता था कमरे के शुष्क माहौल में। बुखार बढ़ जाने पर दिवा निढाल हो जाती तो वह एकाएक विराट गंभीरता ओढ़ लेता। बीच–बीच में मौसम्मी–जूस और दूध पिलाना उसने स्वतः अपनी ड्यूटी में शामिल कर लिया था।

दीपू के आने की पहली ही रात दिवा, बुखार में तपते हुए बेहोशी में तड़पती रही और अब सुबह आँख खोली तो रातभर से जागते लाल आँखें लिए दीपू को अपने सिरहाने बैठे पाया था। उसके मन में अपने से पाँच बरस छोटे दीपू के लिए एक मधुर–सी भावना जागी और भावुकता के उन क्षणों में उसने दीपू का माथा अपनी हथेलियों में लेकर एक गहरा चुंबन ले लिया था।

सन्नाटे में डूबा दीपू देर तक थरथराहट अनुभव करता रहा और... दिवा भी कहाँ शांत रह पाई थी कंबल के भीतर।

तीन दिन के भीतर उन दोनों में ऐसा लगाव हो गया कि एक–दूसरे से चुहल किए बिना उनका समय ही न कटता। पहली बार दिवा को अपनी रुचि का कोई मिला था। वर्ल्डकप क्रिकेट से लेकर रणजी ट्रॉफी तक के खिलाड़ी और पॉप, जॉर्ज संगीत से लेकर बुंदेलखंडी लोकसंगीत तक नए से लेकर पुराने फैशन तक कोई भी तो ऐसा पक्ष न था, जिसको वह बारीकी से न जानता हो। अपने को तीस मार खाँ समझती दिवा एक ही झटके में धरती पर आ गिरी। बातचीत के इस सेतु से वे एक–दूसरे तक पहुँचने लगे थे। कुछ रोज के बाद जब शिल्पा ससुराल लौटी तो हवा पानी बदलने के लिए दिवा को साथ लेती आई।

अब दिवा का अड्डा दीपू का कमरा था। वह मात्र सोने के लिए शिल्पा के कमरे में जाती। इन कुछ घंटों को छोड़कर वे दोनों पूरे समय हँसी–ठहाकों में डूबे रहते थे। दीपू ने पूरा शहर घुमाया था दिवा को अपने साथ। शाम को उनकी गोष्ठी जमती। बीच–बीच में शिल्पा भी आ जाती उनकी चर्चाओं में सम्मिलित होने और कभी तो दिवा के जीजाजी प्रकाश भी अपनी वकालत के झंझटों से मुक्त होकर उनकी महफिल में शामिल रहा करते थे। दिवा का बुखार जा चुका था और कमजोरी खत्म हो रही थी। वह बहुत खुश थी वहाँ।

दीपू से दिवा को नई दृष्टि मिली थी चीजों को देखने और समझने की। वह दीपू के सान्निध्य में इसका और अधिक विकास करने का प्रयास कर रही थी उन दिनों।

फिर वह शायद अनिवार्य हादसा ही था उस रात! तब देर रात दिखाई जाने वाली शुक्रवार की फिल्म दूरदर्शन से प्रसारित हो रही थी। बाहर मौसम बेहद खराब था। आसमान में गड़गड़ाते जलधर और चमकती बिजली वातावरण को अपनी रूपहली चमक से एक पल के लिए प्रकाशित कर फिर से अंधेरे में डुबा जाती थी। अपने कमरे में निकट बैठे दीपू और दिवा ने टटोलने के लिए हाथ बढ़ाए तो एक–दूसरे के अनियंत्रित उत्तेजित शरीर उनकी जद में थे। फिर तो पता नहीं किसने क्या हुआ। वे निकट से निकट तक होते चले गए। जाने कब से घिरते–घुमड़ते बादल खूब बरसे उस रात। बाहर भी, भीतर भी।

शिल्पा की पुकार सुनकर वे चौंके और अस्त–व्यस्त दिवा ने उठकर कपड़े सँभालते हुए शिल्पा के कमरे की ओर दौड़ लगा दी थी। वह पूरी रात दिवा ने आँखों में काटी थी।

सुबह उठी तो दिवा संकोच और शर्म में डूबी थी जबकि दीपू पूर्ववत स्वच्छंद और मुखर मुद्रा में मौजूद था। देर तक दिवा उसके कमरे में आने से कतराती रही, पर जरा सा मौका मिला दीपू को, तो वह खुद दिवा के पास पहुँच गया था। दबे स्वरों में दिवा ने रात में सब कुछ गलत हो जाने की बात कही तो वह फट पड़ा था– ''कैसी गलती? काहे की गलती? आपने कभी सोचा समझा है ऐसी प्यारी गलतियों के बारे में? सुनो मैडम जिसे आप गलती कह रही हैं, वह तो इस दुनिया का मूल तत्व है, परम सत्य है।''

''पर हमारा समाज और उसके कायदे''

''किस कायदे की बातें कर रही हैं मैडम? चलिए, आप की ही भाषा में बात करूँ। आपने तो पुराण साहित्य खूब पढ़ा है। पुराणों के अनुसार कौन देवता ऐसा है जो काम के पाश से बचा रह गया है? इंद्र, ब्रह्मा एवं महेश, है कोई उदाहरण?''

लेकिन कौन मान्यता देगा हमारे तुम्हारे रिश्ते को? ये प्रतिलोम रिश्ते?

''बकवास!.... किसकी मान्यता चाहिए तुम्हें? इस समाज की? या इस धर्म की या संस्कृति की? ध्यान रखो कि अनुलोम–प्रतिलोम विवाह और जायज–नाजायज रिश्तों की बातें नपुंसकों की बकवास है सब।'' दीपू का स्वर तिक्त हो उठा था और दिवा को चुप रह जाना पड़ा था। इसके बाद दिवा ने प्रतिरोध नहीं किया था और कई दफा उस अनुभव को जिया था। पूरी प्राणवत्ता और हिस्सेदारी के साथ। दीदी के यहाँ से लौटना बहुत अखरा था उसे। लेकिन क्या किया जा सकता था। उम्र में पाँच वर्ष छोटे नाबालिग दीपू के साथ जिंदगी भर रहने की अनुमति कौन दे सकता था उसे? ज़ाहिर है कि न घरवाले, न समाज और न कानून। हालाँकि दीदी को जाने कैसे ज्ञात हो गया था सारा गोरखधंधा।

घर लौटकर द्वंद्व में जीने लगी थी वह। कभी दीपू के तर्क उसे सही लगते थे, तो कभी बचपन से कोमल मन पर पड़े नैतिकता संबंधी संस्कार उस पर हावी होने लगते थे। तब अपराध बोध से घिर जाती थी वह। गनीमत थी कि अभी बात उस तक थी। लेकिन जल्दी ही शिल्पा दीदी का दौरा अपने मायके का हुआ और उन्होंने ऐसा मंत्र फूँका कि मम्मी और डैडी का व्यवहार ही बदल गया उसके प्रति। उसे याद है, डैडी ने उसके पूर्व उन तीनों भाई बहनों यानी शिल्पा, दिवा और अंकिचन में कभी भी कोई भेदभाव नहीं रखा था। तीनों को एक–सी सुविधा स्वतंत्रता दी गई थी, पढ़ने और विकास करने की। इसीलिए उस उपेक्षा के बाद वह अपनी ही नजरों में खुद को गिरा हुआ महसूस करने लगी। यदा–कदा टपक बैठने वाला दीपू भी संभवतः आने से प्रतिबंधित कर दिया गया। दिवा के लिए तेजी से लड़का ढूँढ़ा जाने लगा।

दिवा का विपिन से रिश्ता हुआ।

विवाह हुआ। वह श्रीमती दिवा बनकर इस घर में आ गई थी। अपने आपको नई जिंदगी के प्रवाह में सम्मिलित करके उसने पिछला सब कुछ भुलाने का प्रयास किया

था। विपिन को तो घर में लगातार आते संकटों के कारण अपनी जिम्मेदारी और बीमार पिता से सरोकार रखने के अलावा इतनी फुरसत नहीं थी कि उससे कोई गहरा मतलब रखता। दिवा ने भी अपने तन–मन की अतृप्ति कभी विपिन पर जाहिर न होने दी थी और ज्यों–त्यों दिन गुजर रहे थे। लेकिन कई बातें ऐसी थीं जिनसे विपिन के दिल में मौजूद प्यार का बोध उसे हुआ था और मोहित सी हो चली थी वह विपिन के प्रति। तभी हठात दीपू एक दिन उसके ससुराल आ धमका। दोनों में बहस छिड़ गई थी पुराने संबंधों को लेकर। दिवा पुरानी गलती न दोहराने की दुहाई दे रही थी, जबकि सूखकर काँटा हो रही उसकी देह और दिनोंदिन बढ़ते जा रहे चिड़चिड़ेपन को अतृप्ति–चिह्न बताकर दीपू उसे प्रोत्साहित करता रहा था। वह कहता था 'न पहले गलती थी, और न अब है।'

पर वह राजी न थी। दीपू उसका मुखर प्रतिरोध देखकर वापस लौट गया था और कई दिनों तक इस उलझन में उलझी रह गई थी कि किसके प्रति वफादार रहे वह, दीपू के या विपिन के। मौजूद होने पर विपिन पर भी तरस आता था उसे। क्या करे बेचारा? न बाप के प्रति लापरवाह हो सकता है न अपनी नौकरी के प्रति। वैसे उसका तो दीवाना है वह जब तक रहेगा ऐसे ताकता रहेगा जैसे आँखों के रास्ते पी ही जाएगा उसे। घर और पिता से बचा हुआ समय वह दिवा को देता था। थके और श्लथ शरीरों को उस थोड़े समय का मूल्य ही क्या था। हाँ! विपिन की गैर मौजूदगी में जरूर उसे गुस्सा आता रहता था।

दीपू के लौट जाने के बाद बड़ी अन्यमनस्क बनी रही थी उस दिन और चाहती रही भीतर–ही–भीतर कि दीपू फिर लौट आए। लेकिन जिस दिन दीपू आया तो खुलकर स्वागत नहीं कर सकी थी उसका। किवाड़ खोलकर देहरी पर ठिठकी रह गई वह। कई क्षण बीत गए थे।

''अंदर आने के लिए नहीं कहोगी?''

दिवा ने एक भरपूर नजर से उसे देखा था और मुड़कर भीतर चली गई। दीपू पीछे चल पड़ा था।

''आओ भी नहीं कहा''

''कुछ आगमन ऐसे भी होते हैं जिनकी प्रतीक्षा भी होती है और वे टल जाएँ तो निष्कृति का बोध भी। शब्दों से स्वीकृति देने की निर्द्वंद्वता और साहस नहीं है मुझमे दीपू। चाह तो होती है तुम्हारी, पर जाने कैसे काँटे बिछे हैं कि दौड़कर तुम्हें अपने में समेट लेने की आतुरता ठिठक जाती है। पूछा मत करो तुम।''

''कैसे हो''

''ऐसे पूछ रही है, जैसे पिछले जन्म के बाद मिली हो।''

''तुमसे मिलकर हर बार पुनर्जन्म ही तो होता है मेरा।''

''दलअसल, ये दिमागी जड़ता ही तो तुम्हारी कमजोरी है।''

नहीं दीपू, मैं न लकड़ी–सी जल पाती हूँ और न आग से अप्रभावित ही रह पाती हूँ। सीलन और ताप के बीच धुँधआते रहना ही शायद मेरी नियति है। तुम समझा करो कुछ।''

इससे ज्यादा बात नहीं कर सके थे वे दोनों। रश्मि आ गई थी। फिर वह रात भी बातों ही बातों में बीत गई थी। विपिन को भूलकर दीपू में खो गई थी वह। ढेर सारी बातें और ढेर से विषय थे उन दोनों के पास न जुबान थकती, न मन भरता था। सुबह दीपू लौट गया था।

तब से यही क्रम जारी है। महीना पंद्रह दिन में दीपू आता है और कोशिश करता है कि उसकी झिझक टूटे, लेकिन दिवा उबर नहीं पाती है अपने द्वंद्व से। कई दफा तो लगता है कि दीपू का आना सार्थक हो ही जाएगा पर बात बस कुछ कदम आगे बढ़ती है और श्लय होकर गिरी रह जाती है, मंजिल के पहले ही। दीपू इस मृगतृष्णा में जी रहा है लगातार।

अचानक घंटी बजी तो चिहुँक उठी। दरवाजा खोला तो गैसवाला था ''वाह इस बार बड़ी जल्दी आ गई गैस।'' कहते हुए उसने रास्ता दिया और सिलिंडर बदलवाने लगी।

गैसे वाले को गिनकर रुपए दे रही थी कि घंटी फिर बजी। उसने दरवाजे की ओर झाँका तो तबीयत प्रसन्न हो उठी। वहाँ मौजूद लकदक दीपू उसकी अनुमति के इंतजार में तत्पर खड़ा था।

संपर्क

89, ओल्ड हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी बस स्टैण्ड, दतिया, मध्यप्रदेश–475661

फोन–9826689939, ई मेल–raj.bohare@gmail.com

❑❑❑

हिंदी कहानी

मृत पिता की चिट्ठी

अनामिका अनु

काव्य संग्रह–इंजीकरी तथा 'केरल के कवि और उनकी कविताएँ' का संपादन एवं अनुवाद। विभिन्न पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। भारत भूषण पुरस्कार से सम्मानित।

प्रिय अमिताभ,
स्नेह!

अब भी तुम्हारे गालों पर डिंपल पड़ती होगी।

सोलह साल के हो गए। मैं सालभर पहले तुम्हें छोड़कर चला आया। तुम्हारे माथे पर अब एक आध शिकन आ गई होगी और जेब बिलकुल खाली होगा। एक हाथ में कलम और एक हाथ में किसी मॉल या ऑफिस का लैपटॉप होगा। तुम पार्टटाइम नौकरियाँ करके महीने भर का ख़र्चा और फीस जुटाते होंगे। खाना अब द्वितीय आवश्यकता की श्रेणी में आ गई होगी। भोजन से बचाकर कॉलेज की फीस भरते होंगे तुम।

तुम्हारी वह मुस्कान अब भी याद आती है, मरने का बहुत अफसोस होता है मुझे। मैं मरना नहीं चाहता था। चाहने से कुछ नहीं होता, शायद इसलिए मर गया। यहाँ नहाने–धुलाने, खाने जैसी आवश्यकताएँ खत्म हो चुकी हैं। मगर एक भार हमेशा आत्मा पर लदी रहती है। स्मृति का भार सृष्टि की सबसे भारी वस्तु है। जो अदृश्य है मगर दृश्यों में संगृहीत हैं। इस मोटरी में असंख्य चित्रों वाला एलबम है।

तुम गुनगुने तेल लगाकर मुझसे पूछ रहे हो:

हो गया पापा? मैं अब पढ़ने जाऊँ?

मैं कहता हूँ: अभी थोड़ी देर और बैठो न पास में। निहारना चाहता हूँ तुम्हारा चेहरा।

तुम ऑर्गेनिक केमिस्ट्री की किताब लेकर आते हो और ठीक मेरे मुख के सामने बैठकर न्यूमेरिकल बनाने लगते हो।

मैं तुममें घुलने लगता हूँ।

तीर्था परवल में मसाले भरकर उसे तल रही होती थी। सुगंध नाक तक पहुँचती थी और मन करता था कि भरवाँ तले परवल और गरमागरम भात खाऊँ। दाल खाने की इच्छा एकदम ख़त्म हो गई थी तब।

दाल तो बस चौदह साल तक ही अच्छी लगी मुझे। खेत की अरहर की दाल। भूनी और दरी। जब दाल घी के साथ पकती तो पूरा घर गमक उठता था।

गाँव से जितना दूर हुआ दाल से उतना विरक्त। गाँव दूर होता जाता था। भूख बढ़ती जाती थी और अन्न कम होता जाता था। लगता है अतृप्त ही मरा। पिता की कमाई से ही भरपेट खाया। अपनी कमाई से किसी पहर कभी भी भरपेट नहीं खा पाया।

हँसोगे कि मोटा ताजा तो था, तुमने जब कंधे पर उठाया होगा। तब वजन और भी अधिक होगा।

वह वजन तुम उम्रभर महसूस करोगे।

तुम्हारी माँ की और तुम्हारी नाक बड़ी तीखी और सुंदर है। तुम्हारी माँ की सभी कामनाएँ अधूरी ही रही, मुझे लगता है अपनी कामनाओं का एक छटाँक भी वह मुझसे व्यक्त नहीं कर पाई जो व्यक्त किया उसका एक छटाँक भी मैं पूरी नहीं कर पाया।

आजकल डेढ़ सौ टिफिन बनाती है दो बजे से उठकर। उसकी रात कब होती है?

उसने रात और दिन को फेंटकर जो बनाया है उसे ही शायद संघर्ष की बेला कहते होंगे लोग।

उसकी हथेली पहले से अधिक खुरदरी हो गई होगी।

वह बंगाली ताँत साड़ी वाला अब भी आता है क्या?

वह हर साल आता था पर कभी तीर्था ने कुछ भी नहीं खरीदा। देखती जरूर थी, उसका मन रखने के लिए और अगली बार आने का आग्रह कर उसे लौटा देती थी। कितना भार लेकर वह तीसरी मंजिल पर आता है, यह कहकर वह रसोई में चली जाती थी। हर बार साड़ी वाले से वह कहतीः ऊपर क्यों चले आए मुझे लेना होगा तो मैं नीचे चली आऊँगी।

वह हँसकर कहता थाः

दीदी आपको इस वक़्त काम से फुर्सत कहाँ कि सड़क पर कान जमाओ।

कहता तो वह बिलकुल ठीक था। तीर्था पूरा समय रसोई और घर के काम में निकाल लेती थी। देर रात सोती और अहले सुबह उठती।

कोई चिंता थी जो उसे न सोने देती, न बैठने देती थी।

अब चिंता और अधिक होगी तो और भी कम सोती और बैठती होगी।

यहाँ दिनभर प्रकाश रहता है। अंधेरे जैसी कोई भी चीज़ नहीं है यहाँ। देह का भार नहीं है मगर मन के सब दुःख जस के तस हैं।

हल्दी रंग वाला मेरा कुर्ता तुम छोटा करवा लेना और पहनना। मुझे वह कुर्ता बहुत पसंद था। उसके साथ कजली रंग की बंडी खरीदकर पहन लेना। मेरा बड़ा

मन करता था कि पुरानी बाजार के पास वाले बर्मा बाज़ार से एक सस्ती और गर्म हरी बंडी खरीदकर पहनूँ। मगर हमेशा हाथ तंग ही रहा और मैं अपने लिए खर्च करते वक्त कभी उदार नहीं रहा।

तुम्हारे भी हाथ तंग होंगे, कभी–कभी खुद के लिए उदार हो जाना। यह खुद पर किया गया सबसे बड़ा उपकार होता है।

हरा चना राबर्ट चौक के बाद वाली गली में मिलता है, वहीं सितावन नाम का आदमी ठेला लगाता है। उसके पास से सस्ते दाम में अच्छी मिल जाएगी। तुम्हें पसंद है न! पावभर खरीद लेना। तीर्था को भी बहुत पसंद है, प्याज के साथ हल्का भूनकर तुम दोनों खाना। नींबू मत डालना तीर्था को बिलकुल पसंद नहीं है। मैं किसी जन्म में, गर्मी के मौसम में उसके जीवन में वापस लौटना चाहता हूँ। इसी जिद पर यहाँ विचर रहा हूँ।

मैं उसके लिए ताँत की कई साड़ियाँ और खूब सारा वक्त लेकर आऊँगा। तुम्हारे लिए नीली फ्रॉकें लाऊँगा। अगले जन्म में मेरी बेटी बनोगे न?

एक असमर्थ पिता,

जो असमय मरा।

संपर्क

'अनामिका विला', हाउस नंबर 30 (ए) कातुलेन, श्रीनगर, वल्लाकाडांवु, त्रिवेंद्रम, केरल–695008

फोन–8075845170, ई मेल–resistmuchobeylittle181220@gmail.om

❑❑❑

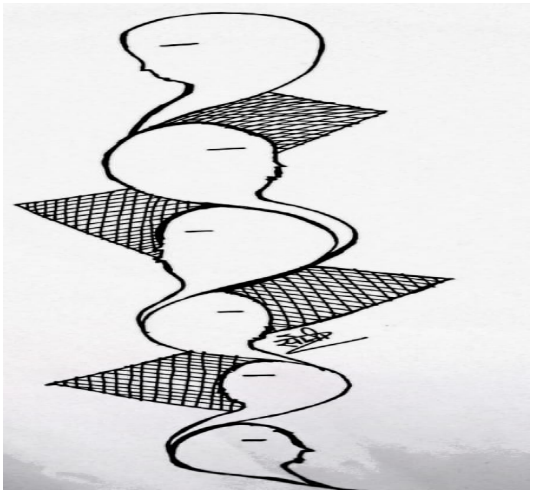

दरियादिल

गौरी शंकर रैणा

प्रख्यात लेखक, अनुवादक और फिल्मकार। अनुवाद की सोलह पुस्तकें प्रकाशित। साहित्य अकादमी के कश्मीरी परामर्श मंडल के पूर्व सदस्य। साहित्य अकादमी के 'अनुवाद पुरस्कार' सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित।

प्रकाश पिछले दो घंटों से सामान उलट–पलट रहा था। अब तक उसने अलमारी का सारा सामान निकालकर पूरे कमरे में फैला रखा था। किताबें, बहुत से पेन, पुराना टाइम–पीस, पुराने मैगज़ीन, स्मारिकाएँ, ग्रीटिंग कार्ड, फोल्डर्स, करेक्टिंग फ्लूड की छोटी–छोटी शीशियाँ–जिनका फ्लूड सूख गया था। विदेशी सम्मेलनों में सम्मिलित होने हेतु दर्जनभर प्रवेश–पत्र, सिनेमा के पुराने मैग्जीन और...। सब फालतू।

उसने सारे कमरे में बिखरे पड़े सामान पर नज़र दौड़ाई। अपनी ढीली बनियान से ऐनक साफ की। अपने उलझे धूसर बालों में उगँलियाँ फेर लीं। फिर अपने पायजामें की दाहिनी जेब में से सिगरेट की डिबिया और लाइटर निकाला। सिगरेट सुलगाया। ऐशट्रे ढूँढने लगा। ऐशट्रे तो मिली नहीं मगर अलमारी से निकाले गए सामान में, बच्चों को कभी इनाम में मिला हुआ कप दिख गया। उसी में राख डालता गया और सिगरेट पीते हुए कुछ सोचने लगा। फिर किसी खोई हुई चीज़ को शिद्दत से ढूँढने में तल्लीन हो गया।

कमरे के एक कोने में तीन अटैचियाँ रखी थीं। एक के ऊपर एक। बहुत बड़ी, उससे छोटी और बिलकुल छोटी ब्रीफकेस जितनी। उसने सिगरेट बुझाया। एक–एक कर अटैचियाँ हटाने लगा। पहले सबसे छोटी, फिर बड़ी और आखिर में सबसे बड़ी जो एक ट्रक के समान थी। पुरानी, मज़बूत और भारी। उसने इसे खोलना चाहा। वह चाभी ढूँढने लगा। एक बड़ी–सी चाभी गुच्छें की होल्डर से लटक रही थी। एक सुंदर छल्ले में चाभियाँ ही चाभियाँ थीं। उसने अटैचियाँ खोलनी शुरू की। ऊपर वाली अटैली में कोई खास सामान तो था नहीं, मगर पुराने ऐल्बम रखे थे। उसने सोचा चलो कुछ पुरानी तस्वीरें ही देख लें। मगर फिर न जाने क्या सोचकर वे ऐल्बम वापस अटैची में रखे और अटैची का ढक्कन बंद करके उसे एक तरफ रख दिया। दूसरी अटैची खोली तो उसमें छोटे तौलिए, एप्रन, दस्ताने आदि रखे हुए थे। इस अटैची को भी एक

तरफ रखा। फिर गुच्छे में से सबसे नीचे वाली बड़ी अटैची की चाभी ढूँढने लगा। थोड़ी कोशिश के बाद चाभी मिल गई। ढक्कन उठाया तो देखा कि अटैची ऊपर तक कपड़ों और साड़ियों से भरी हुई है। उसने एक साड़ी हाथ में उठाई। वह इस साड़ी को लिफाफे में से निकालने ही लगा था कि सामने उसकी पत्नी उषा प्रकट हो गई, ''क्या कर रहे हो! क्यों खोल रहे हो इसे। खराब हो जाएगी। अभी कुछ दिन पहले ही ड्राइक्लीन करवा के रखी है। तुम्हें याद है, यह साड़ी खरीदने हम एक साथ गए थे।''

''कुछ याद नहीं आ रहा है।''

''तुम्हें तो कुछ भी याद नहीं रहता। याद करो ना! यह साड़ी तुमने ही पसंद की थी। लखनऊ में।''

''वहाँ क्यों?''

''क्योंकि वहाँ तुम्हारे छोटे भाई रहते थे, उन दिनों, और हम उनसे मिलने गए थे।''

''हाँ–हाँ याद आया। मगर इनको पहना भी तो करो ना। नई की नई रखी हैं। और यह इतने अच्छे–अच्छे सूट इन्हें कब पहनोगी?''

''पहनूँगी, सब पहनूँगी। नाती–नातिन वाली हूँ। आए दिन कोई न कोई तीज–त्योहार होता ही है। अब देखो ना नातिन का जन्मदिन आने वाला है, उस दिन क्या पुरानी साड़ी पहनकर जाऊँगी।''

''कल को बेटे की दुलहन देखने जाऊँगी, तब?''

''तब भी नई साड़ी पहनना। इतनी तो हैं इस अटैची में और उस कबर्ड में भी। पूरी अलमारी भरी पड़ी है कपड़ों से।''

''मगर सभी चीज़ें अपने लिए नहीं हैं। बाँटने के लिए भी रखी हैं। ये जो पीले लिफ़ाफ़ों में किस्म–किस्म के नए सूट रखे हैं यह सब उपहार में देने के लिए हैं। सालभर में पूरे गिफ़्ट निकल जाएँगे। फिर यह अटैची एक तरह से खाली ही हो जाएगी। फिर जो मेरी तीन–चार साड़ियाँ रहेंगी उन्हें कबर्ड में हैंगरों में टाँग दूँगी।''

''और फिर तुम फिर से चाँदनी चौक जाओगी और यह अटैची फिर से भर दोगी। जानता हूँ तुम्हारी दरियादिली को। सबके पास गिफ़्ट लेकर पहुँच जाती हो।''

''तो इसमें बुरा क्या है?''

''मैंने कब कहा? अपनों को अपने उपहार न दें तो कौन देगा। मैं जो कपड़े पहनता हूँ वह भी तुम ही खरीदकर लाती हो। कितना ख्याल रखती है तू सबका।''

उषा थोड़ा मुस्कुराई, थोड़ा शरमाई और फिर दूसरे कमरे में चली गई। प्रकाश ने डिबिया में से एक और सिगरेट निकाली। उसे सुलगाया और कमरे में बिखरी हुई चीज़ों को देखने लगा। अपार्टमेंट के बिल्डिंग के लगभग सभी फ्लैटों की रोशनी बुझ गई थी। रात के साढ़े ग्यारह बज रहे थे। बाहर अमावस का सा अँधेरा था।

उसकी नज़र एक ट्रेवल–मैगजीन पर पड़ी। उसने सिगरेट के दो–तीन कश लिए और मैगजीन को उठाया। बल्ब की रोशनी में मैगजीन के पन्नों पर कई सुंदर, रंगीन, झिलमिल टूरिस्ट डेस्टिनेशन दिख रहे थे। वह पृष्ठ पलटता रहा। एक पृष्ठ पर हॉलीडे पैकेज का एक बड़ा सा विज्ञापन दिया था। सिंगापुर पाँच दिनों का टूर। चार रात सिंगापुर में, ब्रेकफास्ट, सिटी टूर, एयरपोर्ट 'ट्रॉंसपोर्ट' यूरोप पैकेज, एक्सक्लूसिव टूर पैकेज। दूसरा विज्ञापन डोमिस्टिक हॉलीडेज़ का था। गोवा, केरल, कश्मीर, शिमला–मनाली, दार्जीलिंग। ''हाँ यह ठीक रहेगा। इस बार मैं उषा को दार्जीलिंग जरूर ले जाऊँगा। कल ट्रैवल एजेंसी को फोन करूँगा और दफ़्तर से आते ही उषा को सरप्राइज़ दूँगा'' वह सोचने लगा। उसने होठों में दबा सिगरेट निकालकर इनामी–कप में बुझाया। शैल्फ से लेटरपैड उठाया। पेन ढूँढ़ा और टूर एजेंसी का नंबर व पता नोट करने लगा। फोन नंबर लिख ही रहा था कि पीछे से बेटे की आवाज़ सुनाई दी।

''पापा, अभी तक सोये नहीं।''

''हाँ यह नंबर लिख लूँ'' प्रकाश ने अपने बेटे राजू से कहा, जो अब सामने खड़ा था।''

''यह आपने कमरे का क्या हाल कर रखा है। पूरा सामान बिखरा पड़ा है। और यह यह मम्मी की अटैचियाँ क्यों खोल रखी है?''

''मैं उससे पूछ रहा था कि.....''

''किस से?''

''तुम्हारी मम्मी से,''

''मगर वह इस दुनिया में है ही कहाँ''

''हाँ मगर.....''

''कोई मगर नहीं, उसको गए हुए आज पूरे पंद्रह दिन हुए हैं। उसका अंतिम संस्कार भी.....''

प्रकाश बेटे की तरफ़ देखता रहा। निरुत्तर। ऐनक के पीछे, अंदर धँसी हुई, आँखों से आँसू बहने लगे।

संपर्क

1901, टावर–1, स्काई गार्डेन्स, सेक्टर–16–बी, ग्रेटर नोएडा, (पश्चिम) पिन–201318

फोन–9810479810, ई मेल–gsr19@rediffmail.com

❑❑❑

'वो जिंदा है'

किश्वर सुल्ताना

आकाशवाणी से लगभग सत्तर वार्ताएँ एवं दूरदर्शन पर अनेकों साक्षात्कार प्रकाशित। तीन पुस्तकें प्रकाशित। पचास से अधिक सम्मान प्राप्त। संप्रति–एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर, उत्तर प्रदेश।

नहीं हुआ
बरदाश्त
वो सदमा
ज़िंदगी हारकर भी
जीत गया
वो 'इनसान' की जंग
पुलित्ज़र पुरस्कार
पाने की खुशी
नहीं रोक पाई
उसे।
कर ली उसने
आत्महत्या!!
अंतर्मन का
वह विषाद
वह मरती बच्ची
उसके मरने की
प्रतीक्षा में बैठा गिद्ध
भूख!!!
ऐसा दारुण दृश्य!
प्रतियोगिता में तो
दिला गया प्रथम पुरस्कार
लेकिन अंतर्मन की
संवेदनाएँ उसे प्रताड़ित

करती रहीं।
विक्षोभ का
वह क्षण
न होता
तो वह भी जीता।
आत्मग्लानि में
अपना अंत
छोड़ गया
एक प्रश्न?
संपूर्ण
मानवता के लिए।

संपर्क

द्वारा डॉ. जेड ए सिद्दीकी, चौक मुहम्मद सईद खाँ, लंगरखाना, रामपुर, उत्तरप्रदेश–244901
फोन–9870835618, ई मेल–su.kishwar786@gmail.com

❑❑❑

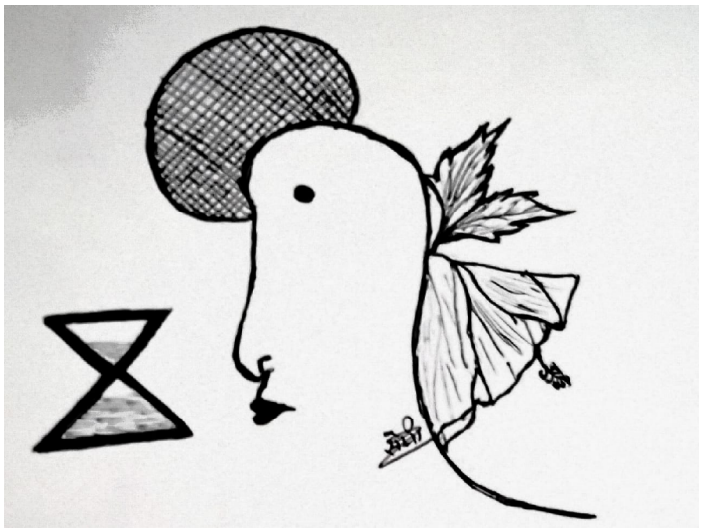

अम्मा का बटुवा

रंजना जायसवाल

दो कहानी संग्रह, एक साझा उपन्यास, एक साझा बाल कहानी संग्रह, एक साझा कविता संग्रह आदि प्रकाशित। अनेक राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं में विविध विधाओं की रचनाएँ प्रकाशित। अंतरराष्ट्रीय संस्था ब्रह्मकुमारी द्वारा नारी भूषण सम्मान से सम्मानित।

आज बड़े बटुए में से
छोटे बटुए को निकालते वक्त
बरबस ही अम्मा की याद आ गई
जिसके आँचल में गठियाई गई पूँजी
किसी खजाने से कम नहीं होती थी
आँचल के छोर में बँधी वह गाँठ
कभी गाढ़े वक्त में किनारा बन जाती
तो कभी छुटके की जिद को
पूरी करने का सहारा बन जाती
कभी दिदिया की विदाई बन जाती
तो कभी नज़र उतारने की रानाई बन जाती
मेरे पास भी एक बटुवा है
पर पूँजी के नाम पर है कुछ कार्ड
शायद एटीएम और डेबिट
जिनमें भरी है बहुत सारी पूँजी
पर खाली है अम्मा के दुलार से
अम्मा के आशीर्वाद से
खुरदुरे उँगलियों की गरमाहट से
खुशियों की सुगबुगाहट से
मेरे पास भी है बटुआ
पर शायद खाली है...?

संपर्क

लाल बाग कॉलोनी, छोटी बसही, मिर्जापुर, उत्तरप्रदेश, पिन–231001
फोन–9415479796, ई मेल–ranjana1mzp@gmail.com

❑❑❑

❑❑❑

अनूदित खंड
ओडिया कहानी

पालटा बाघ

मूलः दाशरथि भूयाँ

अनुवादः भगवान त्रिपाठी

दाशरथि भूयाँ
ओडिया साहित्य में चर्चित नाम। सात कहानी संग्रह, एक निबंध संग्रह और एक उपन्यास (जन्म और जन्मांतर) प्रकाशित। हिंदी की विभिन्न पत्रिकाओं में अनूदित रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति–नागालैंड विश्वविद्यालय के राजनीतिशास्त्र विभाग में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत।

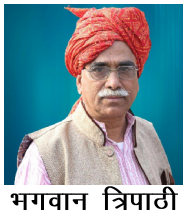

भगवान त्रिपाठी
ओडिया और हिंदी भाषा के जानकार। ओडिया से हिंदी में कई काव्य–संकलन, कहानी–संग्रह और उपन्यास प्रकाशित। ओडिया और हिंदी भाषा के मध्य साहित्यिक विनिमय के लिए उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'सौहार्द सम्मान' से समादृत।

"वाह–वाह कैसा मजा, भालू नाचता है बजाके बाजा।'' सरकस की बात याद आते ही मैं बेचैन होकर दौड़ी इंदु के घर की ओर। काफी साल बाद शहर में सरकस आया था। मैंने कभी सरकस देखा नहीं था। इंदु ने कहा था कि किसी छुट्टी के दिन आने से, मिलकर सरकस देखने चलेंगी। जब मैं इंदु के घर पहुँचा, उस समय वह घर में नहीं थी। पिछवाड़े के बरामदे में धूप लेते हुए मौसाजी अखबार पढ़ रहे थे।

'आप सरकस देखने जा रहे हैं? इंदु कहाँ है?'' मैंने मौसाजी से पूछा।

सरकस देखने जाने के लिए मेरे इस तरह के उतावलेपन और बेचैनी को देखकर मौसाजी तनिक मुस्कुराए। अखबार को सोफे पर रखकर कहा– 'सरकस देखने जाना है न! इंदु के आने तक इंतजार कर।''

'मैंने पूछा, इंदु कहाँ गई है?''

'वह गणित समझने के लिए सर के पास गई है।''

मौसाजी की इकलौती और बिन माँ की लाड़ली बेटी इंदु और मैं दसवीं कक्षा के सेक्सन 'ए' में पढ़ रही थीं। एक ही बेंच में बैठती थीं। हम दोनों की आंतरिकता को देखकर संस्कृत के सर हमें मजाक में कहते, उलुपि–सुलुपी।

मैं फर्श पर बैठ गई और अखबार का एक पन्ना लाकर पलटने लगी। उसमें सरकस का जो विज्ञापन निकला था, उसे पढ़ने लगी। कागज का बाघ दहाड़ते हुए भयंकर दिख रहा था। बाघ की बगल में बिना सूँड़ का हाथी जैसा एक जानवर था। मैंने मौसाजी से पूछा यह क्या है? मौसाजी ने समझा दिया कि वह हिप्पोपोटामस है। अफ्रीका के जाम्बेजा नदी में ये ज्यादा तादात में दिखाई पड़ते हैं। हम उन्हें ओड़िशा में जलहस्ती कहते हैं। अचानक मौसाजी की नजर मेरे बदन पर टिक गई। तिरछी नजर से मुझे निहारते हुए उन्होंने मुझे कहा कि तू इतनी गंदी क्यों दिख रही है? तेरी

माँ क्या तेरे कपड़े–लत्ते साफ नहीं करती है? सिर में तेल क्यों नहीं लगाती है? क्या होटल के काम से फुरसत नहीं मिलती है?

मौसाजी एक जमींदार हैं। अपने इलाके में राजनीति करते थे। गाँव में ढ़ेर सारी जमीन–जायदाद भी है। वे सिर्फ इंदु को पढ़ाने के लिए शहर में बनवाए गए मकान में आकर रह रहे हैं। मौसाजी खुद अपने हाथों से रसोई बनाते हैं। इंदु के मैले कपड़े–लत्ते भी साफ कर देते हैं। इस शहर में हाईस्कूल में एडमिशन होने के दिन ही इंदु से मुलाकात हुई थी। इंदु के पैदा होने के बाद माँ बीमार पड़ी और गुजर गई। तभी से इंदु के प्रति मुझमें सहानुभूति जग गई थी। एक दिन मैं उनके घर गई थी। पहली मुलाकात में ही मौसाजी ने मुझे खूब स्नेह दिया था। उसी दिन से मेरा मौसाजी के घर आना–जाना चलता रहा। मौसाजी को जब हमारे घर की कमजोर आर्थिक स्थिति का पता चला, तब उन्होंने मेरी पढ़ाई में सहायता पहुँचाई। इंदु और मैं एक ही ट्यूशन सर से कोचिंग लेती हैं। जिस महीने ट्यूशन के पैसे देने में पिताजी असमर्थ होते थे, मौसाजी मेरे लिए दे देते थे। गणेशजी की पूजा या दशहरे के त्योहार में इंदु के लिए मौसाजी जो ड्रेस खरीदते थे, उसमें से एक जोड़ी मुझे उपहार में देते थे। हमारे घर में मौसाजी की बात जब भी छिड़ती है सभी उनकी तारीफ करते हैं। उनकी तारीफ सुनकर सबसे ज्यादा खुशी मुझे होती है।

'मेरा सारा कुर्ता मैला हो गया है' कहकर मौसाजी जब मेरे कुर्ते को सूँघने लगे, तब मैं बहुत डर गई। मेरा तमाम बदन पसीने से लथपथ हो गया। मैं सोच रही थी कि मौसाजी मेरे कुर्ते को सूँघ कर करेंगे क्या? हो सकता है कि जोर से एक चाँटा मारकर साफ–सफाई के साथ रहने की ताकीद करेंगे। उसी भय से मैं काँपने लगी।

मौसाजी ने मुझपर न गुस्सा किया न गाल पर चाँटा मारा। उल्टा मेरी पीठ और गाल को सहला दिया। मेरे सिर के बालों पर हाथ फेरा। मुझे लगा कि मेरे तमाम बदन पर कोई बिच्छू घूम–फिर रहा है। मेरे सारे अंग थरथर काँप रहे थे। मौसाजी मुझे खींच कर ले गए और मुझे गोद में बैठा लिया। डर के मारे मेरी आँखें अपने आप बंद हो गई।

मैं मौसाजी के चेहरे को देखने की कोशिश कर रही थी, पर देख नहीं पा रही थी। क्योंकि मेरी आँखें खुल नहीं रही थी। बंद आँखों से ही मैंने अनुभव किया कि मैं अपने गाँव के रमेश की गोद मे लेटी हुई हूँ। हमारा गाँव बहुत ही घने जंगल के बीच में है। गाँव की पश्चिम दिशा में एक छोटा–सा झरना बह रहा है। झरने के किनारे शहर की तरफ एक काली माता का मंदिर है। काली मंदिर की बगल में हमारा स्कूल था, जिसके दरवाजों में बाँस की टट्टियाँ लगी रहतीं। छुट्टियों के दिन तपती दोपहर में हमलोग दौड़ते हुए जाते थे झरने के किनारे। जो जिसे पहले देखता था, उसे स्टैच्यू कर देता था। स्टैच्यू सुनते ही तनिक भी हिलने से उसकी पीठ पर मुक्के दस बार मारने का नियम था। हम बच्चों की टोली में रमेश सबसे हट्टा–कट्टा था।

रमेश की उम्र की तुलना में उसकी शारीरिक अभिवृद्धि ज्यादा थी। उसकी उस चौड़ी छाती और शक्तिशाली दोनों भुजाओं को देखकर सबसे ज्यादा मैं डरती थी। कहीं वह मुझे पहले स्टैच्यू न कह दे, इसलिए मैं उसे देखते ही स्टैच्यू कह देती थी। मेरा निर्देश न मिलने तक वह उसी तरह स्टैच्यू बनकर खड़ा रहता था। इससे छुटकारा पाने के लिए वह मुझे जंगली बेर और इमली लाकर देने का प्रलोभन दिखाता था। फिर मैं उसे स्टैच्यू बनने से मुक्त कर देती थी। वह फौरन गायब हो जाता था घने जंगल में। उसे किसी भूतप्रेत या जंगली जानवरों का भय नहीं था। कैथ, बेल, जंगली बेर आदि जो कुछ मिलता था, उसे अपने पतलून और कमीज की जेब में भरकर लाता था। फिर हम सब काली मंदिर के पक्के मकान में जाकर घरौंदा बनाकर खेलते थे। सबकी सहमति से हमारे घरौंदे के खेल का पिता बनता था रमेश। उससे बेर खाने की आशा से हममे माँ बनने की प्रतियोगिता प्रारंभ हो जाती थी। लेकिन चूँकि लिली हम सबमें सुंदर थी और बड़ी थी, रमेश उसे ही माँ बनने का मौका देता था। बाकी हम सब बहन, बेटी या कोई और भूमिका पाकर संतुष्ट हो जाते थे। फिर हम शाल के पत्तों को इक्ट्ठा करके झूठ–मूठ की दावत के लिए रसोई बनाते थे। रमेश झूठ–मूठ में खेत में हल चलाने तथा लकड़ी इक्ट्ठा करने के लिए जाता था। लौटते समय वह सूखी टहनियों का एक गट्ठा लेकर आता था। घरौंदे की दावत खाकर हम सब सोने के लिए जाते थे। कुछ मंदिर के बरामदे में तो कुछ आम के पेड़ों की ओट में छिपकर सोने का अभिनय करते थे। मैं छिपने के लिए टट्टी के दरवाजे वाले स्कूल में जाती थी। रमेश सबको धमकाते हुए कहता था कि जब झूठ–मूठ की सुबह होगी, तब वह सभी को जगाएगा। यदि पहले कोई जाग गया तो उसकी पीठ पर घूँसे लगाए जाएँगे। इसलिए मार खाने के डर से रमेश के न बुलाने तक हम छिपे रहते थे।

हमारा यह झूठ–मूठ का खेल एक दिन सचमुच के खेल में बदल गया था। इस कौतूहल को लेकर मैं बाँस की टट्टी की दरार से देख रही थी कि रमेश और लिली क्या कह रहे हैं। मैंने जो कुछ देखा, डर के मारे मेरी आँखें बंद हो गई। मुझे लगा कि रमेश लिली पर सवार है और उसकी हत्या कर रहा है। मैं फौरन मंदिर के अंदर जाकर शिवजी की छाती पर खड़ी काली माता से हाथजोड़ कर मिन्नत करने लगी– 'हे माँ, लिली को बचा लो।''

जब मैं मंदिर से बाहर निकली, तब झूठ–मूठ का सवेरा हो चुका था। यह जानकर मुझे आश्चर्य हुआ कि लिली मरी नहीं है। बल्कि लिली काफी खुश नजर आ रही है। लौटते समय मैंने लिली से पूछा– 'तुम दोनों कौन–सा खेल खेल रहे थे?

उसने उत्तर दिया– 'पहले माँ और पिताजी का खेल खेला, फिर वे शिव बाबा बने थे और मैं काली माता बनी थी।''

मैंने उनके शिव बाबा और काली माता के खेल को लिली की माँ को बता दिया था। इसलिए लिली को उसकी माँ ने खूब पीटा था। उसके अगले दिन हम जितने

बच्चे थे, सभी झरने वाले मंदिर के पास गए थे, सभी को एक ही बात कहकर डरा दिया गया था कि बगल वाले गाँव के धिड़या माझी की औरत गगरीभर मंत्रित हल्दी लेकर जंगल में घूम रही है। जिस दिन वह पालटा बाघ को देखेगी उस दिन वह उसके ऊपर मंत्रित हल्दी फेंक देगी। उससे फौरन वह बाघ फिर से धिड़या माझी में तबदील हो जाएगा।

उसके अगले दिन से पालटा बाघ के डर के कारण हम लोगों के घरौंदे का खेल बंद हो गया। सातवीं कक्षा पास होने के बाद आगे की पढ़ाई न करने की अनिश्चितता में रही। गर्मी की छुट्टियों में पिताजी घर से शहर को लौटे। पिताजी के ठेला छोड़कर नाश्ते का होटल खोलने के कारण हम सपरिवार शहर में आ गए।

मौसाजी की गोद में मैं आँखे बंद करके बैठी रही। मौसाजी ने कहा कि तू इतनी शरमा क्यों रही है? मेरे लिए इंदु जैसी है, तू भी वैसी है। तू जहाँ चाहेगी मैं तुम्हे ले जाऊँगा। सरकस कौन–सी बड़ी बात है? मैं तुझे पी.सी. सरकार जूनियर के चमत्कार, जादू का खेल दिखाने ले जाऊँगा। वह तुम्हे स्वर्गलोक की ओर उड़ाकर ले जाएगा। तू वहाँ ढ़ेर सारे चमत्कार से भरे हुए खेल देखेगी। जाएगी? मेरे साथ चलेगी? च...ले...गी...?

मैं चीखते हुए कह रही थी कि नहीं जाऊँगी... नहीं जाऊँगी, लेकिन मेरे गले से कोई आवाज बाहर निकल नहीं रही थी। उस पल मैं क्रोध, आतंक, पीड़ा, ग्लानि और घृणा से जल रही थी। अब जीवन को जैसे भी हो बचाना होगा। मुझे नहीं पता था कि आदमी किस तरह बेहोश हो जाता है। फिर भी मैंने बेहोश होने का नाटक किया और नीचे गिर पड़ी। सँ...सँ... की आवाज के साथ मौसाजी के दोनों नथुनों से साँस निकल रही थी। गाँव के धिड़आ माझी के बाघ में तबदील हो जाने की तरह मौसाजी भी पालटा बाघ में तबदील हो गए थे।

पालटा बाघ शिकारी को दबोचकर दहाड़ मार रहा था। अब पालटा बाघ शिकार पर सवार होकर हमारे गाँव के रमेश द्वारा लिली की हत्या किए जाने की तरह हत्या करने लगेगा। उस भय से मेरे शरीर का सबकुछ ठंडा पड़ता जा रहा था। अचानक इंदु के आने की पदचाप को सुनकर मौसाजी मुझे होश में लाने की कोशिश कर रहे थे। इंदु के पहुँचते ही मैं होश में आकर खड़ी हो गई। बिना मंत्रित जल के पालटा बाघ फिर से पलभर में इंसान में तबदील हो गया था।

संपर्क

दाशरथि भूयाँ– प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, नागालैंड विश्वविद्यालय, हेडक्वार्टर–लुमनी, जिला–जुन्हेबोटो नागालैंड, पिन–798627

फोन–7008132134, ई मेल–dasarathi@nagalanduniversity.ac.in

संपर्क

भगवान त्रिपाठी– सी– 33, शरधाबालि चौथी गली एक्सटेंशन, खोड़ासिंगी, ब्रह्मपुर, जिला–गंजाम, ओडिशा, पिन–760010

फोन–9437037485, ई मेल–bhagaban35@gmail.com

❑❑❑

यही कहानी लिखूँगा

मूल और अनुवाद– वीरभद्र कार्कीढोली

वीरभद्र कार्कीढोली

हिंदी में दो और नेपाली में अठारह पुस्तकें प्रकाशित। हिंदी, अंग्रेज़ी, असमिया, बांग्ला, बोडो भाषा में कई रचनाएँ प्रकाशित। भारत, नेपाल, बांग्लादेश, म्यांमार, कुवैत आदि देशों से पचास से अधिक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति–प्रधान संपादक–'प्रक्रिया','स्थापना'।

"साहब चाय", ऐते की आवाज से नींद टूटी। घड़ी पर नजर डालता हूँ, सुबह के छह बजे हैं। हरिओम शरण का भजन– 'मन मैला और तन को धोए' कैसेट बजाता है ऐते। यह उसकी रोज की आदत है, जब कभी कहीं से लौटता हूँ, मेरी तबीयत को देख कभी गजल तो कभी नारायण गोपाल का कैसेट बजाता है और कभी तो इसी कैसेट को लेकर ही उससे झड़प होती है। लेकिन 'मलाई नसोध कहाँ दुख्छ घाऊ...' (मुझे मत पूछो कहाँ दुखता है घाव...) नारायण गोपाल के इस कैसेट को अक्सर बजाया करता है।

देखने में ऐते सरल लगता है पर है मूडी। देखते ही देखते बड़ा हो गया, हृष्ट पुष्ट भी। जब मैं ले आया था इत्ता–सा था। चाय की दुकान पर प्लेटें और गिलास धोया करता था। दुकानदार की गालियाँ खानी पड़ती है सो अलग। मुझे उस पर दया आई थी इसलिए उसे ले आया था। मुझे भी एक लड़के की जरूरत थी। आज जवान हो गया है, घर लौटने की बात सोचता ही नहीं। माँ–बाप के बारे में पूछने पर कुछ बोलता ही नहीं। एक दिन उसने कहा था– "माँ–बाप जो भी हैं आप ही हैं मेरे।" छोटी उम्र से ही मेरी सेवा कर रहा है, बेचारा।

बेल बजती है, ऐते मेरे पास आकर कहता है– "साहब, रतन सर आए हैं।"

"कौन रतन सर?"

"ठीक है मैं फिर पूछकर आता हूँ..." ऐते निकला और तुरंत ही आ गया– "साहब, आप ही के मित्र कोई एडिटर हैं। आप से मिलना चाहते हैं।"

''यहीं लेकर आ...।'' ऐते निकला।

''नमस्कार रमेश जी। आप अभी भी पलंग पर ही हैं? ऐशोआराम तो बस आप ही के भाग्य में लिखा है।'' दोनों हाथ मिलाते हैं।

''रतन, आओ यहीं बैठो, आज जगने में थोड़ी देर हुई, बैठो यहीं।'' मैं उसे पलंग पर ही बिठाता हूँ। पलंग पर बैठते हुए रतन अपनी टाई की नट ठीक करता है।

''कहो इतनी सुबह कहाँ से? कैसे आना हुआ, कुछ जरूरी? तुम तो यहाँ कभी–कभार ही आते हो।''

घड़ी देखते हुए रतन कहता है– ''सबेरा है क्या अभी? आठ बज चुके हैं। इतनी देर तक बिस्तर पर रेंगने के लिए ईश्वर ने तुम लोगों को ही रख छोड़ा है। इतनी मस्ती भी ठीक नहीं है, जरा ख्याल करो, आलीशान मकान, डनलप–सोफा के जुटते ही झोंपड़ी और लकड़ी के उस पीढ़े को मत भूलना। आज गाड़ियाँ हैं तो क्या हुआ आठवीं में पढ़ते वक्त नंगे पैर लेफ्ट–राइट किया करते थे। इस बात को कैसे भुला दें। प्रगति तो की है तूने, बड़े–बड़े दो मकान तो हैं ही। पाँच–सात गाड़ियाँ भी इसी शहर में दौड़ती हैं। बैंक बैलेंस की तो खैर बात ही नहीं। एक बात और है जब आदमी के पास हद से ज्यादा धन–संपत्ति होती है तो प्रतिभावान लोग भी अपनी भाषा और साहित्य–संस्कृति–कला सब कुछ भूल जाते हैं। है न? मुझे तो ऐसा ही लगता है– रुपया सब कुछ नहीं है।''

बीच में ही मैं बोल पड़ता हूँ– ''अपना भाषण बंद करो और मुझे कहने दो। आज मैं जिस मुकाम पर हूँ, उसमें तुम लोगों का आशीर्वाद भी जुड़ा है। दूसरी बात, मैं फिर लौटकर उस स्थिति पर तो नहीं जा सकता। बड़ी मुश्किल से यहाँ तक पहुँचा हूँ। अब न तुम लौट सकते हो न मैं...''

मेरे तकिए की ओर दीवार पर टंगी तस्वीर पर बहुत देर से नजर गड़ाए देख रहा है रमेश। पता नहीं क्या ख्याल आया गंभीर होते हुए कहा उसने– ''रमेश! मुझे बताओ तो सही क्या तुम शादी नहीं करोगे? संन्यासी बनोगे? जिस हाल में आज तुम जी रहे हो संन्यासी भी तो नहीं लगते। समय की कद्र करो, सरकता जा रहा है समय, समय पर ही समय का काम सही लगता है।''

तस्वीर को देखकर फिर कहा– ''इतनी बड़ी तस्वीर, इतने बड़े फ्रेम पर सजाकर तकिए के ऊपर दीवार पर इस तरह लटकाने का रहस्य क्या है?''

मैंने कहा– ''छोड़ो भी। कहो तुम्हारे अध्ययन और पत्रिका की क्या स्थिति है? मुलाकात नहीं हो रही है तो क्या हुआ, पता है, बड़े–बड़े लोगों के नाम के साथ जुड़ गया है तुम्हारा नाम। तहे दिल से कहता हूँ तुम बड़े हिम्मतवाले हो। खूब इंटलिजेंट,

टैलेंटेड हो, पर एक बात, तुम्हारी पोलाइटनेस खत्म होती जा रही है– शायद मैं सही कह रहा हूँ।''

उसी सिलसिले में रतन कहता है– ''बस बस अब और ज्यादा ऊपर मत उठाओ मुझे। इस वक्त आने का एक ही मकसद है मेरा– अपनी पत्रिका की रजत जयंती अंक के लिए तुम्हारी एक कहानी चाहिए। मुझे मालूम है, कहानी तुम कम लिखते हो पर लिखते अव्वल हो। तुम्हारी कहानियों की शैली मुझे पसंद है। इससे पहले एक आदमी के हाथ चिट्ठी भी भेजी थी, फोन भी किया था पर तुम्हारा अता–पता ही नहीं चलता। जाते कहाँ हो? बात क्या है?''

''कई दिनों बाद मिले हैं हम। एक साथ खेलते बड़े हुए हैं हम, इसीलिए खुलते हुए कहता हूँ– ''संपादक महोदय! तुम्हें पता तो है न हम ठेकेदारों का ठिकाना नहीं होता। कभी इंजीनियरों से मिलना, कभी टेंडर डालने जाना, कभी भुगतान के लिए दौड़ना, फिर कभी रॉड, सिमेंट, रेत, पत्थरों से खेलते–खेलते अपने बारे में सोच ही नहीं पाते। जी तो चाहता है कोई अच्छी कविता, अच्छी सी कहानी पढ़ूँ पर समय कहाँ! तुम्हारी दो–तीन रचनाएँ मेरे पास ही पड़ी हैं। जवाब नहीं दे पाता हूँ। कई दिनों से तुम्हारी पत्रिका के लिए एक अच्छी सी कहानी लिखने की सोच तो रहा हूँ। प्लॉट भी काफी हैं– समझ में नहीं आ रहा कि कहाँ से आरंभ करूँ और अंत कहाँ हो। कई दिनों से कुछ भी नहीं लिख पाया हूँ। पुरानी कहानियों का एक संकलन निकालने की बात, आज की नहीं है। आजकल कुछ नहीं लिख पा रहा। पर लिखूँगा–कहानी भी लिखूँगा, शादी भी करूँगा। रतन! आज तुम सही वक्त पर आए हो। फुरसत में तो हो न?'' मैंने पूछा।

प्रोग्राम लिस्ट देखते हुए रतन ने कहा– ''कोई खास काम नहीं है। जाना तो है पर उतना जरूरी नहीं। रविवार है न इसीलिए आज का दिन तुम्हारे नाम।''

रतन को वही छोड़कर मैं बाथरूम पहुँचा और नहाकर निकला। ऐते को भोजन का आदेश दिया और कहा– ''जो भी आए कह देना मैं घर पर नहीं हूँ।'' बीच–बीच में चाय ले आने को भी कह दिया।

रतन और मैं इस वक्त बेडरूम में हैं। फोटो ऐलबम जो रतन देख रहा था उसे एक ओर रखकर मैंने कहा– ''हाँ रतन साहब! अब मैं शादी भी उसी से करूँगा और कहानी भी उसी की लिखूँगा। चलो मैं बताता जाता हूँ, तुम सुनते हुए एडिटिग करते जाओ।

मेरी और राजेन की मित्रता के बारे मे तो तुम जानते ही हो। माध्यमिक परीक्षा हमने एक साथ दी थी। वह फेल हो गया। कितना जिद्दी लड़का था यह भी तुम

जानते हो। उसी दिन से उसने फिर कभी माध्यमिक परीक्षा न देने और ड्राइवर बनकर उसी 'रूट' पर गाड़ी चलाने की कसम खाई। मेरे माँ–बाप ने मुझे कॉलेज पहुँचाया। मेरी भी पढ़ने की इच्छा थी। सोचा था पढ़कर प्रोफेसर बनूँगा पर भाग्य में नहीं था सो फर्स्ट क्लास कांट्रैक्टर हूँ...''

''इससे ज्यादा और क्या चाहते हो? तुम प्रोफेसर होते तो क्या हम आज इस तरह एक साथ रह पाते?'' रतन बीच ही में बोला।

मैंने कहा– ''रतन! सिरियसली कह रहा हूँ तुमने मेरी बातों को गंभीरता से नहीं लिया तो मेरे कहने का कुछ अर्थ नहीं रहेगा। मैं अतीत की बातें कर रहा हूँ। हाँ, मैंने कॉलेज में पढ़ना आरंभ किया। समय गुजरता गया। मैं जिस वर्ष कॉलेज के दूसरे वर्ष में था, राजेन दार्जीलिंग से बिजनबारी लाइन लैंडरोवर चलाता था। यूँ कहें कि वह एक कुशल ड्राइवर बन चुका था। देखने में भी वह खूबसूरत था। मुझे बिना बताए ही शादी कर चुका था। इसका पता मुझे बच्चे के नामकरण–संस्कार के अवसर पर बुलाने से चला। पढ़ाई खत्म कर घर लौटने के दिन मुझे लेने के लिए कॉलेज के गेट तक आया था राजेन। उसके हफ्ते भर बाद, एक शाम उसकी माँ मेरे घर आकर रोने लगी। चारखोला आमचोक, नेपाल उनका मायका था। पता चला राजेन के दादा गुजर गए हैं। नेपाल से राजेन की माँ को लेने उनके मामा पैदल चलकर आए हैं। इतनी दूर तो उसकी माँ जा नहीं सकती चलकर। इसीलिए राजेन के साथ मुझे नेपाल जाने के लिए अनुरोध करने लगी। मैं भी इन दिनों फुरसत में था। अगले दिन तड़के ही निकलना था। मैंने शाम को ही कुछ कपड़े, टॉर्च, कैमरा, दो–एक किताबें, डायरी बैग में डाले। छोटी बहन सरिता ने भी ब्रश–पेस्ट, कंघी, छोटा आईना, पाउडर, सेंट आदि उसी बैग में डाल दिया। नेपाल के रास्ते अच्छे नहीं हैं इसीलिए चप्पल, जूते, कैनवस जूते पहनने के लिए बैग में रखना नहीं भूली। टावल भी था। माँ के दिए रास्ते के खर्च में सरिता ने भी कुछ रुपये जोड़ दिए। मेरे पास भी थे कुछ पैसे।

तड़के ही राजेन और उसके मामा आए। जब हम निकले थे सूरज का अता पता ही नहीं था। सात बजे करीब हम सुके बाजार पहुँचे। वहाँ से माने भंज्यांग जाने वाली गाड़ी में सवार हुए। माने भंज्यांग में मैंने कैमरे के लिए रील खरीदी। वहाँ से आगे गाड़ी की सुविधा नहीं थी, इसीलिए पैदल ही चल पड़े। रास्ते में माइबेनी जाने वाले तीर्थयात्री मिले। उनसे बातें करते हुए आगे बढ़े। जब रात घिर आई तो यात्रियों के साथ भोजन किया और धर्मशाला में ठहरे। मेरे लिए यह एक नया अनुभव था। अगले दिन नामसालिंग नाम के बाजारनुमा गाँव में पहुँचे। शाम को माइबेनी मेला गए। ठहरने का इंतजाम राजेन के मामा ने किया। पुवार के ऊपर राड़ी (ऊन से बुनी चटाई) की चादर बिछाने से डनलप जैसा आनंद आ गया था। उस रात मेला भी खूब घूमे थे। खूब आनंद आया था। घर–घर में मादल (नेपाली लोक वाद्य यंत्र) बज रहे थे।

खलिहानों में धान–नाच करनेवाले मस्ती में दिखते थे। युवक–युवतियाँ गीत गाने में तल्लीन थे, विशेषतः जुवारी (रसिक स्त्री–पुरुष खास तौर पर युवक–युवतियाँ सवाल–जवाब के रूप में गाए जाने वाले शृंगार भावप्रधान गीत) गाने में। सच, नेपाल के लोगों की तरह गाना और जुवारी खेलना हम लोगों को सही तरह से नहीं आता। देखता ही रह गया था मैं। पशु–पक्षियों के रंगों से रंगी बेनी नदी अलग तरह से बहती नजर आ रही थी। नया मुल्क, नए रीति–रिवाज, नया परिवेश मेरे जैसे नए लेखक को प्रभावित कर रहा था।

सबेरे, एक पाँच–छह वर्ष की बच्ची को लेकर पुलिस पूछताछ करने आई। लाल–लाल आँखों से देखती बच्ची रो–रोकर बोल नहीं पा रही थी। बाद में पता चला कि उसकी माँ जुवारी में हार गई। प्रतियोगिता के रूप में प्रचलित जुवारी गायन शैली में हारने वाली युवती या विवाहित महिला को जीतने वाले या विवाहित पुरुष की पत्नी बनना पड़ता है। मुझे आश्चर्य हुआ, नेपाल में ऐसा भी होता है! 'माँ' को पुकारते हुए उसे देख मैं विह्वल हो गया था। कितनी बेदर्द है यह दुनिया! उसको लेकर लौट जाने को मन हो रहा था उस वक्त। दुःख हुआ मुझे, राजेन को भी। एक चॉकलेट उसके हाथ में थमाकर रोने से मना किया। राजेन के मामा ने इस घटना पर कोई अफसोस व्यक्त नहीं किया।

''रतन, सुन रहे हो न मेरी बात? या कुछ और ही सोच रहे हो?'' बीच ही में मैं रतन की ओर मुड़ा यह जानने के लिए कि कही उसका ध्यान बँटा तो नहीं है।

''हाँ, कहो कहो, सुन रहा हूँ। कहते जाओ मैं गंभीरता से सुन रहा हूँ। मजा जा रहा है।''

''माई खोला (माइ नदी) पार कर हम चढ़ाई पर इलाम की ओर बढ़ रहे थे। शाम होते–होते हम इलाम बाजार पहुँचे। इलाम मे ही एक रात रुकने के लिए मामा से कहने को कहा था राजेन से। मामा मान गए थे। इलाम की वादियों में सैर करते हुए मुझे दार्जीलिंग की याद आई। अगले दिन भोर होते ही निकले थे फिर। जितपुर और न जाने कौन–कौन सी जगह होते हुए दादा के तेरहवीं के दिन चारखोला आमचोक पहुँचे थे।

दो एक दिन यूँ ही गुजर जाने के बाद एक दिन उसी गाँव के युवक–युवतियाँ, राजेन और मुझे एक शादी में ले गए। वहाँ रातभर जुवारी गीत सुनते रहे। मादल का स्वर और वहाँ की युवतियों के सुरीले मनमोहक गीत सुनकर मोहित हुए। युवतियों की उसी भीड़ में बैठी कानों में सिक्के की तरह का सोने के गहने, नाक में ढुंग्री (नथनी), कंठ और चाँदी का लाल हार पहने दिलरूपा को मैं दिल दे बैठा था। उसने भी मुझे देखकर गीत गाया था। सुनोगे रतन वह गीत। मैं इसे अपनी डायरी में लिख रहा हूँ। जुबाँ पर भी है–

धो–धोकर बाँधनेवाली पटुकी, बिन धोए बाँधनेवाली पेटी

हँस–हँसकर दिल देती है चारखोला की केटी (लड़की)

''बताइए न, कैसा है दार्जीलिंग?'' दिलरूपा ने बार–बार पूछा था। पाँव में न जूते थे, न चप्पल, फटी बिवाइयाँ। चौबंदी–चोलो और फरिया (साड़ी–चोली की तरह का लोक पोशाक) में बिना सजधज के ही आई थी प्राकृतिक सुंदरी। गीत मानो उसकी जुबाँ पर ही थे, राग की बात क्या कहे अगर उधर दार्जीलिंग में होती तो दिलरूपा लता कहलाती। दिलरूपा मुझे काफी अच्छी लगी। पास बुलाकर सबके सामने उससे कहा– ''दार्जीलिंग बैकुंठ की तरह है समझो। चलोगी मेरे साथ?''

अगले दिन भी मैं उससे उसी गाँव के पनघट पर मिला था। वह कपड़े धोने गई थी, मैं नहाने। फिर अगले दिन उसके घर गया। सबके साथ कई फोटो लिए। उस दिन राजेन के मामा–मामी काफी नाराज हुए थे, मैंने परवाह नहीं की।

एक दिन दिलरूपा मुझे लेने घर पर ही आई सवेरे–सवेरे। मेरे पास जो सेंट था उसका भी इस्तेमाल किया। आइने में अपना चेहरा देखा। और मुझे लेकर नवमी बाजार की ओर निकली। रास्ते में उसने मुझसे कहा– ''आपके मित्र दार्जीलिंग में गाड़ी चलाते हैं न? आप से पढ़ाई में कुछ कम हैं क्या?''

मैंने सिर्फ 'हाँ' ही कहा।

नवमी बाजार में दिलरूपा ने अपनी सभी सहेलियों को– ''दार्जीलिंग से आए हैं। बहुत पढ़े–लिखे हैं– इतने पढ़े–लिखे लोग हमारे यहाँ नहीं हैं– दार्जीलिंग बैकुंठ की तरह है सहेलियों!'' आदि बताते हुए खूब प्रशंसा की मेरी।

शाम को नवमी हाट बंद हुआ। हम लौटे। रास्ते में दिलरूपा ने पूछा– ''इतना अच्छा सुगंधित तेल दार्जीलिंग में ही मिलता है क्या?''

''हाँ, दार्जीलिंग में ही मिलता है। बचा तो लौटते वक्त तुम्हें दे जाऊँगा।'' मेरे जवाब पर कुछ नाराज सी लगी। ''सच में दार्जीलिंग बैकुंठ की तरह है। तुम चलोगी मेरे साथ?'' मैंने कहा था।

काफी देर बाद उसने जवाब दिया था– ''आप तो पढ़े–लिखे बड़े आदमी हैं। मैं ठहरी अनपढ़। बाद में मेरी उपेक्षा तो नहीं करोगे।''

''नहीं, नहीं, भला क्यों करूँगा तुम्हारी उपेक्षा? तुम्हें भी पढ़ना–लिखना सिखाऊँगा। फिर जब यहाँ आओगी तुम भी पढ़ी–लिखी खूबसूरत बनकर आओगी।'' इतना ही कहा था मैंने।

''मुझे कब दार्जीलिंग ले चलोगे?'' इसके जवाब में मैंने कल रात भाग निकलने की तरकीब बताई थी।

बातों में मशगूल जब हम लौट रहे थे– दिलरूपा के पिता और मेरे मामा हमें ही ढूँढ़ते आ रहे थे। हमें एक साथ देखकर दिलरूपा के पिता गुस्साए। दिलरूपा की ओर मुखातिब होकर उसके गाल पर एक चाँटा जड़ दिया और उसे पकड़कर अपने घर की ओर ले गए।

घर पहुँचते ही राजेन और मामा काफी नाराज हुए। इसका वर्णन मैं इस वक्त नहीं कर सकता रतन। नाराजगी में ही मुझे मामा ने कहा–''दार्जीलिंग के लोग बाहर से तो अच्छे लगते हैं पर अंदर...।'' और मुझे अपना सामान समेटने को कहा। बड़े और छोटे मामाओं ने कमर पर खुकुरी लटकाई। 'छुर्पी' (पाक के फटे दूध को पका–सुखा कर बनाई जाती है जिसे सुपारी की तरह खाया जाता है) और चिउड़ा डालते हुए कहा– ''चलो बेटे, हम तुम्हें माने भंज्यांग तक पहुँचाते हैं। भांजा राजेन और कुछ दिन यहाँ रुकेगा। हम पढ़ाएँगे उसे।''

पाँव छूकर माफी माँगने पर भी उन कुत्तों ने एक रात रुकने नहीं दिया मुझे। मेरे समर्थन में राजेन एक शब्द भी नहीं बोला। रात की चाँदनी में हम निकल पड़े।

लौटते समय किस रास्ते से ले आए पता ही नहीं चला मुझे। रात–दिन चलकर जमुना बाजार पहुँचे। वहाँ से सिस्ने, नुनथला होते हुए जौबारी बाजार पहुँचे थे। अंत में तुमलिड.मेध और भालुखोप की कोठियाँ पार करते हुए माने भंज्यांग पहुँचे थे। अपने मुल्क पहुँचने पर मैं काफी खुश हुआ था– मानो मैं अपने ही घर के आँगन में पहुँचा हूँ। मामा माने भंज्यांग से लौट पड़े– मैं दार्जीलिंग आनेवाली बस पर चढ़ा था।

दार्जीलिंग आकर कैमरे से रील निकालकर स्टूडियो में धोने दी। दिलरूपा की तस्वीरें कितनी अच्छी थीं। इन तस्वीरों को देखकर मैं बेहाल हो गया था। इसी बेहाली में मैंने कई कहानियाँ, कविताएँ लिखीं जो मेरी डायरी में आज भी हैं।

तीन–चार महीने बाद शायद राजेन के गाँव से आने की खबर सुनकर भी मैं उससे मिलने नहीं गया। उसने भी गाड़ी का 'रूट' बदल लिया था। कई दिनों के बाद नेपाल से किसी लड़की को भगाकर ले आने और दार्जीलिंग में ही उसे कहीं छिपाकर रखने की बात सुनने में आई। संयोग ही कहें एक दिन उसके बच्चों को बस में देखा तो पूछा। जवाब मिला– ''पिताजी आजकल घर नहीं आते– सिर्फ पैसे भेजते हैं।'' उसके बाद कुछ नहीं पूछा था मैंने उन बच्चों से।

उस दिन घर आकर छोटी बहन सरिता को राजेन और उसके परिवार का ठिकाना पता लगाने को भी कहा। सरिता ने वहीं पड़ोसी से पूछा। जवाब था– ''अरे वही, राजेन ड्राइवर? जो पियक्कड़ भी है? वह तो सुबह से ही निकला हुआ है। इस वक्त उसकी बीबी ही होगी घर पर। उस दरवाजे से अंदर जाइए।''

मैं और सरिता सीधे अंदर चले गए। ओह! यह तो दिलरूपा है! मुझे देखते ही चिल्लाकर रोने लगी। लिपट पड़ी। बार–बार छाती पीटते रोने लगी। मुझसे माफी माँगने लगी। मेरे पाँव पड़ी, रोती हुई कहने लगी– ''आप कहाँ थे? मैंने आपको यहाँ दार्जीलिंग में बहुत ढूँढ़ा। आप का नाम लेते ही राजेन मुझे मारने लगता है। मेरे पास जितने भी सोने–चाँदी के जेवर थे गाड़ी खरीदने के बहाने ले गया। रोज पीकर आता है। 'पहाड़ी लड़की' कहते हुए मुझे डाँटता–पीटता है। इस पापी ने तो मुझे मार डाला। खाने के लिए भी कुछ नहीं लाता। मेरा कोई कसूर नहीं है। यह दार्जीलिंग बैकुंठ नहीं है। आपने भी मुझे झाँसे में रखा। अब आप ही पहुँचा दीजिए मुझे मेरे मुल्क। इतनी कृपा तो कीजिएगा मुझपर बस मैं यही भीख माँगती हूँ।''

दिलरूपा की अवस्था देखकर दुःखी हुआ। शपथ खाते हुए मैंने कहा– ''दुःख–यातना सहते हुए भी कुछ दिन तुम यहीं रहो। दिलरूपा, मैं तुम्हें लेने आऊँगा। मेरा इंतजार करना। मेरी बहन सरिता अब से तुम्हारी सखी हुई। मैं आऊँगा मेरा इंतजार करना।''

उसी दिन से मैं इधर सिक्किम आ गया, आज भी यहीं हूँ। उसी दिन से किसी स्त्री पर कुदृष्टि नहीं डालने और मदपान न करने की कसम खाई थी मैंने। ईश्वर की अनुकंपा और मेरी प्रचेष्टा कि आज मैं इस मकाम पर हूँ। उसी साल गाड़ी उलटने से राजेन की मृत्यु हुई थी। तब से दिलरूपा मेरी जमीन पर एक छोटा सा घर बनाकर रह रही है। सोने के लिए मेरे घर पर ही आती है, सरिता के साथ। दो ही महीने हुए हैं मैं उनसे मिल आया हूँ। करीब पाँच वर्ष बाद मैं घर जाकर परसों ही आया। दिलरूपा बागान में चाय की पत्तियाँ चुनने जाती है। मेरे आने की खबर पाकर मुझसे मिलने आई थी। उसकी सुंदरता मिट चुकी है अब। काफी दुर्बल हो गई है। नेपाली किताबें पढ़ने लगी है। लिखने भी लगी है, इसलिए मैं खुश हूँ। लौटते समय माँ और बहन के सामने दिलरूपा से कह दिया था– ''काफी कष्ट भोगा। समय जिंदगी को कहाँ से कहाँ पहुँचाकर क्या–क्या करता है हमें पता ही नहीं चलता। और कुछ दिन धैर्य रखो। मैं तुम्हें लेने आऊँगा। चाय बागान में पत्तियाँ चुनने अब से मत जाना। ऊपर मेरे घर पर ही आकर रहना। मैं जल्दी ही लौटूँगा। अबकी देखो यही दार्जीलिंग बैकुंठ लगेगा। समझ रही हो न दिलरूपा।''

मैं लौट आया। घर पर सभी लोगों की रजामंदी है। सरिता बहन भी उसी महीने यहाँ आ रही है।

... और संपादक रतन साहब! जब वो सुख–शांति प्राप्त कर लेगी सुंदरता अपने आप आ जाएगी। समय ने दिलरूपा को बेरूप बनाया है। अब देखते जाओ रतन, यही समय है जो दिलरूपा को उसका सौंदर्य लौटाने के लिए बाध्य होगा। आज मेरे पास

क्या नहीं है। मकान, गाड़ी, धन–दौलत! सब कुछ है मेरे पास। अफसर, सेक्रेटेरी से लेकर मंत्री तक मेरी पहुँच है। सब कुछ है पर एक ही चीज नहीं है, वो है दिलरूपा! वही मेरी संपूर्णता है यह मैं मानता हूँ। तकिए के ऊपर दीवार पर लटकी फ्रेमबद्ध यह तस्वीर ही है मेरी दिलरूपा! अब यह समाज–गाँव जो कुछ भी कहना चाहे कह सकता है मुझे, रतन साहब! अब मैं जल्द ही शादी कर रहा हूँ– दिलरूपा से। और तेरी पत्रिका के रजत जयंती अंक के लिए दुरुस्त यही, जो इस वक्त सुना रहा हूँ– यही कहानी लिखूँगा। व्याकरण सुधार के अलावा यथावत छापना होगा इसे। कम्युनिटी हॉल में रजत जयंती मनाओगे लगता है। उस दिन मैं और दिलरूपा तेरी पत्रिका के विमोचन पर उपस्थित होंगे...।

संपर्क

संपादक, प्रक्रिया, पोस्ट बॉक्स न.–6, गंगटोक, सिक्किम, पिन–737101

फोन–9733268722, ई मेल–virbhadra777@gmail.com

❑❑❑

सरबंध

पद्मश्री पद्मा सचदेव

डोगरी भाषा की पहली आधुनिक कवयित्री पद्मश्री। उपन्यास 'अब न बनेगी देहरी' प्रकाशित। 'मेरी कविता मेरे गीत के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त। डोगरी भाषा में लिखी कृति 'चित्त चेते' (आत्म कथात्मक रचना) के लिए 'सरस्वती सम्मान' से सम्मानित। वर्ष 2001 में पद्मश्री से सम्मानित।

ब्याह्नू जोड़े आह्ला लेखा
जक्के हे सरबंध में
इक उमरी ताईं पक्के
कीते हे परबंध में
खबरै कि'यां उद्धड़ी गेइयां सींतरा
केईं तरोपे आपूं गै निकली गे
धागें दे सिरे रेह् गै नेईं
पैंडे च हुन मोड़ बी कोई नेईं
जि'यां मुक्की गें न सारे भरम
पैरें दे छाले बी हुन बगना लगे
पेई जा करदे न अश्कै बरम
पैंडे च राह्–रांह्दू बी हुन
जि'यां कोई नेईं रेहा
हुट्टी–त्रुट्टी दी राह्
धोखा दी ऐ कत्थ।

❑❑❑

संबंध

अनुवादः कृष्ण शर्मा

कृष्ण शर्मा

डोगरी और हिंदी में निरंतर लेखन। डोगरी में अनेक मौलिक तथा अनूदित पुस्तकें प्रकाशित। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'सौहार्द सम्मान' तथा साहित्य अकादमी के 'बाल साहित्य' और 'अनुवाद पुरस्कार' सम्मान से समादृत। संप्रति–उप–प्राचार्य पी. जी. डी. ए वी महाविद्यालय।

विवाह के सुर्ख जोड़े की भाँति
सहेज लिए थे संबंध मैंने
लंबी अवधि के लिए
व्यवस्था पक्की कर ली थी मैंने
जाने कैसे उधड़ गईं सीवन
कई टाँके स्वतः निकल गए
धागों की तुरपन फिसलती चली गई
जीवन यात्रा में अब कोई अवरोध नहीं
छँट गए हैं सारे भ्रम
पैरों के छाले रिसने लगे हैं
पर घाव भरते भी जा रहे हैं जैसे
राह में अब कोई राहगीर नहीं दिखता
थकी–हारी राह भी जैसे
ढूँढ़ रही है
अपने ही निशान.....

संपर्क

152/119 पक्की ढक्की, जम्मू–180001
फो–9682188713, ई मेल–sharma379kk@gmail.com

❑❑❑

काले ट्रंक विचों मिली चिट्ठी

जसबीर भुल्लर
कथाकार, उपन्यासकार और कवि के रूप में सम्मानित और पुरस्कृत रचनाकार। दो दर्जन से अधिक पुस्तकें पंजाबी और अन्य भाषाओं में उपलब्ध

माँ!
जंग मुक्क चुक्की है
थक्के टुट्टे सिपाही
तुर पैणगे घरां नूं
अद्धे अधूरे
कुझ वेखण नूं पूरे

जो नहीं परते
ओह वी आऊणगे
लक्कड़ दे तबूतां विच

किसे इक ताबूत विच
मैं वी होवांगा
किन्ना कू होवांगा
की पता!

मां! ...प्लीज
ढक्कण खोल के
ताबूत न वेखीं
की वेखणां
तोपां दे चारे दा।

रुक्ख सां
बेशक टुट्टदीया वी रहियां टाहणीआं
झड़दे वी रहे पत्ते
वड्ढ टुक्क वी हुन्दी रही
फेर वी हरा सां
वेख! हुण ओन्ना वी बाकी नहीं
ओह इतरां ही करदे ने
मांवां नाल।

माँ
बापू नूं कहीं
खबरां चुगण वालियां साहवें
जबत रक्खे
सिंझण ना बैठ जावे
अक्खां दा बीआवान
सगों छाती ताण के कहें
वंश दी मरियादा दा
झंडावरदार सी पुत्त!

बापू ने जिन्ना वी टुट्टणा ए
सरेआम नहीं
घर आ के टुट्टे
अखबारां तों चारी

मां!
कुझ दिन तां
मैनूं शहीद ही कहिणगे ओह
हौंके वी झरणगे तेरे अग्गे
बाअदिआं दे बोहल वी लांवणगे

फेर खबरां दे ढेर हेठ
दब्ब देणगे मैनूं
उड़ीकण लग्ग पैणगे
शहीदां दी सज्जरी फसल

मां
बुढ्ढे पैरां नाल
ओन्हां दे कहे बल्ल ना तुर पवीं
ओह जलील केरणगे तैनूं

मां ऐंने भरम ना पाल लवीं
कि तेरे पुत्त दी चिता उत्ते
हरवरेहमेले वी लग्गणगे
एह जुमला सरकारी इश्तिहारां लई है
मेले तां तेरे हंझुआं दे होणगे!

मां, भैण रूप दे हत्थां नूं
ओसदी चाहत दी मेहंदी
लगण देवीं। उसनूं जी लैण देवीं
उसदे सुपुनिआं दा पहल

निक्के भरा नूं कहणा
उसदे भाऊ दा बुलेट
ते होर बहुत कुझ वी
हुण उसे दा रहेगा

हां सच, मां!
गुड्डी नूं तुसीं जाणदे ही हो
ओही मां
जो हर, महीने मेरे औण दी
उडीक च रही
अखबारी खबर वणके
जे किते ओंह आ जावे
कहणा, मेरे वादे तां झूठे पुलिंदे सन
ओस लई मैं तारे तां की तोड़दा
दिल दी मिट्टी चों
चावां दे बूटे ही उखाड़ सुट्टे हन

मां! ना लगाईं मेरी तस्वीर बैठक च
हर इक नूं दस्सेंगी
अत्थरू वणावेंगी
अक्खां दा पाणी झरदा रहेगा
ऐवें अणआई मौते मरेंगी
मैं सिपाही, सिंघासन दे पावे हेठ सां
मरना ही सी, भावें कदे वी मर जांदा।

टी.वी. वाली एंकर कुड़ी
शहीदां दी सूची चों भुला वी देवे
मेरा नां
मन च ना लिआवीं कुझ वी
मैं इक मामूली खबर हां
खाद दा मलवा। इक आंकड़ा हां
काले ट्रंक च की नहीं हुन्दा
बेखदी रहीं कदे कदे
तूं तां भाल ही लवेंगी
पुत्तर दे मनदी रहिंदखुंद

गुड्डी नू वी कहणा
मैं तो अजे जीऊणां सी
ओस वास्ते... पर मर गिआ।

ठीक है मां
हुण तूं वी मिट्टी दी उडीक न करीं।

संपर्क

582, फेज 3ए, मोहाली, पंजाब–160059
फोन–9781008582, ई मेल–col.jagdishbhullar@gmail.com

❑❑❑

काले ट्रंक में से मिली चिट्ठी

अनुवादः फूलचंद मानव

फूलचंद मानव

हिंदी और पंजाबी में अनेक रचनाओं का अनुवाद। 'एक ही जगह', 'एक गीत मौसम', कमजोर कठोर सपने' कविता संग्रह प्रकाशित। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा 'सौहार्द सम्मान' से समादृत। संप्रति–स्वतंत्र लेखन।

माँ!
युद्ध खत्म हो गया
थके टूटे सिपाही
चल पड़ेंगे घरों को
आधे–अधूरे
कुछ लग रहे देखने में पूरे

जो नहीं लौटे
वे भी आएँगे
लकड़ी के ताबूतों में

किसी एक ताबूत में
मैं भी रहूँगा
कितना भर होऊँगा
क्या पता!

माँ!– प्लीज!
ढक्कन खोलकर
ताबूत मत देखना!
क्या दिखेगा
तोपों के चारे, खाद्य में से!

मैं पेड़ था
भले टूटती रही टहनियाँ
झड़ते गए पत्ते
काट–छाँट भी होती रही
तो भी हरा ही रहा
देखो!

अब उतना भी शेष नहीं
वे ऐसा ही करते हैं
माँओं के साथ!
माँ!
बापू से कहना
खबरें बटोरने वालों के सामने
धैर्य धर
सींचने न बैठ जाए
आँखों का बिआवान
बल्कि छाती तानकर कहे
वंश की मर्यादा का
झंडाबरदार था बेटा

बापू जितना टूटना चाहे
सरेआम नहीं
घर आकर टूटे
अख़बारों से छिपकर

माँ!
कुछ दिन तो
वे मुझे शहीद भी कहेंगे
आहें भरेंगे तुम्हारे सामने
वायदों की बौछार करेंगे
फिर खबरों के ढेर तले
दबा देंगे मुझे
इंतजार करेंगे
शहीदी की ताज़ा फसल का

माँ!
बूढ़े पैरों के साथ
उनके दर तक मत जाना
वे तुम्हें जलील करेंगे

माँ!
यों ही भ्रम मत पालना
कि तेरे बेटे की चिता पर
हर साल मेले लगेंगे
यह जुमला तो
सरकारी पोस्टरों तक है
मेले तो
तुम्हारे आँसू लगाएँगे

बहन 'रूप' के हाथों
उसकी चाहत सी मेहंदी
लगने देना, उसे जी लेने देना
सपनों का महल

छोटे भाई से कहना
उसके भाऊ का बुलेट
और अन्य बहुत कुछ भी
अब उसी का रहेगा

हाँ सच, माँ!
गुड्डी को तुम जानती ही हो
वही माँ!
जो हर बहाने मेरे आने की
प्रतीक्षा में रही
अखबारी खबर पढ़कर
वह यदि आ जाए
कहना मेरे वायदे तो झूठे पुलिंदे थे
उसके लिए मैं तारे तो क्या तोड़ता
मन की मिट्टी से
चावों के पौधे ही उखाड़ फेंके हैं

माँ! मत लगाना तस्वीर बैठक में मेरी
हरेक को बताओगी
आँखें पनीली करोगी
यूं ही अनआई मौत मरोगी
मैं सिपाही, सिंहासन के पाए तले था
मरना ही था भले कभी मर जाता

टी.वी. की एंकर लड़की
शहीद–सूची से भुला भी दे
यदि मेरा नाम
मन में मत लाना कुछ
तब भी क्या सामान्य सी खबर हूँ
खाद का मलवा, एक आँकड़ा हूँ

काले ट्रंक में क्या नहीं होता
देखती रहना कभी कभी
तुम माँ हो, ढूँढ लोगी
पुत्तर के सपनों के अवशेष
गुड्डी को भी कहना
मुझे अभी जीना था
उसके लिए... लेकिन मर गया

ठीक है माँ, अब तुम भी
चिट्ठी का इंतज़ार
मत करना।

संपर्क

239, दशमेश एनक्लेव, ढकौली, जीरकपुर (समीप चंडीगढ़), पंजाब, पिन–160104
फोन–9646879890, 9316001549 ई मेल–phulchandmanav.gmail.com

❑❑❑

हाथ देखार कबिता

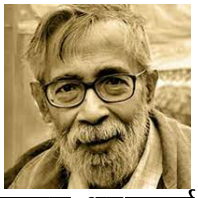

नबारुण भट्टाचार्य

बांग्ला के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार और कवि। 'भाषाबंधन' नामक साहित्यिक बांग्ला पत्रिका के संपादक रहे। साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित।

आमि शुधु कोबिता लिखि
एटा मोटेई काजेर कथा नय
कथाटा शुनले अनेकेरइ हासि पाबे
आमि किंतु हात देखतेओ जानि ।
आमि बाताशेर हात देखेछि
बाताश एकदिन झड़ हये सबसे
ऊँचू बाड़िगोलोके फेले देबे
आमि बाच्चा भिखिरिदेर हात देखेछि
ओदेर आगामी दिने कष्ट जदिओ बा कमे
ठीक करे किछुइ बला जाच्छे ना
आमि बृष्टिर हात देखेछि
तार माथार कोनो ठीक नेई
ताई आपनादेर सकलेरइ एकटा करे
छाता थाकार दरकार
स्वप्नेर हात आमि देखेछि
ताके गड़े तुलते हले भेंगेचुरे फेलते हबे घूम
भालोबासार हातेओ आमि देखेछि
ना चाइलओ शे सकलके आँकड़े थाकबे
बिप्लबीदेर हात देखा खूब भाग्येर ब्यापार
एकसंगे तादेर पाओबाइ जाय ना
आर बोमा फेटे तो अनेकेर हातइ उड़े गेछे
बड़लोकदेर प्रकांड हातओ आमाके देखते हयेछे
तादेर भबिष्यत अंधकार
आमि भीषण दु:खेर रातेर हात देखेछि

तार सकाल आसछे।
आमि जतो कबिता लिखेछि
हात देखेछि तार चेये ढेर बेशि
दया करे आमार कथा शुने हासबेन ना
आमि निजेर हातओ देखेछि
आमार भबिष्यत आपनादेर हाते ।

❑❑❑

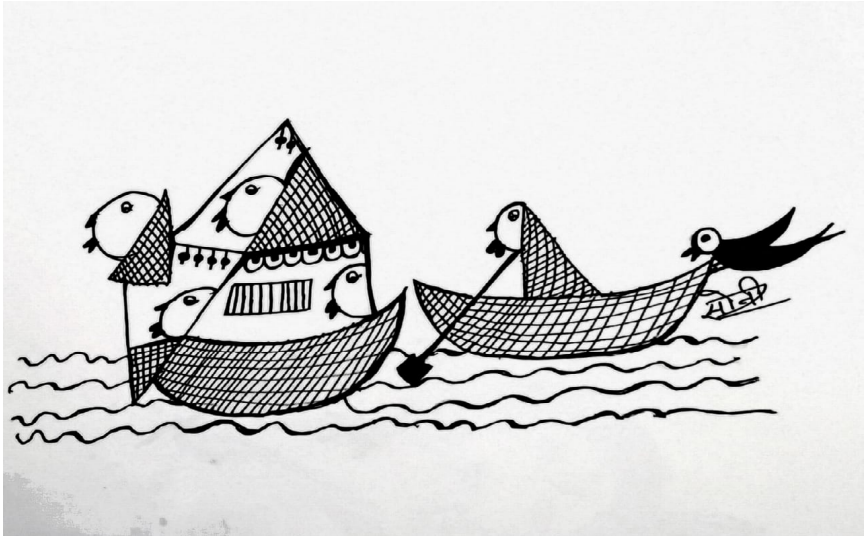

हाथ देखने की कविता

अनुवादः आशुतोष सिंह

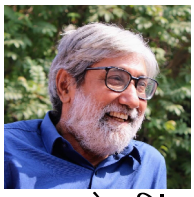

आशुतोष सिंह
कवि और आलोचक। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। संप्रति–स्वतंत्र लेखन।

मैं सिर्फ कविता लिखता हूँ
यह कोई काम की बात नहीं है
मेरी बात सुनकर बहुतों को हँसी आएगी
कि मैं हाथ भी देखना जानता हूँ

मैंने हवा का हाथ देखा है
हवा एक दिन तूफान बनकर सबसे ऊँची इमारतों को गिरा देगी
मैंने भीख माँगनेवाले शिशुओं के हाथ देखे हैं
आने वाले दिनों में उनका दुख कम होगा, ठीक से कुछ भी नहीं कहा जा सकता

मैंने बारिश का हाथ देखा है
उसके मन का कोई ठीक नहीं है
इसलिए आप सभी को एक छाते की जरूरत है

मैंने सपने का हाथ देखा है
उसे साकार करने के लिए नींद को तहस–नहस करना होगा
प्यार का हाथ भी मैंने देखा है
न चाहने वाले को भी वह अपनी गिरफ्त में ले लेगा
विप्लव करने वालों का हाथ देख पाना बड़े सौभाग्य की बात है
वे एक साथ कहाँ मिलते हैं
बम फटने से कइयों के हाथ उड़ गए हैं
बड़े लोगों के बड़े–बड़े हाथ भी मुझे देखना पड़ा है
उनका भविष्य अंधकारमय है

मैंने भीषण दुखभरी रातों के हाथ भी देखे हैं

उन सब रातों की सुबह होने वाली है
मैंने जितनी कविता लिखी है
उससे कहीं ज्यादा हाथ देखे हैं
अपना हाथ भी देखा है
मेरा भविष्य आपलोगों के हाथों में है।

संपर्क

4 एच, सोहम अपार्टमेंट, 358/1, एन एस सी बोस रोड, कोलकाता–700047
फोन–9874535401, ई मेल–angashutosh@gmail.com

❑❑❑

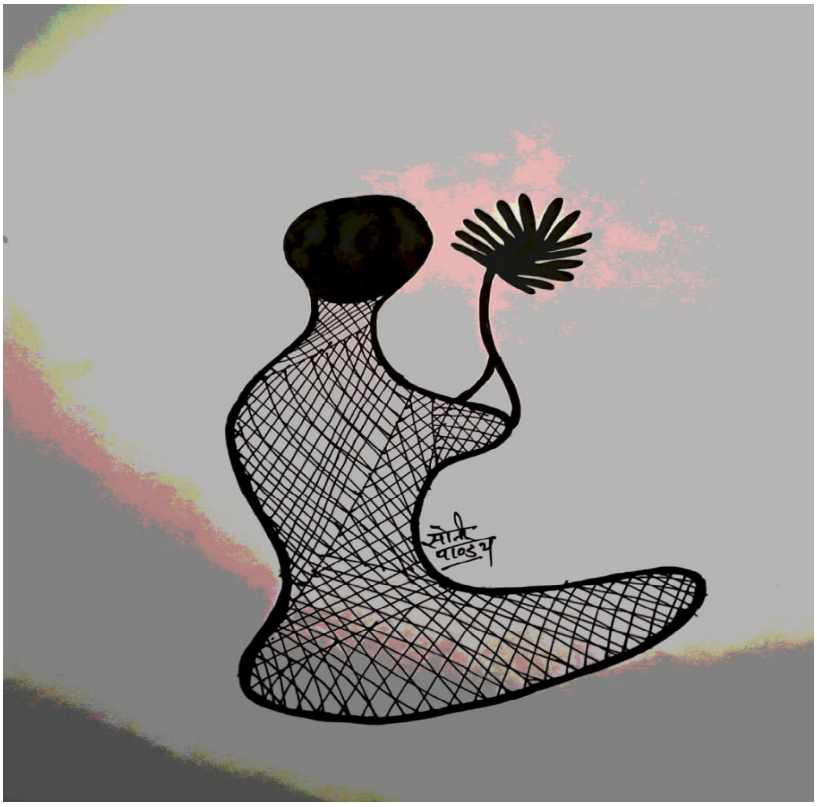

साक्षात्कार

प्रवासी साहित्यकार श्रीमती सुनीता नारायण से डॉ. विमलेश कांति वर्मा की बातचीत

सुनीता नारायण

न्यूजीलैंड निवासी फीजी मूल की भारतीय लेखक। पत्र–पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ प्रकाशित। मातृभाषा संरक्षण तथा भारतीय समाज सेवा के लिए न्यूजीलैंड सरकार द्वाराओं एन जेड एम की उपाधि से विभूषित। संप्रति–स्वतंत्र लेखन ।

विमलेश कांति वर्मा

लब्धप्रतिष्ठ भाषावैज्ञानिक। विभिन्न विदेशी विश्वविद्यालयों में अद्यापन। विशेषज्ञता एवं रुचि–पाठालोचन, विदेशी भाषा के रूप में हिंदी शिक्षण, कोश रचना, अनुवाद एवं प्रवासी भारतीय भारत के राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त साहित्य महापंडित राहुल सांकृत्यायन सम्मान से सम्मानित, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदत्त हिंदी विदेश प्रसार सम्मान से सम्मानित।

स्वभाव से हँसमुख, विनम्र और हिंदी की प्रतिष्ठा के लिए निरंतर प्रयत्नशील श्रीमती सुनीता नारायण ने विदेशी हिंदी सेवियों में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। वे मूलतः फीजी की हैं और अपने नए अपनाए देश न्यूजीलैंड में हिंदी की अलख जगाए हुए हैं। फ़ीजी की गिरमिट प्रथा के अंतर्गत फ़ीजी आए माता पिता की संतान श्रीमती सुनीता नारायण ने विविध स्तरों पर हिंदी शिक्षण के माध्यम से हिंदी की सेवा की है। उनकी उल्लेखनीय हिंदी सेवाओं के लिए भारत सरकार ने उन्हें 'विश्व हिंदी सम्मान' से सम्मानित भी किया है।

विमलेश कांति वर्माः आपका फ़ीजी से क्या संबंध है? आप फीजी से कैसे और कब से जुड़ी हुई हैं? अपने परिवार के बारे में थोड़ा विस्तार से बताएँ। क्या आपके पूर्वज फ़ीजी गिरमिट प्रथा के अंतर्गत आए थे? आपके पिता और दादा की भाषा क्या थी? उनके कुछ अनुभव बताएँ। आजकल आप कहाँ रह रही हैं और क्या कर रही हैं?

सुनीता नारायणः मेरा जन्म फीजी के एक छोटे शहर नावुआ में हुआ जो राजधानी सूवा से लगभव तीस मिनट की दूरी पर है। मेरे परनाना और आजा दोनों गिरमिट प्रथा में उत्तर प्रदेश से फ़ीजी आए थे और दोनों की पोस्टिंग नावुआ में हुई थी, जहाँ वे गन्ने के खेतों में काम करते थे। मेरे नाना का जन्म 1905 में नावुआ में हुआ था। माँ से पता चला कि नाना जब लगभग नौ साल के थे तब अपने माता–पिता के साथ भारत लौट गए थे। चूँकि नाना को भारत में अच्छा नहीं लगा, उन्होंने 'घर'

लौटने पर अपने माता–पिता को फ़ीजी वापस लौटने को मजबूर कर दिया। वे फिर फीजी वापस आ गए। मेरे माता–पिता का जन्म भी नावुआ शहर में हुआ। मैं दो बहनों और दो भाईयों के साथ बड़ी हुई। तेरह वर्ष की आयु में पढ़ाई के लिए घर से बाहर निकली। अध्यापन प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम पूरा करने के बाद कॉलेज में मैंने अध्यापन किया। पिताजी और माताजी दोनों फ़ीजी हिंदी बोलते थे। मेरे पति को 1987 में न्यूज़ीलैंड में अध्यापन का कार्य मिला। सितंबर 1987 में पति और पाँच वर्षीय बेटी के साथ न्यूज़ीलैंड में प्रवासन के लिए आई। छोटी बेटी का जन्म न्यूज़ीलैंड में हुआ। दोनों बेटियाँ अच्छी फ़ीजी हिंदी बोलती हैं।

विमलेश कांति वर्मा: आप न्यूज़ीलैंड में क्या काम कर रही हैं?

सुनीता नारायण: यहाँ मैं मानव संसाधन के क्षेत्र में कार्य करती हूँ। कुछ पच्चीस सालों से, हिंदी भाषा एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार में स्वंयसेवी के रूप में कार्यरत हूँ और कई स्वयंसेवियों के साथ संयुक्त रूप से काम करती हूँ। मैं एक हिंदी शिक्षक भी हूँ और एक सामूहिक हिंदी विद्यालय की संचालक हूँ जिसके अंतर्गत मुझे अध्यापकों को रिक्रूट करना पड़ना है।

विमलेश कांति वर्मा: आपने क्या हिंदी सिखाने के लिए कुछ लिखा भी है?

सुनीता नारायण: जी हाँ, मैंने दो पुस्तकें (टेक्स्ट) लिखी हैं और कुछ पाठ्यसामग्रियाँ भी बनाई है जिनका चार सामुदायिक स्कूलों द्वारा प्रयोग किया जा रहा है। जरूरत होने पर मैं विक्टोरिया यूनिवर्सिटी ऑफ वैलिंग्टन के लिए हिंदी/फ़ीजी हिंदी और भारतीय संस्कृति पढ़ाती हूँ।

विमलेश कांति वर्मा: फ़ीजी हिंदी में रचनात्मक लेखन आजकल कौन कर रहे हैं?

सुनीता नारायण: मुझे प्रो. सुब्रमनी, प्रो. बृजलाल, रेमंड पिल्ले के अतिरिक्त कुछ लघुकथा लेखकों जैसे डा सतेंद्र नंदन, डॉ. निखतशमीम, रामलखन प्रसाद आदि का रचनात्मक लेखन पढ़ने को मिला है। लघुकथा का एक संग्रह 'कोई किस्सा बताओ' अभी प्रकाशित हुआ है। ये सब देवनागरी लिपि में हैं।

विमलेश कांति वर्मा: आपकी 'फीजी हिंदी'/हिंदी में लिखने की क्या योजनाएँ हैं? थोड़ा विस्तार से बताएँ।

सुनीता नारायण: मैंने अंग्रेजी में कुछ लघु कथाएँ लिखी हैं। इनका हिंदी/फ़ीजी हिंदी में अनुवाद करने की मेरी इच्छा है। फिलहाल वैलिंग्टन के सामुदायिक हिंदी विद्यालय में कार्यरत हूँ और न्यूज़ीलैंड में हिंदी को विकसित करने में व्यस्त हूँ। मेरी रुचि बच्चों के लिए पठन सामग्री तैयार एवं इक्कठा करने में है। इनमें बच्चों की रुचि पर आधारित छोटे–छोटे निबंध तथा कहनियाँ लिखने का मेरा शौक है। बाल विकास तथा शिक्षाशास्त्र के सिद्धांतों को पालन करके अच्छी सामग्री बनाने में अधिक समय लग जाता है।

मैंने एक एकांकी 'यादें' लिखा है जिसका मूल विषय प्रवासन से जुड़ा है। इसमें मैंने हिंदी, अंग्रेजी के साथ–साथ कुछ फ़ीजी हिंदी का प्रयोग किया है। अगर न्यूज़ीलैंड के पाठ्यक्रम में हिंदी सम्मिलित हो जाती है, तो हमारा कार्य कुछ सरल हो सकता है और मैं अपने और सपनों कों साकार कर पाऊँगी।

विमलेश कांति वर्मा: फ़ीजी हिंदी की अधिकांश रचनाएँ रोमन लिपि में लिखी जा रही हैं, देवनागरी में नहीं। क्या रोमन में फ़ीजी हिंदी जो लिखी जाती है, उसे फ़ीजी हिंदी न जानने वाला व्यक्ति ठीक से सही उच्चारण के साथ पढ़ सकता है? फ़ीजी हिंदी रोमन में सही रूप में पढ़ी जा सके इसके लिए क्या रोमन लिपि में कुछ सुधार किए गए हैं या किए जाने चाहिए?

सुनीता नारायण: फ़ीजी हिंदी की अधिकांश रचनाएँ रोमन लिपि में लिखी जा रही हैं या देवनागरी में यह मुझे स्पष्ट रूप से पता नहीं। लेकिन जो अभी तक मैंने पढ़ा है, वह देवनागरी में हैं। जिस भाषा की अपनी लिपि हो, उसको रोमन में लिखने से भाषा के उच्चारण में, मेरे विचार में कठिनाई होगी। फ़ीजी हिंदी/हिंदी न जानने वाले व्यक्ति रोमन लिपि में लिखी फ़ीजी हिंदी को ठीक से सही उच्चारण के साथ पढ़ नहीं सकेंगे। फ़ीजी हिंदी के कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके मूल शब्द हिंदी से हैं, उनके सही उच्चारण सीखने के लिए पहले 'फोनेटिक सिंबल' भी सीखना पड़ेगा जैसे– पड़ेगा, लड़का, हुआँ, टांगो, खाओ, झांको

विमलेश कांति वर्मा: आप हिंदी पढ़ाते समय रोमन लिपि का प्रयोग करती हैं या देवनागरी लिपि का?

सुनीता नारायण: मैं यहाँ वैलिंग्टन में अहिंदीभाषी लोगों को बोलचाल (बैसिक) की हिंदी, रोमन के माध्यम से पढ़ाती हूँ। मेरे कुछ छात्र ऐसे भी होते हैं जो सही उच्चारण को ध्यान में रखते हुए हिंदी वर्णमाला और देवनागरी लिपि सीखना चाहते हैं ताकि वे हिंदी को और गहराई से समझ सकें। जो लिपि भी सीख लेते हैं, अपने अनौपचारिक/मौखिक फीडबैक में कहते हैं कि जब वे एक शब्द विषय में सोचते हैं तो उन्हें हिंदी अक्षरों का नक्शा दिखता है न कि रोमन का। आज ही एक ऐसे गैर भारतीय सज्जन से बातें हुई जिनकी पत्नी महाराष्ट्र से हैं। वे हिंदी सीखना चाहते हैं। बातचीत के दौरान उन्होंने कहा कि उन्हें हिंदी स्क्रिप्ट भी सीखना है।

विमलेश कांति वर्मा: प्रो. सुब्रमनी ने अपने दोनों उपन्यास 'डउका पुराण' और 'फ़ीजी माँ' फ़ीजी हिंदी और देवनागरी में लिखा है। क्या आपको लगता है कि यदि 'फ़ीजी हिंदी' देवनागरी में लिखी जाए तो उसे पढ़ना और समझना सारी दुनिया के लिए अधिक आसान होगा और उसे रोमन की तुलना में भारत में ही नहीं वरन विश्व में व्यापकता मिल सकेगी?

सुनीता नारायण: यह तो स्पष्ट है कि फ़ीजी हिंदी अभी तक बोलचाल की भाषा रही है। इसको प्रो. सुब्रमनी मे 'डउका पुरान' में लिखित रूप दिया। पहली बार

हमने देखा कि इस भाषा को तो हम लिख भी सकते हैं। इन्होंने देवनागरी लिपि का बहुत अच्छी तरह से प्रयोग किया। फ़ीजी की साप्ताहिक पत्रिका 'शांतिदूत' में 'बइठकी' लेख पढ़कर अत्यंत प्रसन्नता हेाती है। उदाहरण के तौर से देखे तो मुझे लगता है कि इन दोनों लेख को रोमन में पढ़कर मुझे कभी उतनी आत्मिक संतुष्टि प्राप्त नहीं होती जितनी देवनागरी से। यही साहित्य का एक उद्देश्य है।

सुनीता नारायणः जबकि फ़ीजी हिंदी और हिंदी की ध्वनियाँ मिलती–जुलती हैं और मूल शब्द देवनागरी में लिखे जाते हैं तो इनको रोमन में हम क्यों लिखे? मुझे लगता है अगर फ़ीजी हिंदी देवनागरी में लिखी जाए तो उसे लिखना और पढ़ना आसान होगा। उसको विश्वव्यापकता भी मिल सकेगी। फ़ीजी हिंदी को देवनागरी में लिखने में मेरे विचार में प्रमुख कठिनाई तो सबसे पहले यह है कि अभी भी फ़ीजी हिंदी लिखित रूप में प्रचलित नहीं है।

विमलेश कांति वर्माः आपकी दृष्टि में देश में हिंदी में रचनात्मक लेखन के विकास से जुड़ी समस्याएँ क्या हैं?

सुनीता नारायणः भविष्य के रचनात्मक लेखन की समस्याएँ जहाँ एक और हिंदी की प्राथमिक शिक्षा से जुड़ी हुई है वहीं दूसरी ओर अध्यापकों की खुद की हिंदी क्षमता से भी संबंधित हैं। अध्यापकों की भाषिक क्षमता को बढ़ाना और उनके मनोबल को बनाए रखना भी आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित चीजें जरूरी हैं:

- अध्यापकों की स्वंय हिदी में रुचि
- अध्यापन में विषय पर ज्यादा ध्यान देना न की शिक्षाशास्त्र पर
- मंत्रालय की अपेक्षा पाठ्यक्रम पर केंद्रित
- प्राथमिक छात्रों तथा बड़ों को शिक्षाशास्त्र को विस्तार से समझाना और उन्हीं के आधार पर सामग्री तैयार करना
- बच्चों की रुचि के आधार पर सामग्री बनाना
- माता–पिता की हिंदी के प्रति अपेक्षाएँ और क्रियाकलापों की तुलना में नीचा स्थान देना
- हिंदी को गवार की भाषा समझना
- अंग्रेजी को श्रेष्ठ भाषा समझना और आर्थिक प्रगति के लिए महत्वपूर्ण समझना
- अंग्रेजी को श्रेष्ठ जीवन के लिए आवश्यक समझना
- बड़े जो हिंदी सीखना चाहते हैं, उनके लिए पर्याप्त साधन न होना कुछ समाधान इस तरह हो सकते हैं :

  प्राथमिक शिक्षण में अध्यापकों की क्षमता बढ़ाने के लिए पर्याप्त संसाधनों का प्रबंध, हो जिसमें उनकी रुचि, क्षमता और मनोबल बनाए रखने का सामर्थ्य हो
- पाठ्यक्रम तथा जीवन योग्यताओं पर समान ध्यान देना
- प्राथमिक छात्रों तथा बड़ों का शिक्षाशास्त्र के विस्तारपूर्वक प्रशिक्षण में

सम्मिलित होना

- माता–पिता की हिंदी शिक्षण के प्रति रुचि जागृत करना

विमलेश कांति वर्मा: क्या आपको लगता है कि फ़ीजी हिंदी लेखकों को देवनागरी में लिखना सिखाने के लिए यदि देवनागरी प्रशिक्षण कार्यशालाएँ लगाई जाएँ तो फ़ीजी हिंदी के लेखक सरलतया देवनागरी लिपि में लिखना सीख जाएँगे? क्या इस तरह की कोई पहल हुई है? क्या आपने इस प्रकार का कोई सुझाव किसी संस्था को कभी दिया है?

सुनीता नारायण: अवश्य! ऐसी सुविधाओं से सृजनात्मक लेखन को और प्रेरणा मिलने की संभावना है। जो रचनात्मक लेखन में रुचि रखते है या फिर लिखना चाहते है, इस सुविधा से उनका कार्य सरल हो जाएगा। साथ–साथ उनके सपने भी साकार हो सकते हैं।

यूनिवर्सिटी ऑफ फ़ीजी ने कुछ समय हुए एक प्रोग्राम तैयार किया था। परंतु पर्याप्त माँग न होने पर इसको बंद कर दिया गया था। आशा है कि भविष्य में उपयुक्त संचार एवं प्रसारण से माँग में वृद्धि होगी। मैं अकसर हिंदी कार्य में रत लोगों से अपने विचार को प्रस्तुत करती हूँ और हमारे विचारों के आदान–प्रदान होते रहते हैं।

विमलेश कांति वर्मा: क्या आपको लगता है कि फ़ीजी के भारतीयों के लिए 'मानक हिंदी' यत्न से सीखी गई भाषा है और 'फ़ीजी हिंदी' उनकी अपनी मातृभाषा है जिसपर उनका अच्छा अधिकार है? सृजनात्मक उच्चस्तरीय साहित्य व्यक्ति अपनी मातृभाषा में ही लिख सकता है। आपका क्या मानना है?

सुनीता नारायण: प्राथमिक हिंदी शिक्षण में हमें ये नहीं पता था कि यह मानक है या अपनी मातृभाषा फ़ीजी हिंदी है। धीरे–धीरे अंतर दिखने लगा– इतना कि हम जो घर में बोलते हैं और स्कूल में सीखते है कुछ अलग है। पर कभी इसका मुद्दा नहीं उठाया। मेरे लिए दोनों बराबर थी। फ़ीजी में हिंदी अध्यापन भी किया जिसके अंतर्गत अपने छात्रों को वो हिंदी जानने के लाभ से अवगत कराती थी। पर उन दिनों फ़ीजी हिंदी लिखने का विचार भी मन में नहीं आया।

मेरे विचार में हमारे पास दो हिदी उपलब्ध हैं और हम इच्छानुसार इनका प्रयोग कर सकते हैं। एक पर हमारा अधिकार है और दूसरा हमारे लिए 100 प्रतिशत उपलब्ध है। इससे बेहतर और क्या हो सकता है? मुझे जब कोई सभा या सम्मेलन में बोलना होता है, मैं हमेशा अपना परिचय फ़ीजी हिंदी से शुरू करती हूँ और श्रोतागण फ़ीजी हिंदी से अवगत हो जाते हैं।

विमलेश कांति वर्मा: फ़ीजी हिंदी का फ़ीजी में इतना विरोध क्यों हैं और प्रमुख विरोध कहाँ से हैं? क्या यह विरोध फ़ीजी के भाषा वैज्ञानिक या विद्वत समाज द्वारा किया गया विरोध है? मुझे तो लगता है कि फ़ीजी की भारतीय जनता की जो अपनी भाषा है उसका विरोध कोई क्यों करेगा? विरोध के मूल कारण क्या हो सकते हैं?

सुनीता नारायण: मैं इस विषय से ज्यादा परिचित तो नहीं हूँ पर व्यक्तिगत अनुभव से पता है कि एक ओर तो बहुत शिक्षित माता–पिता घर में फ़ीजी हिंदी नहीं बोलते ज्यादातर अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं। यह भी सुनने को मिला है कि यह 'बैकवर्ड लेंगुअज' है। ऐसे परिवारों में, विद्यालय में हिंदी सीखने के लिए मना है। इसपर अत्यंत दुख महसूस होता है। दूसरी ओर वे परिवार हैं जिनके बच्चे घर में केवल फ़ीजी हिंदी ही बोलते हैं– उनके घरों में अंग्रेजी शून्य के बराबर बोली जाती है। वे स्कूलों में हिंदी पाठ्यक्रम पढ़ते हैं और अगर घर में उनको उपयुक्त सहयोग मिलता है तो वे बच्चे हिंदी में अच्छे अंक प्राप्त करते हैं। इसपर गर्व होता है। दोनों हिंदियों के व्याकरण में बहुत अंतर है जिसके कारण कुछ परेशानियाँ सामने आ जाती हैं।

विमलेश कांति वर्मा: काईबीती समाज की 'फीजी हिंदी' के संबंध में क्या राय है? काईबीती समुदाय हिंदी का पक्षधर हैं या 'फीजी हिंदी' का? क्या काईबीती समुदाय 'फ़ीजी हिंदी' बोलता और समझता है?

सुनीता नारायण: फ़िजी के कुछ इलाकों में काईबीती समुदाय अच्छी फ़ीजी हिंदी बोलते हैं और स्कूलों में भी हिंदी सीखते हैं। वे इसे कितना पसंद करते हैं यह मैं कह नहीं सकती। आपको पता होगा कि काईबीती समुदाय की नेमानीवाइनिवालू को पिछले विश्व हिंदी सम्मेलन में सम्मानित किया गया था। उनका विचार लेना उचित होगा।

विमलेश कांति वर्मा: क्या आपको लगता है कि 'फ़ीजी हिंदी' का समर्थन 'मानक हिंदी' का विरोध नहीं है? समाज में दोनों का अपना–अपना स्थान है। 'फीजी हिंदी' बोलचाल और साहित्य की भाषा है तो दूसरी ओर प्रशासन, अध्ययन और अध्यापन की। 'फ़ीजी हिंदी' जन्मतः सभी को आती है जबकि 'मानक हिंदी' बिना सीखे नहीं आएगी। भारतीयों में तो अवधी, ब्रज मातृभाषा भाषियों को जन्मतः आती हैं जबकि 'मानक हिंदी' सीखनी पड़ती है। आपका क्या विचार है?

सुनीता नारायण: मैं पूर्ण रूप से सहमत हूँ। भारत में भी विभिन्न तरह की हिंदी सुनने को मिलती है। यह मेरे लिए एक विशाल समझौता है कि हमारी 'फ़ीजी हिंदी' मेरी मातृभाषा है और मैं 'मानक हिंदी' समझती हूँ बोल लेती हूँ, पढ़ और लिख लेती हूँ और पढ़ा भी सकती हूँ।

आज 'फ़ीजी हिंदी' की जन्मतः स्तर को लेकर अनेक प्रश्न उठाए जा सकते हैं। कई घरों में वर्तमान में अंग्रेजी ही जन्मतः भाषा बन रही है– यह न्यूज़ीलैंड में भी हो रहा है।

विमलेश कांति वर्मा: मुझे लगता है कि 'फीजी हिंदी' भी अन्य कई भारतीय भाषाओं की तरह आज लुप्त होने के कगार पर है। एक भाषा का लुप्त हो जाना उस समुदाय की भावराशि और विचारराशि का और उसकी संस्कृति का लुप्त हो जाना है।

आप इससे कितना सहमत है?

सुनीता नारायणः पूर्णरूप से सहमत हूँ। किसी ने सच ही कहा है कि ''भाषा नहीं तो संस्कृति नहीं'' भाषा और संस्कृति ऐसे जुड़े हैं जैसे एक सिक्के के दोनों तरफ– एक नहीं तो दूसरा नहीं। भाषा हमारी संस्कृति का एक महत्वपूर्ण चिह्न है। इस विषय को लेकर अभी भी बहस हो रही हैं।

विमलेश कांति वर्माः 'मानक हिंदी' को प्रतिष्ठित करने के लिए आंदोलन हो तो बात समझ में आती है क्योंकि वह भारत की भाषा है पर जो हिंदी फ़ीजी के सभी भारतीय बोलते है उस 'फ़ीजी हिंदी' का विरोध कैसा? क्या इस विरोध के पीछे कुछ विरोधी शक्तियाँ तो काम नहीं कर रही हैं? आपकी राय इस संबंध में क्या है?

सुनीता नारायणः मेरे अनुमान से जो लोग 'फ़ीजी हिंदी' को सम्मान देते हैं, उनमें ज्यादातर प्राध्यापक और लिंग्विस्ट हैं जो भाषाविज्ञान समझते हैं और इनको यह भी ज्ञात है कि मातृभाषा जानने से एक बच्चे पर कितना पॉज़िटिव मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रभाव पड़ता है तथा जो बाल विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'फ़ीजी हिंदी' के विरोधियों में वे है जो 'फ़ीजी हिंदी' को एक 'गंवार और 'बैकवर्ड' भाषा समझते हैं। कुछ लोगों ने 'डउका पुराण' को भी यही लेबल दिया था। इस विरोध के पीछे अगर कुछ विरोधी शक्तियाँ काम कर रही हैं, तो मुझे पता नहीं।

विमलेश कांति वर्माः मुझे लगता है कि 'फीजी हिंदी' को बचाने और बढ़ाने की आज आवश्यकता है जो स्थिति फ़ीजी में 'फ़ीजी हिंदी' की है वही स्थिति सूरीनाम में 'सरनामी हिंदी' की और दक्षिण अफ़्रीका में 'नैताली हिंदी' की है। उसकी सुरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए वहाँ के साहित्यकार बहुत प्रयत्नशील हैं। फ़ीजी का समाज अपनी लुप्त होती हुई इस भाषा संपदा के लिए क्या कर रहा है?

सुनीता नारायणः 'फ़ीजी हिंदी' को बचाने और बढ़ाने की आज आवश्यकता है न कि केवल फ़ीजी में बल्कि पूरे फ़ीजी इंडियन डाएस्पोरा में यह आवश्यक है। डाएस्पोरा का भी उतना ही उत्तरदायित्व है जितना की फ़ीजीवासियों का। लेकिन मैं यह पहले ही कह चुकी हूँ कि हिंदी/'फ़िजी हिंदी' दोनों हिदियाँ डाएस्पोरा में आज डगमगा रही है। दोनों में बच्चों एवं युवा में भाषा ज्ञान घटता जा रहा है खासकर जो डाएस्पोरा में जन्म लेते हैं। लेकिन डाएस्पोरा में 'फ़ीजी हिंदी' की स्थिति शायद और कमजोर है।

जिस देश (पश्चिमी) में 24/7 अंग्रेजी बोली जाती है वहाँ प्रवासी भाषाओं की क्षमता तेज़ गति से घट सकती है। और जहाँ पढ़ने–लिखने की सुविधाएँ न हो वहाँ बच्चे कुछ सीख लेते हैं, बोल भी सकते हैं और घरों में, परिवारजनों के साथ हिंदी में बात कर सकते हैं। अकसर देखने को मिलता है बच्चे जैसे–जैसे बड़े होते हैं, वे अधिकतर अंग्रेजी बोलने लगते हैं। जिन परिवारों में हिंदी के प्रति प्रेम है, वे अपने बच्चों को समुदायिक विद्यालय में भर्ती करते हैं क्योंकि उन्हें पता है कि ये हिंदी से जुड़े रहने का एक साधन है।

विमलेश कांति वर्माः 'फ़ीजी हिंदी' की सुरक्षा, संरक्षा और प्रतिष्ठा के लिए देश की सरकार की और विद्वत समुदाय की क्या योजनाएँ हैं?

सुनीता नारायण: विद्वत समुदाय में चर्चा एवं बहस होती रहती हैं लेकिन सरकार की अभी क्या योजना है, इससे मैं अवगत नहीं हूँ। हालाँकि कुछ समय से स्कूलों में फ़ीजी हिंदी का पाठ्यक्रम सम्मिलित किए जाने की योजना थी।

विमलेश कांति वर्मा: क्या 'मानक हिंदी' में लिखा साहित्य गुणवत्ता की दृष्टि से 'फ़ीजी हिंदी' में लिखे गए साहित्य से अधिक श्रेष्ठ है? आपकी राय क्या है?

सुनीता नारायण: दोनों की अपनी–अपनी जगह हैं। हम ये प्रश्न कर सकते हैं– अवधी, ब्रज एवं 'मानक हिंदी' में कौन श्रेष्ठ है?

विमलेश कांति वर्मा: प्रो. सुब्रमनी ने अपने दोनों बड़े उपन्यास 'फीजी हिंदी' में लिखे, 'मानक हिंदी' में नहीं। 'फ़ीजी हिंदी' में दो–दो महत्वपूर्ण उपन्यास लिखने पर फ़ीजी के भारतीय समाज में उसके प्रति लोगों की क्या प्रतिक्रिया रही?

सुनीता नारायण: प्रो. सुब्रमनी के दोनों बड़े उपन्यास 'फ़ीजी हिंदी' में हैं जिसे शायद अभी भी पाठकों को पढ़ने में परेशानी होती है। इसकी निम्न वजहें हो सकती हैं:–

- दोनों उपन्यास बहुत लंबे हैं– देखकर ही लोगों के होश उड़ सकते हैं।
- फ़ीजी हिंदी पढ़ने में कठिनाई– मुझे भी 'डउका पुराण' को शुरु में समझने में दिक्कत हुई थी।
- बहुत लोग देवनागरी में लिखी हिंदी पढ़ना नहीं जानते हैं।
- बहुत से लोगों को इन उपन्यासों के विषय में पता ही नहीं है।

विमलेश कांति वर्मा: संभवतः आज फ़ीजी में परिनिष्ठित हिंदी, जो भाषा जनसमुदाय की भाषा नहीं है, में लेखन प्रतिष्ठा का विषय माना जाता है। क्या यह सही है और इसके कारण क्या लगते हैं?

सुनीता नारायण: जी हाँ। क्योंकि 'मानक हिंदी' ही 1956 से पढ़ाई जाती है और पढ़ने–लिखने की क्षमता मानक ही में है। आज भी घर से बाहर 'मानक हिंदी' का ही उपयोग होता है। वर्तमान में हम कुछ लोग हैं जो 'फ़ीजी हिंदी' का उपयोग करने लगे हैं। दोनों हिंदियों का मिश्रण भी होने लगा है। यह भी सुनने को मिलता है।

संपर्क

विमलेश कांति वर्मा– 73, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली–110034
फोन–9810441753, ई मेल–vimleshkanti@gmail.com

संपर्क

सुनीता नारायण– 38, प्रिसिला क्रिसेंट किंग्स्टन, वेलिंगटन, न्यूजीलैंड–6021
फोन–64226427652

❑❑❑

अंतर्मन की पुकार– समकाल की आवाज़

समीक्षकः ज्योति गुप्ता

कैलाश नीहारिका

प्रकाशित पुस्तकें–'तीसरा ग़ज़ल शतक, 'शबनम और छतरियाँ (ग़ज़ल संग्रह)', शतदल (काव्य–संग्रह), 'धारा को रोकते नहीं पहाड़'। पत्र–पत्रिकाओं में कविताएँ, कहानियाँ एवं समीक्षाएँ प्रकाशित। संप्रति–स्वतंत्र लेखन।

ज्योति गुप्ता

प्रकाशित पुस्तकें–'अन्या से अनन्या– स्त्रीवादी मूल्यांकन', 'हिंदी लेखिकाओं की आत्मकथा– स्त्री जीवन का यथार्थ'। विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में लेखन के साथ–साथ हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए हिंदी की पाठशाला के माध्यम से विश्वस्तर पर प्रयासरत।

'समकाल की आवाज़' में संग्रहित कविताएँ और ग़ज़ल जैसा कि नाम से स्पष्ट है अपने समय की आवाज है। एक कवि या रचनाकार कालजयी इसलिए कहलाता है क्योंकि वह अपनी रचनाओं में जिन सच्चाईयों को व्यक्त करता या करती है वह आने वाली पीढ़ी को अतीत का ज्ञान कराती है। कवि या कवयित्री पाठक को ध्यान में रखकर रचना नहीं करते और करना भी नहीं चाहिए। हाँ, रचना का मूल्यांकन एक पाठक अपने नजरिए से कर सकता है।

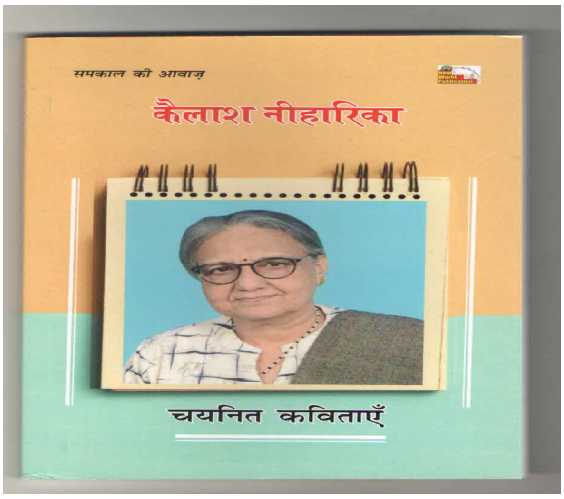

कैलाश नीहारिका जी की चयनित कविताएँ अपने समय को व्यक्त करती हैं चाहे वह नई पीढ़ी हो, सभ्यता पर मंडराता काला बादल हो, अन्याय के खिलाफ़ आवाज़ उठाता मानव हो या अपने अस्तित्व की बात करता व्यक्ति हो, हर कविता तथा ग़ज़ल को पढ़ते हुए ऐसा लगा जैसे हम एक ऐसी यात्रा से गुज़र रहे हैं जो यात्रा के दौरान सिर्फ़ निजी पीड़ा व्यक्त नहीं कर रही बल्कि अपने समय और समाज की

समकाल की आवाज कैलाश निहारिकाः चयनित कविताएँ, न्यू वर्ल्ड पब्लिकेशन, सी–515, बुद्ध नगर, इंद्रपुरी, नई दिल्ली– 110012 / प्रथम संस्करण– 2023 / पृष्ठ संख्या– 127 / मूल्य– 225 रुपए

आवाज़ को पाठकों तक पहुँचाने का काम भी कर रही है। मौसम के बदलाव के साथ व्यक्ति की बदलती सोच को भी कविताओं में सफलतापूर्वक व्यक्त किया गया है। इसलिए इनकी कविताओं तथा ग़ज़ल में आँधी, पानी, बादल, इंद्रधनुष जैसे शब्दों का भरमार दिखता है जो बदलाव का प्रतीक है पर बदलाव के साथ जिंदगी को बचाने की छटपटाहट भी दिखती है। 'अविरल दस्तक' कविता में वे कहती हैं–

''देखते ही देखते
बादल–भर आसमान
इरादों की धरती पर बरस जाता है
निचुड़ते पंख सुखाकर
मुझे दूर जाना है।
भले ही ढूँढ़ लेना तुम
तारों की टिमटिमाहट में
अपने सपने
पर भास्कर के अस्त होते ही
लौटना है मुझे अपनी ठौर
उड़ान साँझ तक की है!''

इसके साथ ही वे अपनी कविता में मन की बेचैनी व्यक्त करती हैं वह मन जो सभ्यता और आतंक से भयभीत है। वह सभ्यता का विकास तो चाहता है पर यथास्थिति का जो आतंक समाज पर मंडरा रहा है उससे भयभीत है इसलिए बेचैन मन कहता है–

''चमगादड़ से विकल
हम अपने–अपने खंडहर में
असहज असहाय से
अंतहीन परिक्रमाबद्ध छटपटाते हैं!''

यह छटपटाहट नई पीढ़ी की भी है जहाँ वह अपने अस्तित्व की तलाश में निकल पड़ी है। एक स्त्री जो मानक संस्कारों को तोड़कर आगे जाना चाहती है, नया समाज देखना चाहती है पर नया सबकुछ अच्छा है यह जरूरी नहीं। इसलिए राह पर निकल चुकी स्त्री को पीछे मुड़कर देखने को कवयित्री कहती हैं–

''तुम देखना मुड़कर
कि अवरुद्ध सांसों को कुछ साफ हवा मिल सके
कि सुन्न पंखों में जागे स्पंदन
कि फैसलों के पीछे हो कोई पुख्ता कदम
कि शोर की जगह संगीत ले!''

भविष्य को लेकर चिंतित मन बैठने को तैयार नहीं है क्योंकि उसे आगे बढ़ना है, देश, समाज की चिंता उसे सता रही है। अपनों का मोह उसे पाँवभर मिट्टी में खींच रहा है

पर पीछे मुड़ना अब संभव नहीं है, अनंत यात्राओं की पुकार स्वीकार कर आगे बढ़ना है। साथ ही यह भी कहा गया है कि चुंबकीय सपने अपनी तरफ बुला रहे हैं किसी मोह और स्वार्थ में न फँसकर अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करना अनिवार्य है–

''कैसे अटक जाऊँ
पाँवभर मिट्टी में
जबकि अनंत यात्राओं के
हठीले आवह्‌ान
बाँह थामे अग्रसर हैं
अजानी दिशाओं की ओर!
सुनों, अनिवार्य है बताना कि
वे दिपदिपाते सपने
प्रबल चुंबकीय हैं!''

सुनहरे सपनों को पूरा करने की आस में निकले मन का साक्षी वे वृद्‌ध आँखें हैं जिन्होंने जीवन का संघर्ष देखा है और चुपचाप देख रहे हैं ठीक वैसे ही जैसे नदी का तट देखता है चुपचाप आने–जाने वालों को, उनकी क्रियाकलापों को, उनकी दिनचर्या को। सदियों से चल रही यात्रा को बिना विराम दिए जो लोग चल रहे हैं उनका साक्षी बना तट कहता है–

''कितनी ही छोटी–बड़ी
यात्राओं पर निकले
उत्साही पथिकों के
मेल–बिछोह का साक्षी
यह अभिशप्त तट!

लोगों में व्याप्त बेचैनी को देखकर कवयित्री का मन दुखी है सब भागे जा रहे हैं। तट का दर्द कोई नहीं समझ पाता–

कभी फिर
अस्वीकृत अपेक्षाओं की
बेरंग होती बत्तियों–सी
टिमटिमाती मैत्रियाँ
और पलकों की कोरों से रिसते–बहते
अतृप्त कामनाओं के
गहरे दर्द
उभरती धीमी–सी इक तान
'मेरा दर्द न जाने कोई'

ये दर्द कवयित्री के अंतर्मन का है जो अदृश्य हो रहे घने सुखद पल को हाथ से पकड़ लेना चाहती है पर रेत सी फिसलती जिंदगी को पकड़ने के बजाय वे तट बनी साक्षी हैं हो रहे परिवर्तन की।

छटपटाते जिस्म अधनंगे कई जख्म लिए
पौंछ ज़ख्मों को दवा–मरहम लगा दें अब तो
आजकल फिर बस्तियाँ दिखने लगीं ख़ौफज़दा
साँप जहरीले छिपे घर में निकले अब तो

नई पीढ़ी जिस तरह परंपरा से कटती जा रही है उसका मार्मिक चित्रण करते हुए कवयित्री उन्हें लौटने का संदेश देती हैं। संस्कार, परंपरा तथा नैतिक मूल्यों को बचाए रखने का जो अभियान साहित्य में चला उसे अपने–अपने तरीके से रचनाकार अपनी रचनाओं में व्यक्त करता है। इसलिए कवयित्री भी कहती है–

''मैं मिलूँगी तुम्हें प्रतीक्षारत
इसी मोड़ पर
हठी गांधारी की आँखों पर से
अनदिखी पट्टियाँ खोलते
दुखती उँगलियों से!''

अतः गांधारी अपने बेटों के अधर्म को देखकर कुछ नहीं कर पाई। उनके अधर्म को देखकर भी उन्हें रोकने का प्रयास नहीं किया तथा हठपूर्वक जिस पट्टी को अपनी आँखों पर बाँधकर उसने अपनी पूरी जिंदगी को तपस्या बना दिया उस तपस्या का फल भी उसने अधर्म को ही दिया उसके हठ का परिणाम महाभारत है। कवयित्री गांधारी की आँखों की पट्टियाँ खोलने की बात करती हैं जहाँ वह अपने संकल्प से नई पीढ़ी को धर्म की ओर लौटने का संकेत देती हैं। अतः यह तय है कि कवयित्री सभ्यता की खोखलेपन और मूल्यों की नैतिकताओं को गिरवी रख किसी के प्यार को रौंदकर प्राप्त की हुई विजय को श्रेष्ठ नहीं मानती। संस्कारित परिवार अपनों से छूटकर दुनिया की चकाचौंध में भागती–दौड़ती पीढ़ी को अपनी जड़ों की ओर लौटने का संदेश दे रही हैं क्योंकि परंपराएँ सदा खोखली नहीं होती। थोपी हुई परंपरा को छोड़कर जीवित तथा स्वस्थ मूल्य भी हमारी परंपरा में हैं जहाँ लौटने की बात की जा रही है–

''सारी पृथ्वी को
जीतने की चाह लिए
अंत में घायल तड़पते
लौट भी सकोगे अपने ठौर!
विजय जाने कहाँ तक साथ चले
श्रेयस्कर है सदा
लौटना प्रेम में!''

'डिज़ाइन' कविता में भी नींव की चमक की बात की गई है। कहीं न कहीं समाज पर मंडराते बुराइयों के काले बादल तथा उमस भरी जलवायु से मुक्ति की बात की जा रही है सभ्यता को डिज़ाइन करने की जरूरत है जहाँ कपड़ों की चमक के

साथ नींव की भी चमक दिखे क्योंकि नींव की चमक ही महल की मजबूती का आधार है। इसलिए कवयित्री कहती हैं– ''ज्ञात है न, नींव पर सोचना कितना जरूरी है!'' जहाँ कदम–कदम पर अन्याय, धोखाधड़ी और बेईमान दिखती हो वहाँ कविताएँ खुद को बचाने, नई राह तलाशने का मार्ग दिखती हैं।

'समकाल की आवाज़' में जितनी भी कविताएँ सम्मिलित हैं उनसे एक बात तो स्पष्ट है कि इनमें संघर्ष का जोश है कहीं भी समर्पण की बात नहीं कही गई। प्रतिकूल परिस्थिति में भी आगे बढ़ने का जज्बा दिख रहा है कठिन से कठिन स्थिति मौन को अभिव्यक्ति दे रही है। खंडहर, कबूतर, चमगादड़, सींग पुरातन का प्रतीक हैं पर प्राचीन को नवीनता का पर्याय दिखाया गया है। संघर्ष अनवरत जारी है।

कैलाश नीहारिका जी की कविताएँ नई पीढ़ी को संदेश भी देती हैं जहाँ वे परंपरा, अपनी जड़ों तथा नींव की चमक की बात करती हैं। वहीं इनकी कविताओं में मानवीयता को बचाए रखने की आस भी दिखती है। आधुनिकता की चमक में दिशाहीन पीढ़ी को अपनी परंपरा का पाठ कराती इनकी कविता समय से संवाद करती नजर आती है। नैतिक मूल्यों के साथ इनकी कविता राजनीति के नाम पर कुशासन पर भी प्रहार करती है जहाँ व्यवस्था मनुष्य को उसके भविष्य की सुरक्षा दिखाकर रोबोट बनाती जा रही है वहाँ इनकी कविता कहती है– ''व्यक्ति हूँ मैं, जिसमें रूह भी है जिसे संप्रदाय, जाति, लिंग, भाषा, स्थान से परे भी बहुत कुछ झंकझोरता है।'' इसके साथ ही ''समकाल की आवाज़'' सिर्फ कविता का ही नहीं, बल्कि गजलों का भी संग्रह है। जिसमें अपने समय समाज और व्यक्तिगत बातों पर नीहारिका जी ने कलम चलाई है। जिंदगी को बचाने की तलाश में इनकी ग़ज़लें समाज से संवाद करती नज़र आती हैं–

''बंद मुट्ठी में छुपा लूँ ज़िंदगी
मोड़ दूँ धरा बचा लूँ ज़िंदगी''

एक रचनाकार अपनी रचना के द्वारा समाज से संवाद करता है और अपने मन की बातों को सार्वजनिक करने की इच्छा लेकर रचना करता है। पर कवि का पाठकों से वास्तविक संवाद भाषा के स्तर पर होता है। साधारणीकरण के आधार पर अगर हम बात करें तो इनकी कविताओं को पढ़ने के लिए पाठकों को थोड़ी मेहनत करने की जरूरत होगी। भावों की अभिव्यक्ति के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है वे इतने आसान नहीं हैं जो तुरंत कवयित्री से पाठकों को रूबरू करा दे। थोड़ा चिंतन–मनन करने के बाद ही हम कवयित्री के मन के भाव समझने में सफल हो सकेंगे वैसे भी रचनाकार रचना करता है उसके अर्थ पाठक अपने अनुसार निकालते हैं। प्रयासरत मनुष्य ही समाज को बदल सकता है। यह संदेश इनकी कविताएँ और ग़ज़ल देती हैं–

''कभी तो गुमशुदा पगडंडी खोज कर देखो
कहीं बंजर पड़ी धरती को जोतकर देखो''

संपर्क

कैलाश नीहारिका– डी–83, प्रथम तल, दयाल बाग कॉलोनी,
सेक्टर–39, सूरजकुंड एरिया, फरीदाबाद, हरियाणा–121009
फोन–9899333269, ई मेल–kailashnk717@gmail.com

संपर्क

ज्योति गुप्ता– डब्ल्यू जेड–46, प्रथम तल, गली नं–2,
मुखर्जी पार्क एक्सटेंशन, तिलकनगर, दिल्ली–110018
फोन–9717526476, ई मेल–jyotigupta1999@rediffmail.com

❑❑❑

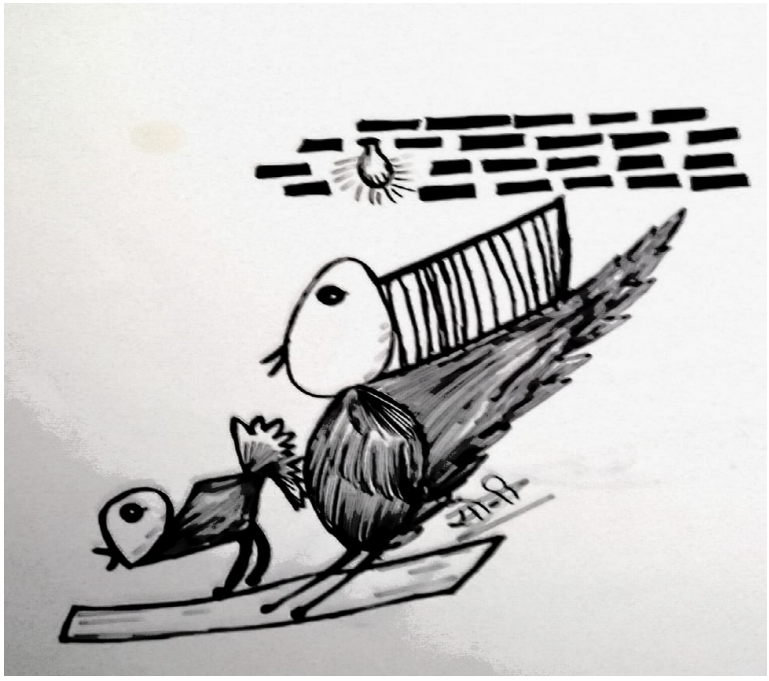

नर्म फाहे
समीक्षकः सुरेखा जैन

भावना सक्सैना

प्रमुख कृतियाँ– 'सूरीनाम में हिंदुस्तानी', 'भाषा–साहित्य व संस्कृति', 'नीली तितली' (कहानी–संग्रह), 'काँच सा मन'। संपादन–'प्रवासी हिंदी साहित्य', 'एक बाग के फूल'। संप्रति– भारत सरकार के राजभाषा विभाग में सहायक निदेशक के पद पर कार्यरत।

सुरेखा जैन

विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख एवं कविताएँ प्रकाशित। आकाशवाणी वार्ताकार। दूरदर्शन के कार्यक्रमों में साहित्यिक वार्ताएँ एवं कविताएँ प्रसारित। संप्रति–भारत विकास परिषद की सदस्य।

भावना सक्सैना द्वारा रचित कहानी संग्रह 'नर्म फाहे', एहसासों का दस्तावेज है; संवेदनाओं का सृजन है। पंद्रह कहानियों के इस संग्रह में लेखिका ने समाज के विभिन्न पहलुओं को इस प्रकार उकेरा है कि पाठक उनसे तादात्म्य बिठाता ऐसा महसूस करता है कि वह इन एहसासों से होकर गुजर रहा है। हर कहानी पाठक के मन पर एक अलग प्रभाव छोड़ जाती है। सामाजिक सरोकारों की चाशनी में लिपटी ये कहानियाँ पाठक को रससिक्त तो करती ही हैं, उसे जीने की राह भी दिखाती हैं। प्रकाशस्तंभ बन राह दिखाती चलती हैं। जैसा भावना जी का मन है, वैसा ही लेखन है। शायद यही कारण है कि संग्रह की सभी कहानियाँ विचारप्रधान हैं। लेखिका ने भावनात्मक गहराई और वैचारिकता को इस तरह समाहित किया है कि वह पात्रों के अंतर्मन की बदलती अवस्थाओं के साथ पाठक को गहरी जिज्ञासा से जोड़े रखती हैं। बाह्य दृश्यों के चित्रांकन के साथ साथ अंतद्वदों और मन के भीतर के सूक्ष्म भावसंसार पर भी लेखिका की गहरी पकड़ है।

'मुट्ठीभर धूप' से रोशन हुई ज़िंदगानी, खिले खुशरंग फूल। संबंधों में न चुभ सका संदेह का शूल। कनु को मुनिया बनने से बचाने वाले परिवार के प्रति कनु के स्नेह में ज्वार आया। यह बेहद खूबसूरत कहानी है जिसमें कनु के दर्द का उसके मानसिक अन्तद्र्वंद्व का, उसके मनोभावों का लेखिका ने बेहद खूबसूरती के साथ चित्रांकन किया है।

इस संग्रह की प्रत्येक कहानी का फ्लेवर भी अलग है तो कलेवर भी अलग। 'नौबत' कहानी महादेवी के संस्मरण की याद दिलाती है। भाषा साहित्यिक होने के साथ बहती प्रतीत होती है। भावना जी की भाषा में एक लय है, काव्यात्मकता है।

पुस्तक–नर्म फाहे (कहानी संकलन) प्रकाशक– सर्वभाषा प्रकाशन, जे.– 49, गली नं. 38, राजापुरी मेन रोड, उत्तम नगर, नई दिल्ली–110059 / पृष्ठ संख्या– 126, मूल्य– 200 रुपए

'फुलस्टॉप' कहानी की अस्मि जैसा कि नाम से ही में ध्वनित है अपने लिए जीना चाहती है। समर्पण स्नेह शुचिता, ये केवल शब्द नहीं हैं। अस्मि की उन्मुक्ता, स्वच्छंदता उसकी परेशानी का सबब बनती है। कहानी प्रायश्चित पर खत्म होती है। यहाँ मैं यह भी कहना चाहँगी कि लेखिका के व्यक्तित्व का प्रतिबिंब है उनका कृतित्व। वह अपनी कहानी का अंत त्रासदी पर नहीं करती बल्कि कहानी आशा के संचरण पर समाप्त होती है। आशा भी कितनी सुंदर है, जीने को कहती है। प्राण हार जाते हैं किंतु चाह बनी रहती है।

'नर्म फाहे' बड़े चाव से पढ़ने वाला कहानी संग्रह है। इसकी प्रत्येक कहानी ने पाठक के मन को झकझोरा है। लेखिका का सूरीनाम देश में प्रवास उनके लेखन को और भी परिष्कृत कर गया क्योंकि सूरीनाम का सारा वातावरण तो हिंदीमय था ही, वहाँ बसे हिंदुस्तानी भाई बहनों की भावनाओं को उनके पूर्वजों की पीड़ा को लेखिका ने आत्मसात किया तथा उन्हें भावपूर्ण शब्दों में उकेरा है। 'नर्म फाहे' की कहानी 'रास्ते' पति पत्नी के संबंधों की प्रगाढ़ता और दरारों का बहीखाता है। नायिका अदा का चयन विदेश की इस नौकरी के लिए हुआ था परिवार खुश था। अदा संगीत शिक्षिका थी और उसका पति तपन उभरता संगीतकार दोनों ने ही सूरीनाम में बस जाने के स्वप्न संजोए थे। पति पत्नी के संबंधों में आए उतार चढ़ावों को लेखिका' ने बहुत ही खूबसूरती से उकेरा है, तपन का स्वप्न पूरा नही हो पा रहा था जिससे वह चिड़चिड़ा हो गया उधर अदा भी घर और काम संभालने के कारण झुँझलाती रहती थी। लेखिका ने लिखा... धीरे – धीरे मोहब्बत पर उदासी के बादल छाने लगे थे।

तपन की महत्वाकांक्षा के चलते अदा ने नए राजदूत को संगीत प्रतियोगिता महोत्सव के लिए राजी कर लिया इसमें खूब धन अर्जित किया। तपन स्टूडियो निर्मित करना चाहता था। अदा बच्चों के भविष्य के लिए धन सुरक्षित रखना चाहती थी। इसी पर इतना मनभेद कि तपन ने अलग होने की इच्छा व्यक्त कर दी। परंतु लेखिका का आशावादी दृष्टिकोण परिवार को पुनः एक दिखाता है। जहाँ ड्राइवर कहता है, आज उसी तपन को मैं उसके परिवार के पास वापस जाने को एयरपोर्ट छोड़ कर आया हूँ अपने बच्चों के साथ खुश रहे। कहानी का 'रास्ते' शीर्षक बहुत ही सटीक है और कहानी के मर्म को दर्शाता है जब ड्राइवर कहता हे – दूतावास की गाड़ी चलाते चलाते हाथ बूढ़े होने लगे हैं।

ड्राइवर के दादा हिंदुस्तान से जबरन लाए गए थे– त्रासदी के दृश्यों को लेखिका ने बखूबी उकेरा है– ''हिंदुस्तान के कलेजे थे, टुकड़ों को 5 साल के लिए एग्रीमेण्ट पर गिरमिट करवाने भेज दिया था।''

दूसरे स्थान पर लेखिका ने लिखा है. ''जहाज से तीन माह की लम्बी यात्रा के बाद इस ठोस धरती पर पाँव रखने का सुख बड़ा क्षणिक था।'' ड्राइवर अपने लिए कहता है– ''मुझे ड्राइवर की नौकरी मिली तो सब बहुत खुश हुए ऐसा लगा कि कहीं अपने पूर्वजों की सेवा का अवसर मिला है।'' लेखिका लिखती है 'रास्ते हमारे दोस्त हैं। रास्तों से दोस्ती हो तो जिंदगी मुस्कुराती रहती है'।

'नई भोर' कहानी में अवगुंठन की ओट से खुले आसमान को देखने वाली बहू किस तरह सीढ़ी दर सीढ़ी बढ़ती है। नई सोच रखने वाली काकी किस तरह नई बहू की जीवनधारा को रवानगी देती हैं यह समाज के लिए प्रेरणादायी हो सकता है।

'नर्म फाहे' कहानी संग्रह की सभी कहानियाँ जीवन की सच्चाई को बयां करती हैं, इसलिए ये कहानियाँ अपनी सी लगती हैं। कहानियाँ यथार्थ से टकराती हैं ज़मीन पर बिखर जाती हैं। संबंधों के सिंचन से सौंधी–सौंधी खुशबू ले आती हैं।

'कछु लेना न देना मगन रहना' कहानी में गाँव का सजीव चित्रण उस कालखंड की याद दिलाकर प्यारे से बचपन की ओर ले जाता है जहाँ बस खुशियाँ ही खुशियां थीं।

'आम्रमंजरी' कहानी के छोटे–छोटे संवाद बहुत गहरे अहसासों का प्रतिबिम्ब है। जैसे, 'तुम सच में पहेली–सी हो,'

अबूझ?''

''हार नहीं मानी अभी मैंने।''

ये दो मित्रों का न जाने कैसा रिश्ता है। उम्र में बहुत फासला है लेकिन बातचीत के दौरान दोनों एक दूसरे के दिल में उतरते जाते हैं। रिश्ते को नाम नहीं दिया जा सकता पर एक खूबसूरत मोड़ देकर छोड़ा तो सकता है।

कहानी का नायक कहता भी तो हैं– ''क्या हर संबंध की परिणति आवश्यक है? हर राह की मंजिल हो क्या यह आवश्यक है?'' यहाँ एक विचार मन में आता है– मंजिल की ख्वाहिश क्यों करें आओ रास्तों से ही प्यार करें। 'आम्रमंजरी' निःसन्देह मन की कहानी है। समुच्चय में भी कभी कभी प्रेम की सटकर शक्कर घुलने की गुंजाइश रहती है। प्रेम व्यापक है संकीर्ण नहीं।

'चाँद मुस्कुराता रहा' कहानी में प्रेमिल बच्चों को देख माँ खुश होती है। पर देर हो जाने पर उनकी फिक्र में बार–बार में फोन मिलाती है और कहती हैं–

''कौन समझाए उन बच्चों को कि फिक्र नाम की एक चिड़िया माँ के सिर में स्थाई घोंसला बनाए रहती है और लगातार फुदककर अपने होने का एहसास कराती है।'' लेखिका ने यह बात कहकर सब माँओं के साथ साधारणीकरण से अपना रिश्ता जोड़ लिया।

इन कहानियों में जीवन के प्रति लेखिका का दर्शन भी सामने आता रहता है। कभी कथाकार के नैरेशन के रूप में तो कभी पात्रों के संवादों के माध्यम से। उदाहरण के लिए 'संजीवनी' कहानी का यह पैराग्राफ देखें

''एक राह सही न मिले तो दूसरी अपना लो।...हर मन को अपनी राह तलाशनी होती है, एक सही न बैठे तो दूसरी तलाशनी पड़ती है। कभी–कभी जिंदगी यूँ ही भटकते खत्म भी हो जाती है, लेकिन यह सुकून लेकर कि हमने वह किया जो हम कर सकते थे। हम परिस्थितियों से भागे नहीं।''

एक ओर कहानी, 'मन बैरी मन मीत' दुर्घटना के परिणामस्वरूप अवसाद में घिरी कृति, बाँह न होने पर भी खुशी–खुशी संस्था में पेंटिंग बनाने वाली अपने से छोटी मेघा से प्रेरणा ले, जीवन का नया संदेश प्राप्त करती है। 'श्रीमद्भगवद्गीता' के एक श्लोक के माध्यम से वह समझ जाती है कि हमारा मन ही सबसे बड़ा शत्रु है, और मन ही हमारा मीत है। हम हारते तब हैं, जब हार मान लेते हैं और इसी समझ के साथ कृ ति आत्मविश्वास से भरे जीवन में आगे बढ़ जाती है।

स्त्री मन एक रहस्य है, कौतूहल बना रहा है सदा से... क्योंकि हर दिन वह गढ़ती, रचती है कुछ नया... और यह नयापन ही उसकी शक्ति है, उसकी परिभाषा है। अकसर सुनने में आया है कि नारी ही नारी की शत्रु है, क्या वास्तव में ऐसा है? क्या करती है एक स्त्री जब उसे दूसरे का प्रतिद्वंदी बना सामने खड़ा कर दिया जाता है? यही बताने को शायद लिखी गई है कहानी प्रतिकार। दो स्त्रियों के मन को गहरे छूती कहानी, हौले से समाज में व्याप्त एक से अधिक कुरीतियों पर भी काफी कुछ कह जाती है। इसे महसूस करने के लिए पढ़ना जरूरी है।

'नर्म फाहे' कहानी संग्रह में जिन जज्बातों को जुबा दी गई है जिन्हें शब्दों के साँचे में ढाला गया है वें आम आदमी की कहानी बयाँ करते हैं। यद्यपि इस संग्रह की सभी कहानियों में सहज जीवन बहता दिखाई देता है, तथापि लेखिका की अपनी

एक शैली, एक छाप है जो इन कहानियों में कही को अलग व अधिक रुचिकर बनाती है। जो साहित्य आम हो अवाम से जुड़ा हो उसकी गुणवता अपने आप में चौबीस कैरेट स्वर्ण की भाँति हो जाती है 'नर्म' फोहे' खरा सोना है जिसका सरोकार हितसहित है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सतरंगी एहसासों से जुड़ी ये कहानियाँ पाठकों को बहुत पसंद आएँगी। साहित्य प्रेमी 'नर्म फाहे' कहानी संग्रह को अपना स्नेह व आशीष अवश्य देंगे। दिल से लिखी कहानियाँ दिल तक पहुँचेगी।

संपर्क

भावना सक्सैना– 64, प्रथम तल, इंद्रप्रस्थ कॉलोनी, सेक्टर 30-33 फरीदाबाद, हरियाणा–121003, फोन–9560719353, ई मेल–bhawnasaxena@hotmail.com

संपर्क

सुरेखा जैन– 47, ई–1, सेक्टर–11, फरीदाबाद–121006
फोन–8130812363, ई मेल–sjainjaipur54@gmail.com

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर', 86, तिलकनगर, बाईपास रोड़, फिरोजाबाद, उ.प्र.–283203

   फोन– 9412316779, ई मेल– dryayavar@gmail.com

2. डॉ. दिनेश चमोला 'शैलेश', 'अभिव्यक्ति' 23, गढ़ विहार, फेज–1 मोहकमपुर, देहरादून, उत्तराखंड–248005

   फोन– 9411173339, ई मेल–chamoladc@yahoo.com

3. डॉ. के.बी.एल पाण्डेय, 70, हाथी खाना, दतिया, मध्यप्रदेश–478661

   फोन–9425113172, ईमेल– pandeykrishna896@gmail.com

4. डॉ. बबन चौरे, अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बाबूजी आव्हाड़ महाविद्यालय, पाथर्डी, जि– अहमदनगर, महाराष्ट्र–414102

   फोन–9423045870, ई मेल–drbabanchoure@gmail.com

   Dr. Baban Choure, Head of Deptt. of Hindi, Babuji Avhad Mahavidyalaya, Ahmadnagar- Pathardi Road, Pathardi, Maharashtra-414102

5. कमलेश सिंह, सहायक आचार्य–हिंदी, धर्म समाज महाविद्यालय, अलीगढ़–202001, उत्तरप्रदेश

   फोन–8882228473, ई मेल–madhyam999@gmail.com

6. गजानन सुरेश वानखेड़े, बलीराम पाटील कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, किनवट, महाराष्ट्र–431811

   फोन–9921264654, ई मेल–wankhede222@gmail.com

   Dr. Gajanan Suresh Wankhede, Deptt. of Hindi, Baliram Patil Art's Commerce & Science College, Kinwat, Nanded, Maharashtra-431811

7. सतिश शामराव मिराशे, मु.पोः दहेगाँव, तहसील–किनवट, जि–नांदेड, महाराष्ट्र–431804

फोन–9011168606, ई मेल–satishmirashe1994@gmail.com

Satish Shamrao Mirashe, P.O- Dahegaon, Tq-Kinwat, Distt- Nanded, Maharashtra-431811

8. प्रकाश चंद्र बैरवा, मकान न. 184, गली न.03, मंगलापुरी फेस–1, पालम, नई दिल्ली–110045

   फोन– 8178729580, ई मेल– prakash.n.4193@gmail.com

9. राजेंद्र परदेसी, 136, मयूर रेजीडेंसी, फरीदीनगर, लखनऊ, उत्तरप्रदेश–226015

   फोन–9415045584, ई मेल– falcon.bh@gmail.com

10. डॉ. दीपशिखा, बसंतपुरा मोहल्ला, नीयर अमरदीप अस्पताल, नाभा, जिला–पटियाला, पंजाब–147201

    फोन–8288008754, ई मेल–deep.nav0506@gmail.com

11. दिनेश कुमार वर्मा, मकान सं– सी–204/4, नजदीक एम.एस पब्लिक स्कूल, लक्ष्मी पार्क, नांगलोई, दिल्ली–110041

    फोन–9313343753, ई मेल–dkverma.pp@gmail.com

12. डॉ. श्रीराम हनुमंत वैद्य, श्री शिवाजी महाविद्यालय, बार्शी, तहसील–बार्शी, जिला–सोलापुर, महाराष्ट्र, पिन–413411

    फोन–9657243507, ई मेल–svaidya2012@gmail.com

    Dr. Shriram Hanumant Vaidya, Shri Shivaji Mahavidyalaya, Tahsil- Barshi, Distt- Solapur, Maharashtra-413411

13. राजनारायण बोहरे, 89, ओल्ड हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी बस स्टैण्ड, दतिया, मध्यप्रदेश–475661

    फोन–9826689939, ई मेल–raj.bohare@gmail.com

14. डॉ. अनामिका अनु, अनामिका विला', हाउस नंबर 30 (ए) कातुलेन, श्रीनगर, वल्लाकाडांवु, त्रिवेंद्रम, केरल–695008

    फोन–8075845170, ई मेल–resistmuchobeylittle181220@gmail.com

    Anamika Anu, Anamika Vila, House No- 30A, Kavulane, Shrinagar Vallakadavu, Trivendram, Kerala-695008

15. डॉ. गौरीशंकर रैणा, 1901, टावर–1, स्काई गार्डेन्स, सेक्टर–16–बी, ग्रेटर नोएडा, (पश्चिम) पिन–201318

    फोन–9810479810, ई मेल–gsr19@rediffmail.com

16. किश्वर सुल्ताना, द्वारा डॉ. जेड ए सिद्दीकी, चौक मुहम्मद सईद खाँ, लंगरखाना, रामपुर, उत्तरप्रदेश–244901

    फोन–9870835618, ई मेल–su.kishwar786@gmail.com

17. दाशरथि भूयाँ, प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, नागालैंड विश्वविद्यालय, हेडक्वार्टर–लुमनी, जिला–जुन्हेबोटो, नागालैंड, पिन–798627 फोन–7008132134, ई मेल–dasarathi@nagalanduniversity.ac.in

    Dr. Dasarathi Bhuiyan- Professor, Deptt. of Political Science, Nagaland University, Hqrs- Lumani, Distt- Zunheboto, Nagaland-798627

18. भगवान त्रिपाठी, सी– 33, शरधाबालि, चौथी गली एक्सटेंशन, खोड़ासिंगी, ब्रह्मपुर, जिला–गंजाम, ओडिशा, पिन–760010

    फोन–9437037485, ई मेल–bhagaban35@gmail.com

    Bhagawan Tripathi, C-33, Shardhabali, 4th Lane extension, Khodasingi, Po. Engineering School, Brahmpur, Distt.- Ganjam, Odisha-Pin.760010.

19. बीरभ्रद कार्कीढोली, संपादक, प्रक्रिया, पोस्ट बॉक्स न.–6, गंगटोक, सिक्किम, पिन–737101

    फोन–9733268722, ई मेल–virbhadra777@gmail.com

    Birbhadra Karkidholi, P.B No- 6,Gangtok, Sikkim-737101

20. कृष्ण शर्मा, 152/119 पक्की ढक्की, जम्मू–180001

    फोन–9682188713, ई मेल–sharma379kk@gmail.com

21. जसवीर भुल्लर, 582, फेज 3ए, मोहाली, पंजाब–160059

    फोन–9781008582, ई मेल–col.jagdishbhullar@gmail.com

22. प्रो. फूलचंद मानव, 239, दशमेश एनक्लेव, ढकौली, जीरकपुर (समीप चंडीगढ़), पंजाब, पिन–160104

    फोन–9646879890, 9316001549 ई मेल–phulchandmanav@gmail.com

23. आशुतोष सिंह, 4 एच, सोहम अपार्टमेंट, 358/1, एन एस सी बोस रोड, कोलकाता–700047

फोन–9874535401, ई मेल–angashutosh@gmail.com

Ashutosh Singh, 4 H, Soham Apartment, 358/1, NSC Bose Road, Kolkata-700047

24. विमलेश कांति वर्मा, 73, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली–110034

फोन–9810441753, ई मेल–vimleshkanti@gmail.com

25. सुनीता नारायण, 38, प्रिसिला क्रिसेंट किंग्स्टन, वेलिंगटन, न्यूजीलैंड–6021

फोन–64226427652, ई मेल–sunita.d.narayan@gmail.com

Sunita Narayan, 38, Priscilla Crescent, Kingston Wellington, New Zealand-6021

26. डॉ. कैलाश नीहारिका, डी–83, प्रथम तल, दयाल बाग कॉलोनी,

सेक्टर–39, सूरजकुंड एरिया, फरीदाबाद, हरियाणा–121009

फोन–9899333269, ई मेल–kailashnk717@gmail.com

27. डॉ. ज्योति गुप्ता, डब्ल्यू जेड–46, प्रथम तल, गली नं–2,

मुखर्जी पार्क एक्सटेंशन, तिलकनगर, दिल्ली–110018

फोन–9717526476, ई मेल–jyotigupta1999@rediffmail.com

28. डॉ. भावना सक्सैना, 64, प्रथम तल, इंद्रप्रस्थ कॉलोनी, सेक्टर 30-33 फरीदाबाद,

हरियाणा–121003, फोन–9560719353, ई मेल–bhawnasaxena@hotmail.com

29. सुरेखा जैन, 47, ई–1, सेक्टर–11, फरीदाबाद–121006

फोन–8130812363, ई मेल–sjainjaipur54@gmail.com

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,

शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066

ई.मेल – chdsalesunit@gmail.com

फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... विश्लेषण भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....

पूरा पता : .....

.....

.....

मोबाइल/दूरभाष : .....

ई–मेल : .....

संबद्धता/व्यवसाय : .....

आयु : .....

पूरा पता जिस पर पत्रिका प्रेषित की जाए : .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in – Quick Payment – Ministry (007 Higher Education)- Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

गृह मंत्रालय,भारत सरकार द्वारा केंद्रीय हिंदी निदेशालय एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के सहयोग से बनाए जा रहे 'हिंदी शब्द सिंधु' समावेशी शब्दकोश की दिनांक 24/08/2023 को सचिव, राजभाषा की अध्यक्षता में आयोजित बैठक में बाएँ से सहायक निदेशक डॉ. नूतन पांडे, डॉ.शालिनी राजवंशी, डॉ. अंजू सिंह,'राजभाषा भारती' पत्रिका के उप संपादक, डॉ. धनेश द्विवेदी, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के माननीय निदेशक प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी, उपनिदेशक श्री बाबूलाल मीना और सहायक अनुसंधान अधिकारी श्री अच्युत कुमार सिंह।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय,शिक्षा मंत्रालय (उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार,नई दिल्ली एवं हिंदी विभाग, परिमल मित्र स्मृति महाविद्यालय, मालबाजार,जलपाईगुड़ी,पश्चिम बंगाल के संयुक्त तत्वावधान में दिनांक 21/08/2023 से 23/08/2023 तक 'कविता का समकालीन परिदृश्य' विषय पर तीन दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन समारोह में बाएँ से महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ कार्तिक चंद्र दे, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के सहायक निदेशक डॉ. मो.नसीम, उत्तरबंग विश्वविद्यालय की प्रो. मनीषा झा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के माननीय निदेशक प्रो सुनील बाबुराव कुलकर्णी, नेहरू ग्राम भारती डीम्ड विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो राममोहन पाठक, त्रिपुरा विश्वविद्यालय के आचार्य डॉ. विनोद कुमार मिश्र तथा स्थानीय संयोजक डॉ सुलोचना कुमारी दास।

दिनांक 14/09/2023 से 29/09/2023 तक आयोजित हिंदी पखवाड़े के समापन समारोह के अवसर पर 'भाषा' पत्रिका के 'स्वाधीन भारत में भाषा प्रौद्योगिकी का विकास'(विशेषांक) का लोकार्पण करते हुए बाएँ से सह संपादक 'भाषा' डॉ. किरण झा, सहायक निदेशक डॉ. दीपक पांडे, साहित्य आज तक से जुड़े श्री जयप्रकाश पांडे, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक प्रो.सुनील बाबूराव कुलकर्णी, साहित्य अकादमी की उपाध्यक्ष प्रो. कुमुद शर्मा, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के सचिव डॉ.सच्चिदानंद जोशी, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष प्रो. गिरीश नाथ झा,'भाषा' पत्रिका की संपादक डॉ. अनिता डगोरे और सहायक संपादक श्री प्रदीप कुमार ठाकुर।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (दवैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-3-2023
700

भाषा

मई–जून 2023

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
दूरभाषः– 011–20862356
एक्सटेंशन– 253/213/217
bhashaunit@gmail.com
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in